राजस्थान के ऐतिहासिक शोध लेख

लेखक

रामवल्लभ सोमानी

राजस्थानी ग्रन्थागार जोधपुर

प्रकाशक — राजस्थानी ग्रन्थागार
पुस्तक प्रकाशक व विक्रेता,
सोजती गेट के बाहर, जोधपुर

मूल्य पचीस रुपया मात्र

मुद्रक
मातृभूमि प्रिंटिंग प्रेस
घोडा रास्ता,
जयपुर

डा० गोपीनाथ जी शर्मा एम. ए. डी लिट्

को

सादर समर्पित

दो शब्द

प्रस्तुत ग्रंथ मे समय समय पर प्रकाशित लेखों का संग्रह है। अधिकांश लेख पूर्व माध्यकालीन राजस्थान के इतिहास से सम्बन्धित हैं और प्रामाणिक साधन सामग्री के आधार से लिखे गये हैं, अतएव ये राजस्थान के इतिहास के अध्ययन के लिये ये अत्यन्त उपयोगी सिद्ध होंगे, ऐसी आशा करता हूं।

रामवल्लभ सोमानी

गंगापुर (भीलवाड़ा)

दिनांक ४-१२-६६

विषय सूची

महाराणा हमीर की चित्तौड़ विजय की तिथि | १

महाराणा हमीर की चित्तौड विजय की तिथि निश्चित नही है। मेवाड़ की ख्यातो में यह[1] तिथि वि० स० १३५७ (१३०० ई०) दी है। यह तिथि निश्चित रूप से गलत है। उस समय मेवाड़ मे महारावल समरसिंह शासक था। इसके बाद महारावल रत्नसिंह गद्दी पर बैठा। इसके समय वि० सं० १३६० (१३०३ ई०) मे सुलतान अल्लाउद्दीन ने चित्तौड दुर्ग पर अधिकार कर लिया और रत्नसिंह को बन्दी बना[2] गाव २ घुमाया जिसे गोरा बादल की सहायता से वापस छुड़ा लाया गया। रत्नसिंह की अनुपस्थिति मे दुर्ग का रक्षा-भार हमीर के पितामह लक्ष्मणसिंह पर डाला गया। सीसोदा वाले समरसिंह के समय[3] से

1. ओझा—उदयपुर राज्य का इतिहास पृ० २३३-३४ का फुटनोट।
2. अमीर खुसरो—खजाइन उल फतूह-का अनुवाद पृ० ४७-४८। इसी प्रकार का वर्णन कक्क सूरि द्वारा विरचित नाभिनन्दन जिनोद्धार प्रबन्ध म मिलता है—'चित्रकूट दुर्गेश बध्वा लात्वा च तद्धनम्। कठबद्ध कपिमिवा भ्रामयत्त पुरे पुरे'' ॥ ३।४॥
3. युग प्रधान गुर्वावली का यह वर्णन विचारणीय है—
(१३३४ वि०) फाल्गुन सुदि ५ चतुरशीतौ श्रीयुगादिदेव श्री नेमिनाथ श्रीपार्श्वनाथना शाम्ब प्रद्युम्नमुख्योरम्बिकायाश्च प्रासादेषु चक्क (त्व ?) रहट्टी अम्बिकायाश्च ध्वजारोपमहोत्सव. सकल-राजपुराधीश्वरराजपुत्रश्रीअरिसिंह सानिध्याम्...... ....'' (पृ० ५६)
कुम्भा के समय में लिखी गई आवश्यक वृहद्वृत्ति के दूसरे अध्याय की वृत्ति मे सहणपाल के लिए ' 'राजमत्रीधुराधोरब' साधु-सहण

कई प्रभावशाली पदो पर नियुक्त थे। अमर काव्य वंशावली के अनुसार रत्नसिंह समरसिंह का जायन्दा पुत्र न होकर गोद का लिया हुआ था जो सीसोदा शाखा का था। लक्ष्मणसिंह अपने ७ पुत्रो सहित दुर्ग की रक्षा[4] करते हुए देवलोक को गया था। अतएव वि० स० १३५७ (१३००) मे न तो हमीर चित्तौड का और न सीसोदा का ही स्वामी हो सकता था। ख्यातों में इस तिथि की मान्यता का आधार यह है कि भाटो को वि० सं० १४२१ (१३६४ ई०) हमीर की निधन तिथि समवत, ज्ञात थी और उसके ६४ वर्ष तक राज्य करने की धारणा भी प्रचलित थी। इसलिए १४२१ वि० से ६४ वर्ष कम करके १३५७ हमीर के राज्यारोहण की तिथि मानली है, जो गलत है।

श्री एस० दत्त ने हमीर की चित्तौड़ विजय[5] की तिथि वि० सं० १३७१ (१३१४ ई०) मानी है जो भी गलत है। अलाउद्दीन ने चित्तौड दुर्ग को विजय कर अपने पुत्र खिज्रखा को दिया था जिससे वि० स० १३६८ मे लेकर इसे मालदेव सोनगरा को दे दिया। मालदेव, ने समवत: ७ वर्ष तक राज्य किया था। इसके पश्चात् उसकी मृत्यु हो गई। फरिश्ता के अनुसार इसने आक्रमण के पूर्व की सी स्थिति ला दी थी। वह प्रति वर्ष कुछ निश्चित राशि ५००० घुडसवार और १०,००० पैदल सैनिक सुलतान की सेवा में भेजता[6] था। अलाउद्दीन की मृत्यु के पश्चात् ५ वर्षों तक कई शासक हुये और वि० स० १३७८ (१३२१ ई०) मे सुलतान गयासुद्दीन तुगलक दिल्ली का बादशाह हुआ। इसके समय का एक शिलालेख मलिक असदुद्दीन का चित्तौड[7] दुर्ग से मिला है। यह

पालस्तेर्न" वर्णित है। इससे प्रतीत होता है कि अरि सिंह भी समवत मुख्य मत्री था।

4 चुमाण वश (श्य) सलु लक्ष्मसिहस्तस्मिन्गते दुर्गवर ररक्ष।
कुलस्थिति कापुरुषैविमुक्ता न जातु धीराः पुरुषास्त्यजति ॥१७७॥
(कुमलगढ़ प्रशस्ति)

5. भारतीय विद्या भवन द्वारा प्रकाशित "देहली सुल्तानेत" पृ० ३५६

6. तारीख–इ–फरिश्ता (ब्रिग्ज का अनुवाद) भाग १ पृ० ३६३

7. उदयपुर राज्य के इतिहास पृ० १६७ पर दिया गया इसका

उक्त बादशाह का नायब बारबक था। गयासुद्दीन के कई सिक्के मेवाड़ से मिले हैं। एक चौकोर चादी का सिक्का जिसके पीछे कुरान की आयतें और दूसरी तरफ गयासुद्दीन गाजी का नाम अङ्कित है, हमारे परिवार में पीढ़ियो से सुरक्षित है। फरिश्ता के वर्णन के अनुसार सुल्तान अलाउद्दीन के अन्तिम दिनो मे राजपूतो ने दुर्ग पर आक्रमण किया था[8] और मुसलमान सैनिको को काफी नुकसान पहुंचाया था, किन्तु सुल्तान गयासुद्दीन और मोहम्मद के समय का शिलालेख मिल जाने से श्री दत्त की धारणा गलत साबित हो जाती है।

श्री गौरीशकर हीराचद ओझा ने[9] यह तिथि वि० स० १३८३ मानी है। इनकी मान्यता का आधार यह अनुमान है कि मोहम्मद तुगलक के समय हमीर ने चित्तौड विजय की थी और कोई प्रामाणिक साधन सम्भवत उनको भी मिल नही सका था। करेडा के जैन मदिर में, जो मेवाड़ के प्राचीनतम जैन देवालयो[10] मे से है, वि० स० १३६२ का लघु[11] लेख लग रहा है। यह लेख इस सम्बन्ध मे महत्वपूर्ण है।

उदाहरण इस प्रकार है.—"...............तुगलकशाह बादशाह सुलैमान के समान मुल्क का स्वामी, ताज और तख्त का मालिक, दुनियां को प्रकाशित करने वाले सूर्य और ईश्वर की छाया के समान, बादशाहो मे सबसे बडा अपने वक्त का एक ही है..... ... बादशाह का फरमान उसकी राय से सुशोभित रहे। असदुद्दीन अर्सलॉ बादशाहो का बादशाह, दाताओ का दाता तथा देश की रक्षा करने वाला है। उससे न्याय और इन्साफ की नींव दृढ़ है ... ३ जमादि अव्वल ।......... ."

8. तारीख-इ-फरिश्ता (ब्रिग्ज का अनुवाद) भाग १ पृ० ३८०-८१
9. ओझा-उदयपुर राज्य का इतिहास पृ० २३३-३४
10. करेडा के जैन मदिर से प्राप्त अब तक के लेखो में वि० स० १०३६ का है जिसमे सडेर गच्छीय आचार्य यशोभद्रसूरि सतान श्री श्यामाचार्य द्वारा पार्श्वनाथ की प्रतिमा की प्रतिष्ठा कराने का उल्लेख है।
11. "........सवत् १३६२ पोष सुदि ७ रवौ श्री चित्रकूट स्थाने महा०

इसमें चित्तौड के राजा पृथ्वीचद्र, मालदेव के पुत्र बणवीर सिलहदार मोहम्मद देव आदि का उल्लेख है और किसी की मृत्यु पर गोमट्ट बनाने का उल्लेख है। ऐसा प्रतीत होता है कि उस समय तक चित्तौड दुर्ग पर हमीर का अधिकार नही हो सका था और वहा मालदेव के परिवार के किसी पृथ्वीचद्र राजा का उल्लेख है अथवा इसे मालदेव के पुत्र बणवीर का विशेषण भी कह सकते हैं। हमीर का उसके साथ सघर्ष समावित है। वि० स० १४६५ की चित्तौड की प्रशस्ति में भी इस सघर्ष का[12] उल्लेख है। गोडवाड में बणवीर के समय का शिलालेख वि० स० १३६४ का मिला[13] है, अतएव यह कहा जा सकता है कि हमीर की चित्तौड-विजय वि० स० १३६२–६४ के मध्य सम्पन्न हुई थी। ख्यातो मे बणवीर की सहायता से उसका चित्तौड लेना लिखा मिलता है, किन्तु उसके वि० स० १३६४ के लेख मे उसका उल्लेख एक स्वतत्र शासक के रूप में हो रहा है। अतएव यह ख्यातो का वर्णन कहा तक सही है, कहा नही जा सकता है। इसी प्रकार हमीर के ६४ व र्ष तक राज्य करने की धारणा भी गलत है क्योकि

राजाधिराज पृथ्वीचद्र..............श्रीमालदेवपुत्र बणवीर सत्क सिलहदार महम्मददेव सुहडसिह चउडरा सत्क........पुत्र दिवगत तस्य सत्क गोमट्ट करापित.........." (नाहर जैन लेख सग्रह भाग १ पृ० २४२)

12 वशे तत्र पवित्रचित्रचरितस्तेजस्विनामग्रणी:
श्रीहमीरमहीपति स्म तपति क्ष्मापालवास्तोष्पति ।
तोरुष्कामितमुण्डमण्डलमिथ सघट्टवाचालिता
यस्याद्यापि वदन्ति कीर्त्तिममित. सग्रामसीमाभुव: ॥६॥

(चित्तौड की वि० स० १४६५ की महावीर प्रसाद की प्रशस्ति)

13 ॐ स्वस्ति श्री नृप विक्रमकालातीत सवत् १ (३) ६४ वर्षे चैत्र सुदि १३ शुक्रे श्री आसलपुरे। महाराजाधिराज श्रीबणवीर देव राज्ये "......" (कोट सोलकियो का लेख)

उसके उत्तराधिकारी महाराणा खेता के वि० स० १४२३ का [14] लेख और १४३१ का करेडा जैन मंदिर का विज्ञप्ति लेख मिला [15] है जो अधिक विश्वसनीय है। अतएव हमीर का चित्तौड पर राज्य वि० स० १३६२ ६४ से लेकर १४२१ वि० तक मानना चाहिये।

[राजस्थान भारतीय वर्ष १०
अङ्क २ पृ० २६ पर प्रकाशित]

—:&:—

14. ओझा—उदयपुर राज्य का इतिहास भाग १ पृ० २५८-२५९
15. विज्ञप्ति महा लेख संग्रह पृ० १३-१४

वागड़ में गुहिल राज्य की स्थापना

मध्यकालीन शिलालेखो मे वागड शब्द भूतपूर्व डूगरपुर और बांसवाडा राज्यो क भू माग के लिए प्रयुक्त[1] हुआ है। हाल ही में मिले शिलालेखो और ताम्रपत्रो से यह सिद्ध हो गया है कि इस क्षेत्र म गुहिल-वंशियों का राज्य दीर्घकाल से चला आ रहा था। इस क्षेत्र से ७वी शताब्दी से इनके बराबर शिलालेख मी मिलते आ रहे हैं। यहा गुहिल वंशियो की कई शाखाओ का राज्य रहा है, जिसका विवरण इस प्रकार है –

(१) कल्याणपुर के गुहिल वंशी शासक
(२) मर्तृपट्टवशी गुहिल
(३) सामन्तसिंह या मेवाड के गुहिल
(४) सीहड के वंशज

इन शाखाओ का विस्तृत वर्णन इस प्रकार है –

गुहिल या गुहदत्त की तिथि –

गुहिल वश की संस्थापना गुहिल ने की थी, जिसे गुहदत्त भी कहते हैं। ओझाजी के अनुसार[2] इसकी तिथि ५६६ ई० है। इनकी मान्यता का मुख्य आधार सामोली का शिलालेख है, जिसकी तिथि ७०३ वि० (६४६ ई०) है। वे लिखते हैं कि सामोली का उक्त

(1) ओझा–डूगरपुर राज्य का इतिहास पृ० १–२
(2) ,, उदयपुर ,, ,, पृ० ६६

शिलालेख गुहिल के ५वें वंशधर शीलादित्य का है । औसतन प्रत्येक राजा का शासनकाल २० वर्ष मानते हैं । इस हिसाब से गुहिल का काल वि० सं० ६२३ (५६६ ई०) आना चाहिये । लेकिन ऐसा प्रतीत होता है कि यह तिथि गलत है । हाल ही में नगर गाव से वि० स० ७४१ का एक शिलालेख मर्तृपट्टवंशी गुहिलों का मिला[3] है । इस शिलालेख में ईशानभट्ट उपेन्द्रभट्ट गुहिल और धिनिक नामक राजाओं का उल्लेख है । चाटसू के बालादित्य के शिलालेख में भी इन राजाओं[4] का उल्लेख है और इन्हें स्पष्टतः मर्तृपट्टवंशी माना है, जो गुहिल वंशियों की एक एक शाखा है । इस प्रकार से मर्तृपट्ट ईशान-भट्ट का पूर्वज अवश्य रहा होगा । इससे बहुत समय पूर्व गुहिल का समय होना चाहिए, जिससे कि यह वंश चला है । अतएव ओझाजी द्वारा मानी गई उसकी तिथि वि० सं० ६२३ (५६६ ई०) अवश्यमेव गलत है क्योंकि उसके वंशज मर्तृपट्ट की तिथि ही उनकी मान्यता के अनुसार ६२१ वि० (५६४ ई०) आ जाती है । अतएव इस तिथि पर पुनः विचार करना आवश्यक है ।

कल्याणपुर के गुहिल

कल्याणपुर, जिसे शिलालेखों में किष्किन्धापुरी कहा गया है, उदयपुर से ४५ मील के लगभग दक्षिण में स्थित है । यहां से प्राप्त मूर्तियों के विवरण एवं कई लेख भी प्रकाशित होचुके है । यहां गुहिल वंशियों का अधिकार कब हुआ था, यह बतलाना कठिन अवश्य है किन्तु यह सत्य है कि ७वीं शताब्दी के प्रथम चरण में ही यहा इनका राज्य अवश्य हो चुका था । पुरातत्त्ववेत्ता डा० डी० सी० सरकार[5] राजा पद्र को भी गुहिल वंशी मानते हैं, जिसका एक लघुलेख ७वीं शताब्दी के प्रारम्भ का है जो हाल ही मे प्रकाशित हुआ है इस लेख

---

(3) क्लासिकल एज (भारतीय विद्या भवन, बम्बई द्वारा प्रकाशित) पृ० १६० । भारत कौमुदी पृ० २७४–७६

(4) एपिग्राफिया इण्डिका भाग १२ पृ० १३ से १७

(5) „ „ भाग ३५ पृ० ५५ से ५७

में इसके वंश आदि का उल्लेख नही है। इसमें शिव मन्दिर बनाने का उल्लेख[6] है। इसका 'विरुद' महाराजा ही होने से अनुमान किया जाता है कि यह स्थानीय राजा मात्र था। इसके पश्चात् राजा देवगण शासक हुआ था। इसका उल्लेख यहां से प्राप्त स० ४८ और ८३ के ताम्रपत्रों[7] में किया गया है। डॉ० सी० सरकार इसे पद्र के पश्चात् हुआ मानते हैं और अन्यत्र [8] इसे ६४० ई० में हुआ मानते है। इसके पश्चात राजा भाविहित शासक हुआ था। इसका ताम्रपत्र स० ४८ का मिला है। यह उसके पितृव्य देवगण की स्मृति में ब्राह्मण असगगमा को जारी किया गया था। स्मरण रहे कि लेख में स्पष्टतः 'गुहिलपुत्रान्वये सकलजनमनोहर " आदि विशेषण लगाकर राजा का उल्लेख किया है अतएव इसके गुहिलवंशी होने में संदेह ही नहीं किया जा सकता।

इसके पश्चात राजा भेत्ति शासक हुआ था। इसके समय का एक बहुचर्चित दानपत्र मिला है जो धुलेव के निवासी श्री कालुलाल के पास है। इस दानपत्र में स० ७३ दिया है और राजा के वंश और पूर्वजों का उल्लेख इसमें[9] नहीं है। इस दानपत्र की ७वीं पंक्ति में "दूतकोत्र सामन्त भविहृति" शब्द से कुछ विद्वान् ऐसा भी अनुमान करते हैं कि सामन्त भविहृति निश्चित रूप से स० ४ के दानपत्र वाला भाविहित है और इसका सम्बन्ध भेत्ति से इतना ही है कि यह उसका सामन्त मात्र है। दोनो अलग अलग राजा हैं। किन्तु यह एक मात्र अनुमान ही है। इसका मुख्य आधार यह है कि दोनो के विरुदो में स्पष्टतः अन्तर है। अतएव नाम की समानता से एक ही शासक नहीं

(6) कारित शूलिनोवेश्म शिवसायो (यु) ज्य सिद्धये श्रीमहाराज पद्ड (द) राज्ये (उपर्युक्त)

(7) उपर्युक्त भाग ३४ पृ० १६७

(8) दी ओरिसा हिस्टोरिकल रिसर्च जरनल Vol VIII जुलाई १९५९ में डी सी सरकार का लेख।

(9) एपिग्राफिया इंडिका Vol ३० पृ० १

माना जा सकता[10]। इस दानपत्र की दूसरी पंक्ति में "विदित यथा मया महाराज बप्पिदत्तिः तस्यैव पुण्याप्यायननिमित्यर्थं, आदि उल्लेखित है और ऊबरक गांव दान देने का उल्लेख है। यहां बप्पिदत्ति से कुछ विद्वान् बाप्पारावलका अर्थ लेते हैं एवं कुछ इसका अर्थ पिता से लेते हैं। बाप्पारावल सम्बन्धी विस्तृत दृष्टिकोण श्री रोशनलाल सामर ने अपने लेख "न्यू एसपेक्ट ऑफ धुलेव प्लेट ऑफ[11] महाराज भेत्ति" में दिया है। इस सिद्धान्त में कई भूलें हैं। सबसे पहली मूलभूत बात बाप्पारावल की तिथि वि० सं० ८१० मानी गई है जो राजा कुकडेश्वर के वि० स० ८११ के लेख के मिल जाने से स्वतः गलत[12] साबित हो जाती है। इसके अतिरिक्त मेवाड़ के शिला लेखो में सर्वत्र बाप्पारावल को मुख्य शाखा का ही वर्णित किया है। इसका कल्याणपुर से आकर नागदा में अधिकार कर लेना कही भी वर्णित नही है। इसके विपरीत शिलालेखों में पिता के लिये "बाप्पा या बप्प" शब्द भी प्रयोग[13] में लाया जाता है। अगर यहा बप्पिदत्ति को व्यक्तिवाचक मानें तो यह राजा निःसंदेह मेवाड के बाप्पारावल से भिन्न था और भाविहित के पश्चात् ही शासक हुआ प्रतीत होता है। किन्तु इस सम्बन्ध में कोई निश्चित मत व्यक्त नहीं किया जा सकता। श्री जोगेन्द्रप्रसादसिंह ने अपने लेख "बप्पदत्ति आफ धुलेव-प्लेट एण्ड गुहिल बाप्पा" में श्री सामर के विचारों की आलोचना की है[14]।

---

(10) राजा देवगण भाविहित बामट्ट आदि के बिरुद अवाप्ता शेष महाशब्द, समाधिगतपञ्चमहाशब्द, समुपाजित पञ्चमहाशब्द आदि अङ्कित हैं।

(11) जरनल आफ इण्डियन हिस्ट्री Vol XL भाग II अगस्त, १९६२ सिरियल न० ११९

(12) जनरल आफ राजस्थान हिस्टोरिकल इन्स्टिट्यूट Vol III No. ४ पृ० ४२

(13) जनरल आफ इण्डियन हिस्ट्री Vol XL II पार्ट II अगस्त १९६४ पृ० ४१५-४२३

(14) उपर्युक्त

राजा भेत्ति के पश्चात् बामट्ट शासक हुआ था, जो अपने आपको देवगण का वशज बतलाता है। यह भी अपने दानपत्र में न तो माविहित और न भेति का उल्लेख ही करता है। इसको भी दानपत्र में स्पष्टत गुहिल वशी शासक माना है। दानपत्र के प्रारम्भ [15] में ही "स्वस्ति किष्किन्धापुरात् गुहिलनराधिपवशे गुणमणिगणकिरणरञ्जत ....." आदि कहा है। इस लेख मे "धोरभट्ट स्वामी" नामक एक राजपुत्र का उल्लेख है, जो इसका उत्तराधिकारी रहा होगा। इस क्षेत्र से राजा वैदच्छि का भी एक शिलालेख मिला है। इसे ८वी शताब्दी का माना जाता है। इस लेख में बोण्णा नामक एक स्त्री द्वारा शिव मदिर के लिये कुछ दान देने का उल्लेख है [16]।

इन लेखो मे सबसे बडी कठिनाई इस बात की है कि इनमे प्रयुक्त तिथिया किस सवत की हैं ? कई विद्वानो ने अलग २ मत व्यक्त किये हैं। श्री ओझा और सरकार इसे हर्ष सवत् [17] की तिथिया मानते हैं। श्री मिराशी इसे भट्टिक सवत की तिथि [18] मानते हैं। डा० दशरथ शर्मा ने अपने एक विस्तृत लेख मे भट्टिक सवत् की कई तिथिया प्रस्तुत करते हुए स्पष्ट कर दिया है कि इस सवत की तिथिया जैसलमेर राज्य के भू-भाग के बाहर [19] नही मिली हैं। अतएव यह कहना असगत है कि बागड के पहाडी भाग में कभी, भाटियो का अधिकार हो गया हो। हर्ष सवत् के सम्बन्ध में श्री मिराशी यह स्पष्टीकरण देते

---

(15) एपिग्राफिया इण्डिका Vol ३४ पृ० १६७-१७०
(16) ,, ,, Vol ३५ पृ० ३६-४० श्लोक ७-६
(17) राजपुताना म्युजियम रिपोर्ट १६३३ पृ० २
एपिग्राफिया इण्डिका Vol ३४ एव ३५ मे उक्त लेखो को सम्पादित करते हुए श्री सरकार द्वारा दी गई मान्यता एव धुलेव प्लेट पर उनका लेख (Vol XXX अक्टू० १६५३)
(18) एपिग्राफिया इण्डिका Vol XXX जनवरी १६५३ पृ० १–३,
(19) इण्डियन हिस्टोरिकल क्वाटरली Vol XXXV No. 3 सितम्बर, १६५६ पृ० २२७ में डा० दशरथ शर्मा का लेख

है कि राजा भेत्ति-के दानपत्र में प्रयुक्त तिथि स० ७२ हर्ष संवत् की तिथि ६७६ ई० आती है। उस संवत् में अश्वयुज संवत्सर नहीं था। हर्ष संवत् के प्रचलन की तिथि में ही विवाद[20] है और श्री सरकार इन तिथियों को हर्ष संवत् ही मानते हैं। श्री सामर ने इस संवत् के सम्बन्ध में एक नया दृष्टिकोण प्रस्तुत किया है। वे इसे[21] बाप्पारावल के राज्यारोहण की तिथि से सम्बन्धित मानते हैं। यह सिद्धान्त भी गलत प्रतीत होता है। बाप्पारावल की तिथि से तालमेल बिठाने के लिए इन्होंने दानपत्र की लिपि को भी ६वीं शताब्दी का बतलाया है, जो भी गलत है क्योंकि लिपि से ही सामान्यतः राजा का काल निर्धारण नहीं किया जा सकता। सामोली के शिलालेख की लिपि अन्य[22] समसामयिक शिलालेखों से काफी विकसित प्रतीत होती है अतएव इन्हें हर्ष संवत् की मानना ही अधिक उपयुक्त है। इनका वंशक्रम इस प्रकार हो सकता है —

(20 डी० सी० सरकार इसे ६०६ ई० से और मजूमदार इसे ६१२ में चालू हुआ मानते हैं, जरनल आफ इण्डियन हिस्ट्री XXXVIII भाग ३ पृ० ६०५ के फुटनोट १ में]

(21) उक्त XL भाग II अगस्त १९६२ पृ० ३४८-३५०

(22) एपिग्राफिया इण्डिका भाग ४ पृ० २६-३२

ये राजा आहड और नागदा के प्रारम्भिक गुहिल शासको से नि.सन्देह भिन्न थे क्योकि उस समय मेवाड में जो शासक राज्य कर रहे थे, उनमें से एक का भी नाम इनसे मिलता नही है। इनके लेखो में मेवाड के शासको का स्पष्टत: उल्लेख नही होने से दोनो मे क्या सम्बन्ध थे, यह बतलाना कठिन है।

परमारों का अधिकार

इन वटपद्रपुर के गुहिल राजाओ को मालवे के परमारो ने किया प्रतीत होता है। बागड के परमार वंशी राजा मालवे नरेश के वाक्पतिराज के दूसरे पुत्र डम्बरसिंह के वंशज थे। सम्भवत. वाक्पतिराज[23] ने इस प्रदेश को जीतकर अपने पुत्र को जागीर में दे दिया था। इन राजाओ ने वटपद्रपुर से राजधानी हटाकर अर्थुणा मे स्थापित की, जहा से इस वंश के कई राजाओं के कई शिलालेख भी मिले हैं। डम्बरसिंह के पश्चात् धनिक, चच्च ककदेव, चडप सत्यराज लिम्बराज, मडलीक, चामुण्डराज और विजयराज नामक राजा हुए। विजयराज[25] के शिलालेख वि० स० ११६६ के मिले हैं और इसके पश्चात् इस वंश के शासको का कोई उल्लेख नहीं मिलता। ऐसा प्रतीत होता है कि मालवा-विजय के साथ-साथ गुजरात के सोलंकियों ने बागड भी अपने अधिकार में कर लिया था। सिद्धराज जयसिंह की अवन्ति विजय वि० स० ११९० के आसपास मानी जाती है। इसकी मृत्यु के पश्चात् इसका उत्तराधिकारी कुमारपाल हुआ, जिसे हटाने के लिए कुछ सीमावर्ती राजाओ ने प्रयास किया था। इनमे अजमेर का राजा अर्णोराज, नाडोल का

---

(23) ओझा-राजपूताने का इतिहास भाग १ पृ० २३
 ,, डूगरपुर राज्य का इति० पृ० २३
 गगोली-हिस्ट्री आफ परमार डाइनेस्टीज पृ० ३३७

(24) इण्डियन हिस्टोरिकल क्वार्टरली XXXV No. I मार्च १९५९ में सुन्दरम् का लेख।

(25) जैन लेख सग्रह भाग ३ पृ० १२-१५

चौहान शासक रायपाल और आबू का परमार राजा विक्रमसिंह[26] मुख्य थे। ये चाहड को शासक बनाना चाहते थ। वि० स० १२०१ के आसपास आबू के निकट युद्ध मे कुमारपाल की विजय हुई। उसने अजमेर तक पीछा किया, किन्तु अजमेर विजय नही कर सका। इस प्रकार सघर्षमय स्थिति का लाभ उठाकर आसपास के सीमावर्ती राजाओ ने भी अपने अपने क्षेत्र का विस्तार करने के लिए प्रयास किया हो तो कोई आश्चय नही।

भर्तृपट्टवंशी गुहिल

जैसा की ऊपर उल्लेखित किया जा चुका है कि भर्तृपट्टवशी गुहिल राजाओ का अधिकार प्रारम्भ मे चाकसू के आसपास था। कालान्तर में ये लोग मालवा में जा बसे। धार के पास इगोदा के वि० स० ११६० के दानपात्र मे भर्तृपट्टवशी ३ गुहिल राजाओ का उल्लेख है। इनके नाम है पृथ्वीपाल तिहुणपाल, और विजयपाल[27]। एक सबसे बडी विशेषता यह भी है कि इनके विरूद "महाराजाधिराज परम भट्टारक परमेश्वर" दिया हुआ है। अतएव पता चलता है कि परमार सोलको संघर्ष का लाभ उठाकर इन राजाओ ने भी स्वाधीनता की घोषणा कर दी हो। मालवे के घटनाचक्र मे कुछ समय पश्चात् महत्वपूर्ण परिवर्तन हुआ। वहा रणधवल परमार के पुत्र बल्लाल ने सोलकियो को निकाल कर वापस अधिकार कर लिया। आमेर शास्त्र भडार मे सग्रहित प्रद्युम्नचरित नामक एक अपभ्रश ग्रथ की प्रशस्ति से ज्ञात होता है कि बागड के सीमावर्ती ब्राह्मणवाड मे उसका राज्य विद्यमान था और वहा उसका सामन्त गुहिल मल्लिल राज्य[28] कर रहा था। इससे स्पष्ट है कि बल्लाल ने मालवे का अधिकाश भाग अपने अधिकार

---

(26) अर्ली चौहान डाइनेस्टीज पृ० ५२
एपिग्राफिया इण्डिका भाग ? पृ० २००

(27) इण्डियन एन्टिक्वेरी Vol IV पृ० ५५-५६ की पक्ति १ से ३

(28) ब्राह्मणवाड-णामें पट्टण,
अरिणरणाह-सेण-दल वट्टणु ॥

जगत का[33] वि० स० १२२८ का लेख है। अत एव इसके पश्चात् ही कीतू सोनगरा ने उसे मेवाड से निकालने मे सफलता प्राप्त की होगी। कुभलगढ प्रशस्ति में इसका स्पष्टत[34] उल्लेख है। इस कीतू सोनगरा का कोई शिलालेख मेवाड से प्राप्त नही हुआ है। वि० स० १२३६ के सच्चियामाता के मन्दिर के लेख मे केल्हणदेव का उल्लेख है, जो उसका बडा भ्राता था। उस समय यह तक नाडोल के राज्य म उसको सहायता दे रहा[35] था। इसके पश्चात् वि० स० १२३६ में उनके पुत्र समरसिह का उल्लेख[36] है। अतएव प्रतीत होता है कि वि० स० १२३६ के लगभग ही उसने मेवाड पर अधिकार किया होगा। सामन्तसिह का भी बागड में वि० स० १२३६ के लगभग अधिकार हो गया था, इसकी पुष्टि डूगरपुर राज्य के सोलज ग्राम से प्राप्त[37] वि० स० १२३६ के एक शिलालेख से होती है। इसमे स्पष्टत वहां सामन्तसिह को शासक के रूप म उल्लेखित किया गया है। इस

(32) वरदा—जुलाई १९६२ पृ ८ इण्डियन हिस्टोरिकल क्वाटरली जुलाई-सितम्बर, १९६१ पृ २१५–२१६ जनरल ओरियटल इन्स्टिच्यूट बडोदा सित० १९६४ पृ ७६

(33) सवत् १२२८ वरिषे फाल्गुन—
सुदि ७ गुरौ श्री अम्बिका
दवी महाराज श्री सामन्तसिह देवेन
[जनरल ओरियन्टल इन्स्टिच्यूट बडोदा सित०१९६४ पृ० ७६]
नागरी प्रचारिणी पत्रिका अक १ प २७

(34) कुभलगढ़ प्रशस्ति का श्लोक स० ३९ एव ४०

(35) नाहर जैन लेख सग्रह भाग १ पृ० १९८

(36) वही, भाग १ पृ० २३८, एपिग्राफिया इण्डिका भाग १ पृ० ५२–५४

(37) राजपुताना म्युजियम रिपोर्ट १९१४–१५ पृ० ३
भण्डार की लिस्ट स० ३९२, ओझा—डूगरपुर राज्य का इतिहास—

सामन्तसिंह ने वहा सूरपाल के पुत्र अनगपाल या उसके भाई अमृतपाल से शासन छीना होगा।

सामन्तसिंह का राज्य वागड मे अल्पकालीन ही रहा। उसे गुजरात क राजा ने चैन से नही बैठने दिया। वहा से उसे निष्कासित कर अमृतपाल को वहा का राज्य दिला दिया। इसकी पुष्टि वि० स० १२४२ के एक ताम्रपत्र से होती है, जिसमे स्पष्टत गुजरात के शासक[38] का उल्लेख भी है और अमृतपाल का उसके सामन्त के रूप में। श्री राय चौधरी ने सामन्तसिंह का वागड का राज्य छूट जाने पर गोडवाड मे जाना वर्णित किया है और वि० स० १२५८ के बाणेरा और साडेराव के लेखो म वर्णित सामन्तसिंह को उससे सम्बन्धित माना है और यह भी लिखा है कि उसने बिना मेवाड की सहायता स नाडोल और आबू के भू-भाग को अधिनस्थ नही किया होगा, अतएव उसको मेवाड छोडने की तिथि वि० स० १२५८ से लेकर[39] १२६३ के मध्य आनी चाहिए। किन्तु यह तिथि स्वत. गलत साबित हो चुकी है क्योकि इसके पूव के शिलालेख मयनदेव (१२३६ और १२४२ वि०) आदि मेवाड के शासको के मिल चुके है एव १२६५ वि० मे इस क्षेत्र मे विजयपाल शासक था।

सीहड़ और उसके वंशज

वि० स० १२५१ के बडोदा के हनुमान की मूर्ति के लेख[40] के अनुसार अमृतपाल उस समय वहा शासक था। वि० स० १२५३ का

---

(38) ओझा निबंध सग्रह भाग २ पृ० २०७

(39) राय चौधरी—हिस्ट्री आफ मेवाड पृ० ५४ लेकिन यह वर्णन गलत है। मथनसिंह का लेख वि० स० १२३६ एव १२४२ और पद्मसिंह का लेख १२४२ वि० का मिला है।

(40) "सवत १२५१ वर्षे माहा वदि १ सोमे राज अमृतपाल देव बज्यराज्य" ओझा निबध सग्रह भाग २ पृ० २०६

दीवडा ग्राम का लेख वहा के शिव मन्दिर से गुजरात के शासक भीमदेव[41] का मिला है। इसी का वि० स १२६३ का आहड से एक ताम्रपत्र[42] मिल चुका है। आहड से ताम्रपत्र मिलने से स्पष्ट है कि उसके दक्षिण मे स्थित वागड उस समय तक गुजरात वालो के अधिकार मे था। आट के शिवालय[43] मे वि० स० १२६५ का एक लेख अमृतपाल के वशज विजयपाल का मिला है। इस प्रकार वि० स० १२६५ तक नि सदेह इस क्षेत्र पर अमृतपाल के वशज, जो गुजरात के शासको के सामन्त थे, शासक थे। सीहड और उसके पिता जयतसिंह ने यह क्षेत्र वि० स० १२६५ के पश्चात् ही विजय किया होगा।

सीहड का पिता जयसिंह या जयतसिंह[44] किस परिवार का था, यह बतलाना बडा कठिन है। डू गरपुर राज्य के शिलालेखो मे ही भिन्न २ वर्णन हैं। वि० स० १४६१ की महारावल[45] पाता के समय की एक प्रशस्ति मे, जो डू गरपुर के ऊपर गाव के जैन मदिर में लगी है, इस सम्बन्ध मे वर्णन इस प्रकार है "गुहिल वश मे बाप्पा का पुत्र खुम्माण हुआ। इसके वश मे बैरड, बैरिसिह और पद्मसिह नामक शासक हुए। जैत्रसिह ने पृथ्वी को विजय किया और सीहड के द्वारा

(41) राजपुताना म्युजियम रिपोर्ट सन् १९१४–१५ पृ० २ (उपर्युक्त पृ० २०६)

(42) ओझा निबध सग्रह भाग ४ पृ० ३५ मे स्पष्टत. "महाराजाधिराज परमेश्वराभिनव सिद्धराज श्री मद्भीमदेवः स्व भुज्यमान मेदपाट मडलात. . ... ." वर्णित है।

(43) राजपुताना म्युजियम रिपोर्ट सन् १९२६–२७ पृ. ३ और वरदा वर्ष ६ अंक १ पृ ५५/ मरुभारती वर्ष ६ अक ३ पृ. ५१

(44) सीहड के पिता का उल्लेख स० १३०६ के लेख मे है "............ ·गुहिलवशे शे) रा० जयतसी (सि) ह पुत्र सीहड पोत्र वीजयस्यध (सिह) देवेन कारापित—" (डू गरपुर राज्य का इतिहास पृ. ३६ का फुटनोट ३)

(45) राजपुताना म्युजियम रिपोर्ट सन् १९१५–१६ पृ० २

यह राजवन्ती हुई"। इसके विपरीत डूंगरपुर के बनेश्वर के समीप स्थित विष्णु[46] मन्दिर की वि० सं० १६१७ की महारावल आसकर्ण की प्रशस्ति और वहीं के गोवर्द्धननाथ[47] के मन्दिर की वि० स १६७६ की महारावल पुंजा की प्रशस्ति मे जयसिह को सामन्तसिंह का पुत्र बतलाया है। मेवाड के शिलालेख[48] इस सीहड के सम्बन्ध मे मौन हैं। आधुनिक लेखको मे श्री ओझाजी ने जयसिंह को सामन्तसिंह का पुत्र ही बतलाया[49] है। इन्होने नैणसी की मान्यता की ही पुष्टि की है। राय चौधरी ने जयतसिंह को जैत्रसिंह से सम्बन्धित माना[50] है, जो मेवाड मे वि०सं० १२७०–१३०९ तक शासक था। इसकी पुष्टि मे इन्होने चीरवा के लेख का वह अश दिया है, जिसके अनुसार अर्थुणा के युद्ध मे मेवाड[51] की सेनायें लडी थी।

इस सम्पूर्ण सामग्री को देखने से हम इस परिणाम पर तो आसानी से आ जाते हैं कि सीहड भी मेवाड के राजवश से सम्बन्धित

---

(46) सामन्तसी (सिंह) रा० (रावल) ३१ जीतसी (जयतसिंह) रा० ३२ सीहडदेव (देव) रा०.................." (ओझा निबध सग्रह भाग २ पृ. २०६)

(47) सामन्तसिंहोस्य विभुविजय्ये (श्रे)। (५३) सजि (जी) तसिंह तनय प्रपेदे य एव लोक सकल विपय्ये (श्रे)" तस्य सिंहल देवोऽभूत्—(उपर्युक्त)

(48) राज प्रशस्ति मे समरसिंह के पुत्र का नाम कर्ण दिया है जिसके ज्येष्ठ पुत्र माहप को डूंगरपुर राज्य का सस्थापक बतलाया है "कर्णात्मजो माहपरावलोऽभवत्स डूंगराद्ये तु पुरे नृपो यमो-" लेकिन यह गलत है।

(49) ओझा–डूंगरपुर राज्य का इतिहास अध्याय ४, पृ ४४ से ५३

(50) राय चौधरी–'फाउन्डेसन आफ गुहिल पावर इन बागड" नामक लेख और हिस्ट्री आफ मेवाड पृ. ५४

(51) रत्नानुजोस्ति रुचिराचारप्रख्यातधीरसुविचारः।
मदनः प्रसन्नवदनः सतत कृतदुष्टजन कदनः ॥२७॥

था। इसके पूर्वज 'आहडा' भी कहलाते थे क्योंकि ये आहड से आये थे। अब प्रश्न सीहड के पिता जयसिंह के सम्बन्ध में है। वि० सं० १४६१ के लेख मे पद्मसिंह और जैत्रसिंह का उल्लेख होन से इसे मेवाड का राजा जैत्रसिंह मान सकते हैं। इसी शासक ने मेवाड वालो को गुजरात के राजाओ की अधीनता से मुक्त कराया था। समसामयिक कृति "हमीर मद मर्दन" में वीर धवल का यह[52] कथन उल्लखनीय है कि गुजरात के राजा की सहायता मेवाड के जैत्रसिंह ने नही की थी और इसे अत्यन्त अभिमानी भी वर्णित किया है, जिसे अपनी तलवार के बल पर बडा-घमड था। इसको चीरवा और घाघसा के लेखो[53] मे भी इसी प्रकार से वर्णित किया है कि इसने गुजरात के राजा को हराया था।

सामन्तसिंह का राज्य बागड में अल्पकालीन ही था। अतएव उसके वशजो का वहा स्थायी रूप से रहना सभव प्रतीत नही होता। मेवाड मे भी उसके छोटे भाई के वशज ही रह गये थ। इसके साथ ही साथ सामन्तसिंह का अंतिम लेख वि० स० १२३६ का है जबकि सीहड का अन्तिम लेख वि० स० १२६१ का। इस प्रकार दोनो मे अन्तर भी अपेक्षाकृत अधिक रहता है। अतएव जब तक अधिक विश्वसनीय समसामयिक कोई सामग्री उपलब्ध नही हो जावे, सीहड का सम्बन्ध सामन्तसिंह से स्थिर नही किया जा सकता है।

अतएव जैत्रसिंह को सीहड का पिता मानना चाहिये और उसका वशक्रम इस प्रकार से स्थिर किया जा सकता है —

य श्री जैत्रलकार्येमवदुत्थूणकरणागणे प्रहरन्।
पञ्चलगुडिकेन सम प्रकटबलो जैत्रमल्लेन ॥२८॥ चीरवा का लेख

(53) प्रतिपार्थिवायुर्वायुकवलनप्रसपदसिकसर्पायमाणकृपाण-
दपरिमितमस्मदमिलित मेदपाटपृथिविललाटमण्डल जयतल
(हमीर मद मर्दन पृ २७)

(53) न मालवीयेन न गौजरेण न मारवेशेन न जांगलेन।

जैत्रसिंह (१२७०–१३०८ वि०)

- सीहड (१२७७ से १२९१ वि०)
  - विजयसिंह १३०६-१३४२ वि०)
- तेजसिंह (१३०८–१३२४)
  - समरसिंह (१३३०- १३५८ वि०)
- पृथ्वीदेव (१३०७ वि. का खमनोर का लेख

अतएव सीहड को जिसे ख्यातो मे डूंगरपुर राज्य का सस्थापक माना गया है और जिसके बाद वशावली बराबर मिलती है, वहा के मौजूदा राजवशो का सस्थापक माना जा सकता है।

[वरदा के वासुदेव शरण अग्रवाल स्मृति अंक में प्रकाशित]

—❀—

म्लेच्छाधिनाथेन कदापि मानो ग्लानि न निन्येवनिपस्य यस्य ॥
(चीरवा का लेख)

श्रीमद्गुर्ज्जरमालवतुरष्कशाकंमरीश्वरैर्यस्य ।

चक्रे न मानभगः स स्वः स्यो जयतु जैत्रसिंह नृपः ॥४॥

वरदा (घावसा का लेख वर्ष ५ अंक ३ में आचार्य परमेश्वर सोलंकी द्वारा सम्पादित) गुजरात के राजाओ से युद्ध आगे भी चलता रहा प्रतीत होता है। चीरवा के लेख में बाला का कोटडा में राणक त्रिभुवन के साथ युद्ध करते हुए वीरगति पाना लिखा है (श्लोक १६)

महाराणा रायमल और सुल्तान गयासुद्दीन | ३

महाराणा रायमल महाराणा कुंभा का पुत्र था। इसका राज्यारोहण सं० १५३० के लगभग है। कुंभा की हत्या के पश्चात उदा ज्येष्ठ पुत्र होने के नाते उसका उत्तराधिकारी बना था लेकिन पितृहत्यारा होने से मेवाड़ के जागीरदार उसके विरोधी हो गये और रायमल को जो उस समय ईडर में रह रहा था मेवाड़ पर अधिकार करने को बुलाया। कुछ युद्धों के पश्चात् वह उनको हटाकर मेवाड़ का राज्य पा सकने में सफल हो गया और उदा अपने परिवार के साथ भागकर माडू के सुल्तान गयासुद्दीन खिल्जी की शरण में चला गया।[1]

सुल्तान गयासुद्दीन और फारसी तवारीखें

सुल्तान गयासुद्दीन मोहम्मद खिलजी का ज्येष्ठ पुत्र था और अपने पिता के बाद मालवे का सुल्तान बना था। फारसी तवारीखों मे इसका वर्णन अत्यन्त संक्षेप में लिखा मिलता है। वाकीयात-इ-मुस्ताकी के अनुसार सुल्तान अपने महल से ही अपने शासन काल में केवल दो बार बाहर निकला था।[2] एक बार जोधपुर में एक अनिर्णीत आक्रमण के लिए और दूसरी बार एक तालाब और बाग देखने के लिये। अन्यथा आजीवन महल में ही रहा। फरिश्ता भी इसी[3] प्रकार

---

1 ओझा—उदयपुर राज्य का इतिहास भाग १ पृ० ३२७-२६। वीर विनोद भाग १ पृ० ३३८ डे—मिडीवल मालवा पृ० २२३.

2 जरनल आफ इण्डियन हिस्ट्री दिसम्बर १९६२ पृ० ७५।

3 ब्रिग्ज—तारीख इ फरिश्ता का अनुवाद भाग ४ पृ० २३६-२३६

का वर्णन करता है। वह लिखता है कि राजगद्दी प्राप्त करते ही सुल्तान ने एक राजसभा सम्पन्न की और उसमे घोषणा की कि वह अपना अधिकाश समय अब शातिपूर्ण ढग से ही व्यतीत करेगा और महल से बाहर ही नही आवेगा। उसने अपने ज्येष्ठ पुत्र नसीरुद्दीन के हाथो राज का सारा काम काज सौंप दिया। इन तवारीखों से यही सिद्ध होता है कि वह आजीवन महल में ही बन्द रहा और उसने साम्राज्य की रक्षा के निमित्त कोई कदम नही उठाया। परन्तु फारसी तवारीखो के अतिरिक्त समसामयिक कई सामग्री ऐसी उपलब्ध हैं जिनसे यह कहा जा सकता है कि दीर्घकाल तक इस सुल्तान का महाराणा रायमल के साथ सघर्ष चलता रहा था और यह स्वय सेना लेकर मेवाड पर चढाई करने भी आया था एव इन तवारीखों का वर्णन अतिरजित है।

गयासुद्दीन का मेवाड़ पर आक्रमण

गयासुद्दीन ने महाराणा उदा के पुत्रो को मेवाड मे पुनर्स्थापित करने के लिए वि० स० १५३० मे चढ़ाई की थी। इस चढाई का वर्णन फारसी तवारीखो म तो जैसा कि ऊपर उल्लेखित किया जा चुका है बिलकुल नहीं है किन्तु इनके विपरीत डूगरपुर और दक्षिण द्वार के सम सामयिक लेखों मे उसकी चढाई का उल्लेख है। विशेष उल्लेखनीय यह है कि दोनों लेखो म सुल्तान के व्यक्तिगत रूप से आने का उल्लेख है। डूगरपुर का का यह लेख वि० स० १५३० का है जो वहा के सूरजपोल पर लगा हुआ है। इसमे लिखा है कि जब सुल्तान गयासुद्दीन ने आक्रमण किया और नगर को नष्ट किया तब रातकाला जो विलिया का पुत्र था अपना कर्तव्य समझ कर आक्रमण कारी म युद्ध करता हुआ वीरगति को प्राप्त[4] हुआ। सुल्तान डूगरपुर से मेवाड क पश्चिमी भाग में होता

---

4. "सवत् १५३० वर्षे शाके १३६६ प्रवर्तमाने चैत्रमासे कृष्णपक्षे षष्ठाया तिथौ गुरु दिने बीलीआ_माला सुत रातकालइ मण्डपाचलपति सुरत्राण ग्यासदीन आवि-डूगरपुर भाज तई स्वामि न इच्छति आत्मणउं कुल मार्ग अनुपालतां

हुआ चित्तौड तक बढ आया। उस समय बडा भयकर युद्ध हुआ जिसमें सुल्तान की हार हुई और वह लौटने को बाध्य हुआ। इस घटना का उल्लेख दक्षिण द्वार की वि० स० १५४५ की प्रशस्ति में है जिसमे उल्लेखित है कि महाराणा ने ग्यासशाह के वर्व को चूर कर दिया।[5] इस युद्ध में गोरी जाति के एक वीर राजपूत ने विशेष कौशल दिखाया और दुर्ग के एक शृ ग पर जिसे आगे चलकर उसके नाम से ही गौर शृ ग कहा जाने लगा था वीरता पूर्वक युद्ध करते हुए परलोक सिधारा।[6] इस घटना से पुष्टि होती है कि सुल्तान ने चित्तौड पर आक्रमण अवश्य किया थाकिन्तु उसकी हार हो गई थी। इस युद्ध में सुल्तान का एक सेनापति जहरुल्ल मुल्क भी मारा था।

पूर्वी राजस्थान की समस्या

महाराणा रायमल कु भा के समान न तो कुशल राजनीतिज्ञ था और न अपने पुत्र सागा के समान वीर। उसके शासन काल मे मेवाड में घरेलू समस्यायें इतनी अधिक पैदा हो गई थी कि वह अपने पिता और पुत्र की तरह पूर्वी राजस्थान मे बढते हुए मुस्लिम प्रभाव के लिये कुछ भी नही कर सका। महाराणा कु भा के अन्तिम दिनो मे ही इस क्षेत्र पर मुस्लिम प्रभाव बढना शुरू हो गया था।

वीर व्रतेन प्राण छोडी सूर्य मडल भेदी सायोज्य मुक्ति पामी "' डू गरपुर राज्य का इतिहास पृ० ६६।

5. यन्त्रायन्त्रि हलाहलि प्रविचलद्दन्तावलव्याकुल वल्गद्वाजिबलत्रमेलककुल विस्फारवीरारव।
सम्वान तुमरु महासिहतिभिः श्रीचित्रकूटे गल दुर्गवं ग्यासशकेश्वर व्यरचयत् श्री राजमल्लो नृप ॥६८॥
(भाव नगर इन्स्क्रि० पृ० १२१)

6. कश्चिद्गोरो वीरवर्यः कोप युद्धेस्मिन् प्रत्यह सजहार।
तस्मादेतन्नाम काम बभार प्रकारोशश्चित्रकूटस्य शृ ग ॥६६॥
(उपरोक्त)

आमेर टोडा आदि भागो से उसने मुसलमानो को हटाकर स्थानीय राजपूत राजाओ को फिर से स्थापित करा दिया थ।[7] लेकिन वि० स० १५१५ के पश्चात् नैनवा, रणथम्मोर टोक आदि का भाग उसके हाथ से चला गया था और वहाँ मालवे के सुल्तान का प्रतिनिधि अल्लाउद्दीन उस समय शासक था।[8] इसका उल्लेख उस समय लिखी गई ग्र थप्रशस्तियों मे मिलता है। इस अलाउद्दीन को वि० स० १५३३ (१४७६ ई०) के पूर्व वहा से हटा दिया प्रतीत होता है क्योंकि इसके बाद की सारी

श्लोक स० ७१ भी द्रष्टव्य है।
जङ्गीरलमहीधर धरणिवृत्रजिद्विक्रमा–
दटत्कटक_क्रिद्रु ममभावृतेरुनतम्।
विभिद्य भिदुरासिभिर्विपुलपक्षमक्षीणवी–
रुदक्षिपदिवोपले समिति राजमल्लो विभुः॥७२॥ (उपरोक्त)

7. आम्रदाद्रिदलनेन दारुण कोटडाक्लह केलीकेसरी.........
कुम्भलगढप्रशस्ति का श्लोक स० ॥२६२॥
"तोडामडलग्रहीच्च सहसा जित्वा शकदुर्ज्जय ॥१५७॥
एकलिंग माहात्म्य

8 नरसेन द्वारा लिखित 'सिद्धचक्र कथा" की प्रशस्ति मे "सवत्, १५१५ वर्षे जेष्ठ सुदि १५ रवौ नैणवाह पतने सुरत्राण अल्लावदीण राज्ये......" वर्णित है। कातन्त्ररूप माला की प्रशस्ति (ह० ग्र० स० २१४४ आमेर शास्त्र भडार) की प्रशस्ति मे भी इसी शासक का उल्लेख है "सवत् १५२४ वर्षे कार्तिक सुदि ५ दिने श्री टोकपत्तने सुरत्राण अलावदीन राज्य प्रवर्तमाने श्री मूल सघे बलात्कार गणे" इसी प्रकार नैनवां की वि.स० १५२८ की ग्रंथ प्रशस्ति मे भी ठीक इसी प्रकार का उल्लेख है। "सवत् १५२८ वर्षे श्रावण सुदी १ बुधे श्रवण नक्षत्रे शुभनाम योगे श्री नयनवाह पतने सुरताण अलावदीण राज्य प्रवर्तमाने" (नय कुमार चरिउ की प्रशस्ति)

प्रशस्तियो में स्वय गयासुद्दीन का नाम मिलता है।[9] रणथमोर पर फिदईखा का राज्य था। समसामायिक लेखक "शिहाब हकीम' ने भी इसका उल्लेख किया है। हि० स० ८७० (१४६५ ई०) मे जब वह रणथमोर आया तब वहाँ फिदई खा शासक था। यहा से वह माडू गया। गयासुद्दीन के राज्यारोहण के बाद भी रणथम्भोर इसी फिदई खा को जागीर में दिया गया था। मालवे के सुल्तान के साथ २ दिल्ली के बादशाह भी इस क्षेत्र म अपना प्रभाव बढाने को उत्सुक थे। वि० स० १५३९ (१४८२ ई०) में सुल्तान बहलोल लोदी ने रणथमोर के समीप स्थित आलनपुर पर आक्रमण किया था।[10] गयासुद्दीन ने चदेरी के मुक्ती शेरखा को उससे युद्ध करने को कहा जिसने युद्ध मे बहलोल को हरा दिया। इस प्रकार घटनाचक्र मे महत्वपूर्ण परिवर्तन हुआ और इस क्षेत्र मे मालवे के सुल्तान का एकाधिपत्य स्थापित हो गया।

बून्दी और टोडा की समस्या

पूर्वी राजस्थान मे बून्दी और टोडा उस समय का महत्वपूर्ण हिन्दू राज्य थे। मोहम्मद खिलजी ने भी यहा के शासको को हराया

---

9 आमर शास्त्र भडार मे सग्रहित धन्य कुमार चरित की प्रशस्ति ' सवत् १५३३ वर्षे पोषसुदी ३ गुरौ श्रवण नक्षत्रे श्री नयनपुरे सुरत्राण गयासुदीन राज्ये प्रवर्तमाने श्री मूल सघे " (डा० कासलीवाल प्रशस्ति सग्रह पृ० १६)
मासिर-इ मोहम्मद शाही पत्र ६७ (मिडिवल मालवा पृ० ४०० से उद्धृत)

10 डे-मिडिवल मालवा पृ०। तारिख -इ फरिश्ता का ब्रिग्ज का अनुवाद जिल्द ४ पृ० २३७-२३८
जरनल आफ इडियन हिस्ट्री दिसम्बर १९६२ पृ० ७५

11. शेरखा के सम्बन्ध में कई शिलालेख और ग्रथ प्रशस्तियाँ चन्देरी से मिली है। "क्रियाकल्प" नामक एक ग्रंथ की वि०

था जिन्हे कुम्भा ने वापस सस्थापित कर दिया था । टोडा का शासक राव सुरत्ताण या सूरसेण था । इसकी पुत्री ताराबाई का विवाह मेवाड के महाराणा रायमल के पुत्र पृथ्वीराज के साथ हुआ था । टोडा से इसे वि० स० १५३७ (१४८० ई०) के पूर्व ही अवश्य निकाल दिया था । क्योंकि वहा से प्राप्त आदि पुराण की एक प्रशस्ति मे शासक का नाम गयासुद्दीन दिया हुआ है ।[12] राव सुरत्ताण या सूरसेण को मेवाड में पुर ग्राम जागीर मे दिया था । वि० स० १५५१ (१४६४ ई०) की लब्धिसार[13] नामक एक ग्र थ की प्रशस्ति उस समय की देखने को मिली है जिसे मैंने अनेकान्त पत्रिका मे अलग से प्रकाशित करा दी है । उसे बदनोर इसके बाद दिया था । सूरसेण को यद्यपि मेवाड की ख्यातो के अनुसार पृथ्वीराज ने स्थानीय शासक लल्ला खा पठान को हराकर वापस टोडा दिया था किन्तु यह घटना वि०स ० १५५१ के पश्चात् ही हुई थी । अब तक इसकी वि० स० १५८० के पहले की कोई टोडा से प्रशस्ति नही मिली है । यह उस समय काफी वृद्ध हो चुका था । इसका पौत्र रामचन्द्र चाटसू मे वि० स० १५८०–८४ तक शासक था और महाराणा सागा का सामन्त था । राव भाण को भी बून्दी से गयासुद्दीन ने निकाल

स० १५३६ की प्रशस्ति म" राजाधिराज माडोगढ दुर्गे श्री सुरत्ताण गयासुद्दीन राज्ये चदेरी देशे महाशेर खान ..."

12 तेरापंथी जैन मदिर जयपुर मे आदि पुराण (हस्त०) की वि० स ० १५३७ की प्रशसित उल्लेखनीय है" सवत् १५३७ फाल्गुण सुदि ६ रवि वारे उत्तरा–नक्षत्रे-सुरत्राण ग्यासुदीन राज्य प्रवर्तमाने टोडागढ दुर्गे पार्श्वनाथ चैत्यालये (राजस्थान के जैन भडारो की सूची भाग २ पृ० २०६)

13. विरधीचन्द जी के जैन भडार लब्धीसार की हस्त० प्रति में प्रशस्ति इस प्रकार है" सवत् १५५१ वर्षे आषाढ सुदी १४ मगल वासरे ज्येष्ठा नक्षत्रे श्री मेदपाटे श्रीपुरनगरे श्री ब्रह्मचालुक्यवशे राजाधिराज रावश्रीसूर्यसेनराज्य प्रवर्तमाने (उपरोक्त भाग ३ पृ० २१)
इस प्रशस्ति को मैंने सम्पादित करके अनेकान्त दिसम्बर १९६६ के अक मे प्रकाशित भी करा दिया है।

दिया था उसने भी मेवाड में महाराणा रायमल के यहां आकर के शरण ली थी। इसे कुछ समय तक भीलवाडा नगर[14] भी जागीर मे दिया हुआ था। वि० स० १५५६ (१५०२ वि०) की पट कर्मोपदेश म ला की एक प्रशस्ति मे इसका उल्लेख है । सममामयिक गुरगुणरत्नाकर नामक जैन ग्र थ जिसे वि० म० १५४१ मे विरचित किया गया था, में प्रसगवश हाडोती के लिये उल्लेखित है कि यह मालवे के राजा के अधीन था।[15] वि० स० १५४६ मे लिखे सुकुमाल चरित नामक ग्रथ की प्रशस्ति से पता चलता है कि बारा मे सुल्तान गयासुद्दीन का राज्य था।[16] इस प्रकार महाराणा रायमल को सुलतान गयासुद्दीन के विरुद्ध इन राजाओ को सहायता देनी पडी। बून्दी राज्य के खटकड ग्राम मे उस समय हाडा शासक विद्यमान थे।[17] रावमाण की निधन तिथि वि० स० १५६० मानी जाती है और इसके बाद नारायण दास वहा शासक हुआ था। इसका शासन काल अल्पकालीन ही था क्योंकि रजूरी गाव के लेख मे वि० स० १५६३ मे सूरजमल बू दी का शासक

14 पट् कर्मोपदेशमाला ग्र थ की प्रशस्ति मे "सवत् १५५६ वर्षे चैतसुदी १३ शनिवासरे शतभिखा नक्षत्रे राजाधिराज श्री माण विजयराज्ये भीलोडा ग्रामे श्री चन्द्रप्रभ चैत्यालये ·····"
(उपरोक्त भाग ३ पृ० ७२)

15 हाडावतीमाल्व देशनायक—
प्रजाप्रियाऽहमद मुख्यमन्त्रिणा ।
श्रीमण्डपक्ष्माधर भूमिवासिना
सघाधिनाथेन च चन्द्रसाधुना ॥३८॥ (गरगुण रत्नाकर काव्य)

16. "सवत् १५४६ वर्षे ज्येष्ठ सुदी ६ बुधवासरे पुष्यनक्षत्रे बारावती नगर्या सुरत्राण ग्यासुदीन राज्ये श्री मूलसघे·········"
(प्रशस्ति सग्रह पृ० १६५)

17. सवत् १५६० वर्षे महासुदी १३ सोमे श्री खटग्दुर्गे राव श्री अक्षयराज कवर नरवद राज्य प्रवर्तमाने··· ··· ··· ····
(उपरोक्त पृ० ६३)

हो चुका था।[18] अतएव पता चलता है कि वि० स० १५६० के लगमग यह भू-माग बून्दी वालो ने वापस हस्तगत कर लिया हागा।

अजमेर क्षेत्र

अजमेर नरेना साभर आदि के क्षेत्र पर भी गयासुद्दीन ने अधिकार कर लिया था। अजमेर मे उस समय उलगा इ-आजम जिसका पूरा नाम उलगाइआजम कुतलग-इ मुअजजम है जो गयासुद्दीन का मुकेती था जिसका उल्लेख सोहूर (मध्य प्रदेश) से प्राप्त एक शिलालेख मे है जिसमे यह[19] वर्णित किया है कि उक्त अधिकारी हि० स० ८८८ (१४६३ ई०) में अजमेर से वहा अपने पुत्रो की शादि के लिये गया था उसके साथ ७००० सैनिक भी थे। ऐसा प्रतीत होता है कि बहलोल लोदी के आक्रमण के समय इसने वहा सैनिको के सहित प्रयाण किया। इसके बाद मारवाड़ की ख्यातो के अनुमार वहा मल्लूखा (मलिक यूसुफ) वि० स० १५४७ में शासक था। इसने राव सातल के भाई वरसिंह को अजमेर बुलाकर धोखे से पकड लिया। इस पर राठोडो ने उस पर आक्रमण किया उस समय तो उसने वरसिंह का छोड दिया पर शीघ्र ही मेडते पर आक्रमण कर दिया। इस प्रकार स्पष्ट है कि अजमेर मेवाड के महाराणा के अधिकार मे उस समम नही था और यह गयासुद्दीन के साम्राज्य का भू-माग था। श्रीनगर के पवारो ने इस क्षेत्र पर रायमल के अन्तिम दिनो में अधिकार कर लिया प्रतीत होता है। क्योकि कर्मचन्द पवार के यहा रायमल के पुत्र सागा ने शरण ली थी।[21] इसी प्रकार सीकर

---

18. गजेन्द्रगिरिसश्रय श्रयति धधुमार यकः
 स पटपुरनराधिपो नमति वंदो य सदा
 कुमार इह भक्तिभिर्भजति चन्द्रसेन. पुनः
 स वृन्दावतिका विभु. श्रयति सूर्यमल्लोपि च ॥ ६ ॥
 (खजूरी का लेख)
19. इपिग्राफिआ इडिका (परेसियन अरेबिक सप्लेमेन्ट) १६६४ पृ० ६१
20. रेऊ—मारवाड का इतिहास भाग १ पृ०१०५
21. ओझा—उदयपुर राज्य का इतिहास भाग १ पृ० ३४२–४३

तक भी गयासुद्दीन का शासन रहा प्रतीत होता है वहा मे[22] वि० स० १५३५ का एक शिलालेख गयासुद्दीन के राज्य का भी प्राप्त हो गया है। चाटसू मे उसका सामन्त राज मवर कछावा वि० स० १५५६ म शासक था।

मांडलगढ़ का संघर्ष

दक्षिण द्वार की प्रशस्ति के अनुसार महाराणा[23] रायमल के समय गयासुद्दीन के सेनापति जफरखा ने मेवाड पर चढाई की थी। यह मेवाड के पूर्वी भाग को लूटने लगा। इसकी सूचना पाते ही महाराणा ने अपने कु वर पृथ्वीराज जयमल पत्ता रामसिंह कांधल चूडावत सारगदेव अज्जावत कल्याणमल खीची आदि कई सरदारो को उससे लडने भेजा। माडलगढ के पास युद्ध हुआ वहा घमासान युद्ध के पश्चात् जफरखा को हराकर लौटना पडा। महाराणा ने भागती हुई सेना का पीछा किया और हाडौती मे स्थित खेराबाद तक बढ़े चले गये जहा और युद्ध हुआ व जहा भी मेवाड की सेना की विजय हुई।

इस प्रकार मेवाड के महाराणा रायमल और गयासुद्दीन के मध्य मेवाड मे दो बार युद्ध हुए जिसम महाराणा रायमल की ही जीत हुई फिर भी वह उसकी बढती हुई शक्ति को खतम नही कर सका। उसका साम्राज्य राजस्थान के बहुत बड़े भू भाग पर फैला हुआ था।

---

22. राजपुताना म्युजियम रिपोर्ट १६३५ पृ० ४ शिलालेख न० ६
23. श्री डे ने मिडिवल मालवा में वर्णित किया है कि माडलगढ महाराणा कु भा के समय से मालवा के सुल्तान के अधीन हो गया था (पृ० १६०) किन्तु यह गलत है। गयासुद्दीन के इस प्रकार आक्रमण करने से प्रकट होता है कि यह उस समय तक मेवाड मे ही था। दक्षिण द्वार की प्रशस्ति में यह प्रकार से उल्लेखित है —
    मौलो मडल दुर्गमध्यधिपति. श्रीमेदपाटावने–
    र्गाह ग्राहमुदारजाफरपरीवारोरुवीरव्रज ।

यह पहला और अन्तिम अवसर था जबकि एक लम्बे समय तक मालवे के सुलतान का राजस्थान के इतने बड़े भू भाग पर अधिकार रहा हो। तारापुर के कुंड के लेख के अनुसार[24] सुलतान गयासुद्दीन ने अपने हाथो से साम्राज्य विस्तार किया था। रायमल जैसा कि ऊपर उल्लेखित है अपने घरेलू झगड़ो में अधिक व्यस्त होने के कारण पूर्वी राजस्थान की समस्याओ की ओर ध्यान नही दे सका।

[राजस्थान भारती
भाग १० अंक ३ में
प्रकाशित]

कठच्छेदर्मा निक्षिपरिक्षतितले [श्रीराजमल्लो द्रुतं
ग्यासक्षोणिपतेः क्षणान्निपतिता मानोन्नता मौलयः ॥७७॥

24. श्री मालवोल्लसित मडनदुर्ग साम्राज्यपूर्णपुरुपार्थसुधा मिलापः प्रौढ प्रतापजित् दिग्वलयो विभाति भूवल्लभः मलचि साहि गयासुदीन ॥ (जैन सत्यप्रकाश वर्ष ३ पृ० ६४ में प्रकाशित तारापुरकुण्ड का लेख)

टोड़ा के सोलंकी

४

टोडा या टोडारायसिह राजस्थान मे टोक जिले मे स्थित है और यहा सोलकियो का छोटा सा राज्य १५ वी और १६ वी शताब्दी मे रहा था ।

नैणसी के अनुसार टोडा के सोलकियो मे दुर्जनसाल,[1] हरराज, सुरत्ताण, ऊदा वैरा, ईसरदास, राव आणदा आदि शासक हुये थे । टोडा आवा आदि स्थानो से प्राप्त शिलालेखो और ग्रथ प्रशस्तियो मे जो उल्लेख मिलता है वह इससे पूर्णतया भिन्न है । इनमे से सेडबदेव, सूर्यसेन, पृथ्वीराज, रामचन्द्र, परशुराम, कल्याण और राव सुर्जन का उल्लेख है । इनमे एक नाम राव सुरत्राण और सूर्यसेन मिलता सा है जो मेवाड मे दीर्घकाल तक रहा था ।

इन सोलकियो का मूलनिवास[2] गुजरात मे था । वहा से ही इस क्षेत्र मे आये हो ऐसा विश्वास किया जाता है । इनका राज्य यहा कब स्थापित हुआ था इसकी कोई निश्चित तिथी सामग्री के अभाव मे बतलाना कठिन है । इतना अवश्य सत्य है कि १४वी शताब्दी के पश्चात् पूर्वी राजस्थान में मुख्य रूप से लालसोट, बयाना, महुवा, नैनवा आदि स्थानो मे मुसलमान जागीरदार शक्ति बढा रहे थे । कछावा भी इस समय आमेर के आस पास राज्य सस्थापना के लिए सघर्ष कर रहे थे । इसी समय के आस पास ही सोलकियो ने टोडा के आस पास अपना छोटा सा राज्य स्थापित कर लिया हो । प्रारम्भ के राजाओ के नाम अब तक

1 नैणसी की ख्यात भाग १ पृ० २१६
2 उक्त पृ० २१६

मिले नही हैं । टोडा से प्राप्त ग्र थ-प्रशस्तियो मे सबसे प्राचीन वि० स० १४६२ माघ सुदि २ की सढबदेव सोलकी की है जो जम्बुद्वीप प्रज्ञप्ति ग्र थ की है । इसका सक्षिप्त नाम सोडा है । यह महाराणा कुम्भा का समकालीन था । इसके समय मे इस क्षेत्र के लिये बडा सघर्ष चला था। मुसलमानों ने टोडा को जीत कर सोलकियो को निकाल दिया था । कुम्भा ने एकलिग[3] माहात्म्य के अनुसार टोडे[4] पर इनको वापिस स्थापित किया था । वि० स० १५१० माघ सुदि का एक लेख टोंक से खुदाई मे मिली नव जैन मूर्तियो मे से एक पार्श्वनाथ की चरण पीठिका पर खुदा हुआ[4] है जिसम यहा के शासक का नाम "लुगरेन्द्र" खुदा हुआ है । यह या तो स्थानीय सोलकी शासक होना चाहिए अथवा ग्वालियर के राजा डू गरसिंह का नाम होना चाहिए जिसे खोदने वाले ने डू गरेन्द्र के स्थान पर 'लू गरेन्द्र" खोद दिया हो । एक लेख म इसका नाम "डू गरेन्द्र" भी कर दिया[5] है । वि० स० १५२४ की आमेर शास्त्र भण्डार में सग्रहित कातत्र माला"[6] की एक प्रशस्ति म टोंक क शासक का नाम अल्लाउद्दीन दे रक्खा है । यह नैनवा क्षेत्र का स्थानीय शासक था ।[7] इसकी वि० स० १५१५ से लेकर १५२८ तक की कई ग्र थ

---

3 तोडामडलमग्रहीच्च सहसा जित्वा शकदुर्जय ।
जीव्याद्वर्षशत स मत्यतुरग श्री कुम्भकर्णो भुवि ॥१५३॥
एकलिंग माहात्म्य का राजवश वर्णन

4. जैन शिलालेख सग्रह भाग ३ पृ० ४८६–८६

5. ग्वालियर का स० १५१० का लेख दृष्टव्य है– "सिद्धि सम्वत् १५१० वर्षे माघ सुदि ८ (अ) ष्टमे (म्या) श्री गोपगिरौमहा-राजाधिराज श्री ड (डू.) गरेन्द्रदेव राज्य ' इसका शासनकाल वि० १४८० से था ।

6 कातत्र माला की प्रशस्ति "सवत् १५२४ वर्षे कार्तिक सुदि ५ दिने श्री टोंक पतने सुरत्राण अल्लाउद्दीन राज्ये · "

7. वि० स० १५१५ की नरसेनदेव द्वारा लिखित सिद्ध चक्र कथा की प्रशस्ति वि० स० १५१८ ज्येष्ठ शुक्ला ३ की प्रद्युम्न चरित की प्रशस्ति आदि जो ग्रन्थ आमेर शास्त्र भण्डार मे सग्रहित हैं दृष्टव्य हैं।

प्रशस्तिया देखने को मिली हैं। इससे प्रकट होता है कि सोलंकियो को इनसे निरन्तर सघर्ष करना पड रहा था।

राव सुरत्राण :–सेढवदेव के बाद कौन शासक हुआ था इसका कुछ भी उल्लेख नही मिलता है। दुर्भाग्य से इनके शिलालेखो में जो वशावलिया दी हुई हैं वह भी राव सूरसेण से प्रारम्भ होती हैं। राव सूरसेण की अब तक प्राप्त प्रशस्तियो मे सबसे प्राचीनतम वि० स० १५५१ की है जो मेवाड के पुर ग्राम की है। सेढवदेव और सूरसेण के मध्य कम से कम दो राजा अवश्य हो गये होगे। नैणसी ने सुरत्राण के पहले दुजनशाल और हरराज के नाम अवश्य दिये हैं। वि० स० १५५१ की प्रशस्ति लब्धीसार ग्रन्थ की है जो दिगम्बर जैन मंदिर (वृधिचन्द जी) जयपुर के (ग्रन्थ सख्या १३६) सग्रहालय मे है। यह प्रशस्ति अबतक अप्रकाशित थी जिसे मैंने अनेकान्त मे प्रकाशित कराई है। इसमें महत्वपूर्ण सूचना यह मिलती है कि राव सुरत्राण को मेवाड के महाराणा ने पहले पुर ग्राम दिया था इसके पश्चात् बदनौर। प्रश्न यह है कि सुरत्राण मेवाड मे कब आया था। ऐसा प्रतीत होता है कि पूर्वी राजस्थान के अधिकाश भाग पर[8] उस समय मालवे के सुल्तान का अधिकार हो चुका था। हाडोती से लेकर नरेना तक का भाग इसके अधिकार मे था। टोडा से वि० स० १५३७ की आदि पुराण[9] की एक प्रशस्ति मिली है जिसमे वहा गयासुद्दीन का राज्य

8. वि० स० १५४१ मे लिखी गुरुगुणरत्नाकर काव्य मे हाडोती प्रदेश मालवदेश के सुल्तान के अन्तर्गत वर्णित किया है :–
हाडावतीमालवदेशनायक प्रजाप्रियऽह्मदमुख्यमंत्रिणा ॥८॥
वि० स० १५४६ की सुकुमाल चरित की प्रशस्ति से पता चलता है कि बारा पर गयासुद्दीन का राज्य था। नरेना, टोंक, नैनवा, मल्लारणा आदि से प्राप्त कई ग्रन्थ प्रशस्तियो मे गयासुद्दीन का राज्य होना वर्णित है।

9. सवत् १५३७ फाल्गुन सुदि ६ रविवारे उत्तरानक्षत्रे सुरत्राण. गयासुद्दीन राज्ये प्रवर्तमाने टोडागढ दुर्गे।"
आदिपुराण की प्रशस्ति (राजस्थान के जैन भण्डारो की सूची भाग २ पृ० २२८

स्पष्टतः वर्णित किया है। अतएव ऐसा प्रतीत होता है कि सूरसेण या सुरत्राण को इसके पूर्व ही मेवाड चला जाना पडा होगा। लब्धिसार[3] की वि० स० १५५१ की उक्त प्रशस्ति मे स्पष्टतः उल्लेखित है कि मेदपाट देश के पुर ग्राम मे ब्रह्म चालुक्य वशी राजा सूर्यसेन वहा उस समय शासक था। मेवाड की ख्यातो और नैणसी के वृत्तान्त के अनुसार इसे बदनोर मे जागीर दी गई थी। बदनोर मे सभवतः पुर के पश्चात् ही जागीर दी गई होगी। बून्दी का राव माण भी इसी समय मेवाड में शरण ले रहा था। उसे भीलवाडा ग्राम दिया[1] गया था। वि० स० १५५६ ई० की "पट् कर्मोपदेश माला" की एक प्रशस्ति में जो भीलवाडा ग्राम की है इसका उल्लेख है। सभवतः जब माण को भीलवाडा दिया गया हो उस समय पुर सुरत्राण से लेकर उसे बदनोर दे दिया हो। किन्तु ऐसा भी हो सकता है कि बदनोर के आस पास मेरो की बडी बस्ती थी। वे लोग निरन्तर विद्रोह किया करते थे। कुम्भा ने इनके प्रसिद्ध वीर मुनीर को मारा था। किन्तु सघर्ष चल रहा था। अतएव इनको दबाने के लिये उसे बदनोर मे नियुक्त किया गया हो ऐसा प्रतीत होता है।

---

10. सवत् १५५१ वर्षे आषाढ सुदि १४ मगलवासरे ज्येष्ठा नक्षत्रे श्री मेदपाटदेशे श्रीपुरनगरे श्रीब्रह्मचालुक्यवशे श्रीराजाधिराज सूर्यसेन प्रवर्तमाने (श्री वर्धीचन्द्र जी के दिगम्बर जैन मदिर के ग्रन्थ स० १३६)
11. पटकर्मोपदेश माला की प्रशस्ति
    स० १५५६ वर्षे चैत्र सुदि १३ शनिवासरे शतभिषा नक्षत्रे राजाधिराजश्रीमाण विजयराज्ये भीलोडा ग्रामे श्रीचन्द्रप्रभ चैत्यालये" (राजस्थान के जन भण्डरो की सूची भाग ३ पृ० ७८)
12. ज्वालावली वलयिता व्यतनोद्यवाली
    मन्नीर वीरमुदवीदहदेपनीर।
    यो वर्द्धमानगिरिमाशु विजित्य तस्मिन्
    मेदानमदवद्धविधोनधाक्षीत्॥ २५४॥
    मन्नीर को मारने का उल्लेख सगीतराज की प्रशस्ति और अमर काव्य में भी है। महाराणा कुम्भा पृ० ९७-९८

तारा के विवाह की कथा –कहा जाता है कि राव सुरत्राण की पुत्री तारादेवी बडी रूपवती थी। इसके रूप की प्रशंसा सुनकर महाराणा रायमल के कुंवर जयमल ने उसे देखना चाहा। सोलंकियों को यह बहुत बुरा लगा। जयमल ने उन पर आक्रमण किया और इसी में उनकी मृत्यु हो गई। राव ने सारा वृत्तान्त महाराणा को लिखकर भेजा महाराणा ने उसे क्षमा कर दिया। मध्यकाल के लिये यह घटना एक उल्लेखनीय है क्योकि उस समय वैर लेना बडा प्रसिद्ध था। तारा का विवाह महाराणा के ज्येष्ठ पुत्र पृथ्वीराज के साथ हुआ। इसमे टोडा के उद्धार की भी शर्त रखी गई। इसने अचानक मोहर्रम के दिन टोडा पर हमला[13] करके मुसल्मानो को वहा से निकाल भगाया। यह घटना वि० स० १५६० के आसपास होना चाहिये। टोडा मे सूरसेन की सबसे पहली अब तक ज्ञात प्रशस्तियो में, वि० स० १५८० की मिली है।

चाटसू के लिये संघर्ष :–सोलंकियो के कछावा पडौसी थे। चाटसू क्षेत्र के लिये दोनो ही इच्छुक थे। राव सूरसेन ने महाराणा सागा की सहायता से इस क्षेत्र को जीत लिया और वहा अपने पौत्र रामचद्र को नियुक्त किया। यह राव के ज्येष्ठ पुत्र पृथ्वीराज का बेटा था। आँवा के मदिर के वि० स० १५६३ अप्रकाशित लेख[14] और आम्बेर के एक

---

13. ओझा– उदयपुर राज्य का इति० भाग १ पृ० ३३३–३४ शारदा– महाराणा सागा पृ० २७–२८

14. ब्रह्मचालुक्यवंशोद्भव सोलंकीगोत्रविस्फुटम
यो वर्द्धते प्रजानदीभूषण प्रतापवान ।।१२।।
तस्य राजाधिराजर्द्धे स्त्रै [स्त्रियो] च विचक्षणे ।
वनते च तयोमध्ये पूर्वा शीलारूपया स्मृता ।।१३।।
द्वितीया च जिताख्यातानाम्नी सामागदे च ।
तत्पुत्रौ च वरौ जातौ कुलगुण विशारदौ ।।१४।।
प्रथम पृथ्वीराजो द्वितीयपूर्णमल्लवाक् ।
शोभन्ते एन राजन् पुत्र पौत्रादि सयुत ।।१५।।
आवा के मदिर का लेख वि० स० १५६३ (अप्रकाशित)
अनेकान्त वर्ष १६ पृ० २१२ शोध पत्रिका वर्ष १७ अक ४ मे प्रकाशित मेरा लेख 'कछवाहो का प्रारम्भिक इतिहास'

मूर्ति के वि० स० १५६३ के लेख के अनुसार सूरसेन के दो रानिया थीं जिनके नाम हैं सौभाग्यदेवी और सीतादेवी । इसके २ पुत्र थे जिनके नाम हैं पृथ्वीराज और पूरणमल । पूरणमल को आवां ग्राम जागीर मे दिया हुआ था । वि० स० १५६४ की वराग चरित की एक प्रशस्ति मे आवा नगर में इसका शासक के रूप में उल्लेख है ।[15]

रामचन्द्र[16] कीचाटमू क्षेत्र से कई प्रशस्तियां मिली हैं । करकण्डु चरित की वि० स० १५८१ की घटयवली की प्रशस्ति अब तक प्राप्त प्रशस्तियों में सबसे पहली है । इसकी सबसे उल्लेखनीय प्रशस्तियां वि० स० १५८३ आषाढ सुदि ३ बुधवार[17] और वि० स० १५८४ चैत्र सुदी १४ की[18] हैं जिनमे इसके नाम के साथ साथ महाराणा सांग का भी उल्लेख है । वि० स० १५८४ वाली प्रशस्ति, महाराणा सागा की अन्तिम प्रशस्तियों में से है ।

राव सूरसेन का ज्येष्ठ पुत्र पृथ्वीराज या तो अपने पिता के जीवनकाल मे ही मर गया था अथवा उसका शासन काल बहुत ही अल्प कालीन

---

15 वराग चरित की प्रशस्ति
"सवत् १५६४ वर्षे शाके १४५६ कार्तिक मासे शुक्लपक्षे दशमी दिवसे शनैश्चरवासरे धनेष्टानक्षत्रे गडयोगे आवा नाम महानगरे श्री सूर्यसेणि राज्यप्रवर्तमाने कुंवर श्री पूर्णमल प्रतापे · · "
(राजस्थान के जैन भण्डारो की सूची भाग ४ पृ० १६४)

16. "करकण्डु चरित" की प्रशस्ति
"सम्वत् १५८१ वर्षे चैत्र सुदि ६ गुरुवारे घटयाली नाम नगरे राव श्री रामचन्द्रराज्यप्रवर्तमाने··· · " (प्रशस्ति सग्रह पृ० ६६)

17. सम्वत् १५८३ वर्षे आषाढ सुदि ३ बुधवासरे पुष्प नक्षत्रे राणा श्री सग्राम राज्ये चम्पावती नगरे राव श्री रामचन्द्र प्रतापे······
चन्द्रप्रभ चरित की प्रशस्ति (उपरोक्त पृ० ६६)

18 सम्वत् १५८४ वर्षे चैत्र सुदि १४ शनिवासरे पूर्वा नक्षत्रे श्री चम्पावती कोटे राणा श्री श्री श्री सग्राम राज्ये राव श्री रामचन्द्र राज्ये · · बृद्धमान कथा की प्रशस्ति (राजस्थान के जैन भण्डारो की सूची भाग ३ पृ० ७७)

था। वि० सं० १५६७ तक[19] की प्रशस्तियां राव सूरसेन की मिली हैं। इनमें सुदर्शन चरित की प्रशस्ति उल्लेखित है। इसके पश्चात् वि० स० १६०१ की रामचन्द्र की टोडा से मिली है। इनमें जम्बूस्वामी चरित की एक प्रशस्ति उल्लेखित है।[20]

कछावो से चाटसू के लिये संघर्ष बराबर चल रहा था। कछावा-राजा पृथ्वीराज वि० स० १५८१ में आमेर में शासक था, इसके समय की लिखी ज्ञानार्णव की एक प्रशस्ति[21] देखने को मिली है। इसी अवसर पर वीरमदेव मेडतिया ने इस क्षेत्र पर अचानक आक्रमण करके इसे जीत लिया। वि० स० १५६४ की उसके शासन काल में लिखी पट्पाहुड[22] की एक ग्रन्थ प्रशस्ति भी उल्लेखित है जो चाटसू में लिखी गई थी। राव मालदेव ने उसे शीघ्र ही हटा दिया था और इस क्षेत्र पर अपना अधिकार कर लिया था। उसके शासनकाल में वि० स० १५६५ की साम्बोण (टोक के पास) ग्राम में लिखो वराग चरित[23] की एक प्रशस्ति

---

19. सुदर्शन चरित की प्रशस्ति
"सम्वत् १५६७ वर्षे माघमास कृष्णपक्षे द्वितीया तिथौ बुधवासरे पुष्य नक्षत्रे तोडागढ महादुर्गात् राजाधिराज राव श्री सूयसेन राव विजयि राज्ये .. ..." (प्रशस्ति सग्रह पृ० १८६)
कछावो से चाटसू के लिये संघर्ष बराबर चल रहा था। कछावा-
20. जम्बूस्वामी चरित की प्रशस्ति
"सवत् १६०१ वर्षे आषाढ छुदि १३ भौमवासरे टोडागढ वास्तव्य राजाधिराज रामचन्द्र विजय राज्ये ... ."
21. ज्ञानावर्ण की प्रशस्ति
"सवत् १५८१ वर्षे सरस्वती गच्छे– आम्बेर गणस्थानात् कूरमवशे महाराजाधिराज पृथ्वीराज विजय राज्ये म्डेलान्वये .. . .."
22. पट पाहुड ग्रन्थ की प्रशस्ति
'सवत् १५६४ वर्षे माह सुदि २ बुधवारे–चम्पावती नगरे राठौड वशे राय श्री वीरमद्य राज्ये ......" (प्रशस्ति सग्रह पृ० १७५)
23. वराग चरित की प्रशस्ति "सवत् १५६५ वर्षे माघमासे शुक्ल पक्षे राव श्री मालदेवराज्यप्रवर्तमाने रावत श्रीखेतसीप्रतापे साखोण पत्तने ... " (उक्त पृ० ५५)

उल्लेखित है। पाटन के शास्त्रभण्डार मे बीरमदेव की "पट्कर्मग्रथाव-चूरि" की प्रशस्ति वि० स० १५९२ की है जिसमे स्पष्टतः मेडता पर वीरदेव का राज्य उल्लेखित किया है। अतएव ऐसा प्रतीत होता है कि वि० स० १५९५ मे मालदेव ने मेडता आदि क्षेत्र बीरमदेव से ले लिये होगे। सोलकियो ने मालदेव से यह क्षेत्र कब मुक्त कराया इसका कुछ उल्लेख भी है किन्तु वि० स० १६०० तक मालदेव का अधिकार ज्ञात है। उसने अपनी ओर से राव खेतसी को नियुक्त कर रखा था। वि० स० १६०२ की ग्रन्थ प्रशस्तियो[24] मे यहा शाहआलम का नाम दिया है। यह या तो इस्लाम शाह का उपनाम है अथवा मेवात का शासक रहा हो। इसके समय की कुछ अन्य प्रशस्तिया अलवर[25] नगर की देखने को मिली है जिनमे वि० स० १६०० की लघु सग्रहिणी की है जो गुजरात मे छाएा के शास्त्र भण्डार मे सग्रहित है। इसी प्रकार मेघेश्वर चरित की एक प्रशस्ति वि० स० १६१० की भी राजस्थान के जैन भण्डारो की सूची मे उल्लेखित की गई है।

राव रामचन्द्र :—राव रामचन्द्र वि० स० १६०१ के आसपास गद्दी पर बैठा। इसने मेवाड के महाराणा उदयसिह की सहायता से टोडा और इसके आसपास के क्षेत्रको स्वाधीन किया हो। वि० सं० १६०४ मे टोडा के बहुचर्चित लेख[26] मे मवाड के महाराणा उदयसिह

---

24. पट पाहुड की प्रशस्ति
"सवत् १६०२ वर्षे वैशाख सुदि १० तिथौ रविवासरे उत्तरफाल्गुन नक्षत्रे राजाधिराज शाह आलम राज्ये चम्पावती मध्ये"
(उक्त पृ० १७४)

25 सवत् १६०० वर्षे भाद्रपद मासे शुक्लपक्षे रवौ पातिसाह श्री शाह-आलमराज्ये अलवर महादुर्गे ·······"
(प्रशस्ति सग्रह by अमृतलाल शाह पृ० ११०)

26. सवत् १६०४ वर्षे शाके १४६९ मिगसर वदि २ दिने–
बर्द्धनीयती। प्रो० पान्हउ तस्य पुत्र नराहुण·····राजाधिराज राज श्री सूर्यसेणि। तस्यपुत्र राजश्री पृथ्वीराज ॥ तस्य पुत्रराज श्री राव रामचन्द्र राज्ये वर्तमाने। तस्य कुंवर च० परसराम पातिशाहि शेर-शाह सूरी तस्यपुत्र पातिसाहि असलेम साहि ॥ कौ वारो वर्तमान ॥

दिल्ली के बादशाह सलेमशाह और टोडा के राजाओ का वशक्रम सूरसेन से दिया हुआ है। इस शिलालेख पर विद्वानो के कई लेख प्रकाशित हो गये हैं किन्तु खेद है कि इन्होने सूरसेन और उसके वश क्रम पर कुछ भी प्रकाश नही डाला है। वि० स० १६१० की भाद्रपद शुक्ला ६ की यशोधर[27] चरित की प्रशस्ति से प्रकट होता है कि यह इस्लाम शाह सूर के आधीन था। वि० स० १६१२ की "णाय कुमार चरिउ"[28] और "जसहर चरिउ"[29] की प्रशस्तियों मे दिल्ली के सुल्तान मोहम्मद आदिलशाह का नाम अवश्य नहीं है किन्तु यह स्वतन्त्र शासक रहा हो ऐसा अनुमान करना कठिन है। चाटसू आदि क्षेत्र भारमल कछावा के अधिकार मे चला गया था।[30]

सार्व भूमि की पसम पोडा ल,ख ११ को पसमु राज श्री संग्रामदेव। तस्यपुत्र उदयसिह देवराणो कुम्भलमेर राज्ये प्रवर्तमाने "
(मरुभारती वर्ष ५ अक १ पृ० २०)

27. यशोधर चरित की प्रशस्ति
"सवत् १६१० वर्षे भाद्रपद मासे शुक्लपक्षे पष्ठ्या तिथौ सोमवारे स्वाति नक्षत्रे तक्षकमहादुर्गे श्रीआदिनाथ चैत्यालयेपातिसाह श्रीसलेमसाहराज्य प्रवर्तमाने रावे श्री रामचन्द्र प्रतापे "
(प्रशस्ति सग्रह पृ० १६३)

28. णायकुमार चरिउ की प्रशस्ति
"स्वस्ति सम्वत् १६१२ वर्षे ज्येष्ठ सुदि ५ शनिवारे श्री आदिनाथ *चैत्यालये तक्षकमहादुर्गे महाराजाधिराजरावश्रीरामचन्द्र राज्ये*..."
(उक्त पृ० ११३)

29. जसहर चरिउ की प्रशस्ति
"सम्वत् १६१२ वर्षे आसोज मासे कृष्णपक्षे द्वादशी दिने गुरुवारे असलेखा नक्षत्रे तक्षकगढ महादुर्गे महाराजाधिराज राव श्रीरामचन्द्र राज्य प्रवर्तमाने......." (उक्त पृ० १६२)

30. उपासकाध्ययन की प्रशस्ति
"सम्वत् १६२३ वर्षे पोष सुदि २ शुक्रवासरे श्री पार्श्वनाथ चैत्यालये गढ चपावती मध्ये महाराजाधिराज श्री भारमल कछावा राज्ये "
(उक्त पृ० ९४)

राव कल्याण और सुर्जन :–राव रामचन्द्र के पुत्र परशुराम का उल्लेख वि० स० १६०४ के लेख मे है । किन्तु इसकी कोई प्रशस्ति अथवा लेख नही मिला है। राव कल्याण की अब तक दो प्रशस्तियाँ देखने को मिली हैं। ये है वि० स० १६१४ चैत्रसुदी ५ की यशोधर चरितकी और वि० स० १६१५ की ज्ञानार्णव की। इसी प्रकार राव सुर्जन सोलकी की वि० स० १६३१ को श्रीपाल चरित की प्रशस्ति[31] और वि० स० १६३६ की आषाढ सुदि १३ जीवधर चरित की प्रशस्ति[32] देखने को मिली है। ये दोनों प्रशस्तिया साखोण ग्राम की हैं। इस समय ये अकबर के आधीन हो चुके थे। इसके पश्चात् इन सोलकियो का कोई उल्लेख नही मिलता है। अकबर ने रणथमोर और टोडा का भाग[33] जगन्नाथ कछावा को दे दिया था । जगन्नाथ कछावा के वि० स० १६५४ और १६६१ के दो लेख मिले हैं । इसकी रणथमोर की एक प्रशस्ति वि० स० १६४४ की षटकर्मोपदेश माला की देखने को मिली है अतएव अनुमान है कि इसी तिथि के आस पास इसने टोडा से सोलकियो का निकाल दिया था। इसके पश्चात् यहा फिर सोलकियो का अधिकार नहीं हुआ ।

समसामयिक एक हस्तलिखित ग्रन्थ मे इस नगर का प्रसगवश वर्णन है, जिसका कुछ अंश इस प्रकार है :–[34]

> नानावृक्ष कुलैर्भाति सर्वत् सर्व सुखकर ।
> मनोगत महाभोगः दातादात् समन्वितः ॥ १५ ॥
> तोडाख्यो भूरमहा दुर्गोदुर्ग मुख्यः श्रिया परः ।
> तच्छाखा नगर योपि विश्वभूति विधायत् ॥ १५ ॥

---

31. श्रीपाल चरित की प्रशस्ति
   'सम्वत् १६३१ वर्षे कातिक वदि ६ शुक्रवासरे– नागरचाल मध्ये टोंक समीते साखिणा नगरे पातशाह श्री अकबर विजय राज्ये सोलकी महाराय श्री सुरजन........" (उक्त पृ० १८०)
32. जीवधर चरित की प्रशस्ति "सम्वत् १६३६ वर्षे आषाढ सुदि १३ सोमवारे साषोण ग्राम राव श्री सुरजन जी प्रवर्तमाने........" (उक्त पृ० १५)
33. मरुभारती वर्ष ५ अंक १ पृ० २०–२१
34. राजस्थान के जैन भण्डारो की सूची भाग ४ पृ० ६१०

स्वच्छ पानीय संपूर्णैः वापिकूपादिभिर्महत् ।
श्रीमद्वनहट्टनामहट्ट व्यापारभूतिम् ॥ १७ ॥
अर्हत्चैत्यालये रेजे जगदानन्द कारकैः ।
विचित्र मठ सदोहे वणिग्जन सुमन्दिरो ॥ १८ ॥

इस उपरोक्त विवरण से इन राजाओ का वंशक्रम अब इस प्रकार सिद्ध किया जा सकता है :-

सेढवदेव (१४६२ वि०)
⋮
राव सूरसेण (१५५१ से १५६७ वि०)

- पृथ्वीराज
  - रामचन्द्र (वि० १४८१ से ८५ तक चाटसू जागीर म) (१६०१ से १६१२)
    - परसराम
    - कल्याण (१६१४ और १५)
      - मुर्जन (१६३१ से १६३६)
- पूरणमल (१५६४ आवा जागीर मे
- तारादेवी (पृथ्वीराज शिशोदिया को व्याही आ कुम्भलगढ मे सती हुई)

[विश्वम्भरा वर्ष ४ अंक ३ मे प्रकाशित]

महारावल गोपीनाथ से सम्बन्धित कुछ ग्रन्थ-प्रशस्तियां

डूंगरपुर का महारावल गोपीनाथ या गईपा बडा प्रसिद्ध शासक था। यह महारावल पाता के पश्चात् डूंगरपुर राज्य का अधिकारी हुआ था। इसके शासनकाल की मुख्य घटनाए महाराणा कुम्भा और गुजरात के सुल्तान अहमदशाह के साथ युद्ध करना है। यह बडा महत्वकाक्षी था। महाराणा मोकल के अन्तिम दिनो मे मेवाड की फूट का लाभ उठाकर उसने कोटडा, जावर आदि भाग छीन लिया। जावर से वि० स० १४७८ का महाराणा मोकल का शिलालेख[1] मिला था। छप्पन के राठोडो के साथ इसके क्या सम्बन्ध थे, यह स्पष्ट नही हो सका है।

फारसी तवारीखो के अनुसार गुजरात का सुल्तान अहमदशाह रज्जब हि० स० ८३६ (फरवरी/मार्च १४३२ ई०) मे डूंगरपुर, मेवाड और नागौर पर आक्रमण करने को रवाना[2] हुआ था। तारीख इ-अल्लाई मे लिखा है कि सुल्तान[3] डूंगरपुर होता हुआ मेवाड मे देलवाडा और झीलवाडा की तरफ गया। उसके सेनापति मलिक मुनीर ने डूंगरपुर और मेवाड मे बडी लूट मचाई और एकलिंगजी के प्रसिद्ध देव भवन को खडित किया। तबकात-इ-अकबरी मे निजामुद्दीन को रावल

1. वीरविनोद भाग १ के शेष सग्रह मे प्रकाशित।
2. तारीख-इ-फरिश्ता का अनुवाद भाग ४, पृ० ३३
   तबकात इ-अकबरी „ भाग ३, पृ० २२०
3. मिराते सिकन्दरी का अनुवाद पृ० १२०-१२१
4. तबकात-इ अकबरी का अनुवाद भाग ३, पृ० २२०-२१

द्वारा भारी रकम देकर आक्रमण से मुक्ति पाना[4] लिखा है । आंतरी शान्तिनाथ के मन्दिर की वि० स० १५२५ की प्रशस्ति मे रावल गोपीनाथ के गुजरात[5] के सुल्तान की अपार सेना को नष्ट कर सम्पत्ति लूटने का उल्लेख है, जो अतिशयोक्ति प्रतीत होती है।

कुम्भा के साथ उसका युद्ध वि० स० १४९६ के पश्चात् हुआ प्रतीत होता है क्योकि राणकपुर के प्रसिद्ध लेख मे उक्त विजय का उल्लेख नही है । इसके अतिरिक्त छप्पन के भूभाग से वि० स० १४९४ का सूरखड का शिलालेख हाल ही मे विद्वान् लेखक श्री रत्नचन्द्रजी अग्रवाल ने[6] प्रकाशित कराया है । उसमे भी महाराणा कुभा का उल्लेख नही है, जिससे भी स्पष्ट है कि उस काल तक उसका वहा पर राज्य नही हो सका था । कुभलगढ प्रशस्ति मे रावल गोपीनाथ को जीतने के लिये कुभा ने अश्वसेना की सहायता लेना उल्लेखित है । उसके आने की सूचना मिलने ही रावल गोपीनाथ भाग खड़ा हुआ[7] । इस युद्ध के फलस्वरूप कोटडा और जावर स्थायी रूप से मेवाड मे मिला लिये गये ।

इस राजा की तिथि अब तक वि० स० १४८३ मानी जाती है अचलदास खीची की वचनिका मे भी इस उल्लेख है । किन्तु प्रस्तुत प्रशस्तियो में एक वि० स० १४८० की भी विद्यमान है, अतएव इसके राज्य काल का सम्वत् १४८० के आसपास रहना चाहिये । इससे सम्बन्धित कुछ प्रशस्तिया इस प्रकार है:—[4]

(१) पच प्रस्थान विषम पद व्याख्या

यह ताडपत्रीय ग्रन्थ है एव श्री अमृतलालशाह द्वारा सम्पादित

---

5. ओझा डूगरपुर राज्य का इतिहास पृ० ६५-६६
6. वरदा वर्ष ६, अक ४
7. तन्नागरीनयननीर तरगिणी नामगीकृत किमुसमुत्तरणं तुरगैः,
 श्रीकुभकरणनृपतिः प्रवितीर्णा क्षपैरालोडयद् गिरिपुर यदवी-
 मिरग्रः ।। २६६ ।।
 यदीय गज्जदगजतूर्यघोषसिहस्वनाकर्णननष्टशौर्या ।
 विहायदुर्गं सहसा पलाया चकार गोपाल श्रृगाल बालः ।।२६७।।
 (कुभलगढ़ प्रशस्ति)

सग्रह नामक ग्रन्थ मे यह पृ० २१५ पर प्रकाशित है :—
स्वस्ति सम्वत् १४८० वर्षे अद्येह श्रीड गरपुरनगरे राउल श्रीगइ-
लदेवराज्ये श्रीपार्श्वनाथचैत्यालये लिखित पचाकेन "

याश्रय वृत्ति (प्रथम खण्ड, सर्ग १ ११)
ह ग्रन्थ सिघवी पाडा पाटन के भण्डर मे सुरक्षित है और
श्रप्टिव केटलाग आफ मेनुस्क्रिप्ट इन दी जैन भण्डार एट पाटन"
के पृ० २१६ पर प्रकाशित है '—
'सम्वत् १४८५ वर्षे श्री डू गरगढ राज्ये राउल गइपाए विजय
श्रावण बदि १५ शुक्रदिने द्वयाश्रयवृत्ति लिखिता लिवावेन शुभ
।" (सूची सख्या ३५८)

द्वयाश्रयवृत्ति (स सर्ग १२-३०) अभयतिलक प्राकृत द्वयाश्रयवृत्ति
(सर्ग ८) त्रुटिपत्र यह ग्रन्थ भी उपर्युक्त भण्डार म है और उक्त
ग्रन्थ के पृ० २१६ पर प्रकाशित है —
"द्वितीय खण्ड ग्रन्थाग्र ८८५८ । सकल ग्रन्थ १७५७४ सम्वत
६ वर्षे श्रीडूगरपुरे लिखित लीवावेन"
"उत्तराध्ययन सूत्र अवचूरि"
जैसलमेर भण्डार की ताडपत्रीयसूची म पोथी स० ६६ में इसका
दिया है। इसकी प्रशस्ति इस प्रकार हैं —
"सम्वत १४८६ वर्षे फाल्गुन वदि १० रवौ श्री डूगरपुर नगरे राउल
लदेव राज्ये लिखिता लीम्बावेन ।

थया कोश प्रकरणम्
स्थान क भण्डार मे सुरक्षित है। प्रशस्ति सग्रह के पृष्ठ सख्या ८८
काशित है —
'श्री जिनेश्वर सूरिविरचित कथाकोश प्रकरण समाप्त मिति।
भवतु। श्री श्रमण सघस्य । सम्वत् १४८७ वर्षे आषाढ मासे
प्रक्षे चतुर्दश्या तिथौ रविदिने श्री डूगरपुर नगरे राउल श्री
लदेव विजय राज्ये कथाकोष प्रकरण लिखित लिम्बावेन मगलमस्तु।
क पाठक्यो"

(६) दशवैकालिक निर्युक्ति

सिंघवी पाडा पाटन मे सग्रहित है एव प्रशस्ति सग्रह के ग्रन्थ मे पृष्ठ ११- पर प्रकाशित है --

"सवत् १४८६ वर्षे ज्येष्ठ मासे कृष्ण पक्षे द्वितिया तिथौ गुरुदिने लिखित डूगरपुर नगरे पचाकेन"

(७) श्री उत्तराध्ययन निर्युक्ति

उत्तराध्ययन वृत्ति श्री शान्तिसूरि

सिंघवी पाडा पाटन के भण्डार में सग्रहित है और उपर्युक्त सख्या २ पर प्रकाशित सूची के पृ० स० २०२-२०३ पर प्रकाशित है—

"स्वति सम्वत् ४८६ वर्षे श्रावण मासे शुक्लपक्षे द्वितीयाया तिथौ रविदिने अद्येहश्री डूगरपुरनगरे राउलगइपालदेव राज्ये लिखित श्री पार्श्व जिनालय पचाकेन--"

इसके उत्तराधिकारी रावल सोमदास की तिथि वि० स० १५०६ के आसपास मानी जाती है किन्तु वि० स १५०४ की इसकी एक प्रशस्ति बडौदा के भण्डार से सग्रहित है । यह प्रशस्ति "सिद्धहेम बृहद्वृत्ति" ग्रन्थ की है, जो इस प्रकार है--

"......सम्वत् १५०४ वर्षे मागसिर सुदि ११ सोमे । श्री गिरिपुरे राउल श्री सोमदास विजयराज्ये । मह० आवा सुत मह० धनाजे निज भ्रात् स्वपठनार्थमिद प्राकृत व्याकरणम्-लेखि ।।छ ।। '

(प्रशस्ति सग्रह पृ० ३६)

इन प्रशस्तियो से रावल गोपीनाथ का शासनकाल वि० स० १४८० से १५०३ के आसपास तक स्थिर होता है। इसके शासनकाल मे डूगरपुर में बडी उन्नति हुई थी । विद्या का बडा विकास हुआ और कई ग्रन्थ लिखे गये थे । उनके समय के दो मुख्य लेखको के नाम लीम्बा और पचा उल्लेखनीय है ।

[राजस्थान भारती वर्ष १०
अंक ४ मे प्रकाशित]

—

पद्मिनी की ऐतिहासिकता

६

पद्मिनी मेवाड के शासक रतनसिंह की महारानी थी। यह अत्यत रूपवती थी। उसे प्राप्त करने के लिये अल्लाउद्दीन खिलजी ने स्वय सेना लेकर चित्तौड़ पर आक्रमण किया था किन्तु वह सफल नही हो सका। इस पद्मिनी की ऐतिहासिकता को लेकर विद्वानो में मतभेद है। डा० ए. एल. श्रीवास्तव, प्रो० हबीब, प्रो० एस रे. एस सी. दत्त, डा० दशरथ शर्मा प्रभृति विद्वान् उसके अस्तित्व मे विश्वास[1] करते हैं। इसके विपरीत के. आर. कानूनगो, के. एस. लाल आदि की मान्यता है कि पद्मिनी केवल जायसी की ही कल्पना है। कानूनगो ने अपने निबन्ध "ए क्रिटिकल स्टडी ऑफ पद्मिनी लिजेंड" मे इसका विस्तार से उल्लेख[2] किया है। इनके द्वारा उठाई गई आपत्तियो का समाधान इस प्रकार है।

क्या रतनसिंह चित्तौड़ का शासक नहीं था ?

श्री कानूनगो ने लिखा है कि विभिन्न वर्णनो क अनुसार अल्लाउ- द्दीन के चित्तौड आक्रमण के समय निम्नाकित रतनसिंह चित्तौड मे थे—

[१] रावल समरसिंह का पुत्र, जिसका उल्लेख कुम्भलगढ के लेख मे है।

[२] चित्रसेन का पुत्र रतनसेन, जिसका उल्लेख जायसी ने किया हैं।

[३] ढु ढाड जाति का रतना, जिसके नाम पर आगे चलकर जयपुर प्रदेश का नाम ढु ढाड कहलाया है।

---

1. डा० दशरथ शर्मा—राजस्थान थ्रू दी ऐजेज पृ० ६३२
2. कानूनगो कृत "स्टडीज इन राजपूत हिस्ट्री" मे प्रकाशित लेख

[४] रतनसिंह, जो हमीर चौहान का पुत्र था, जिसे लखमसी ने म शरण दी थी।

[१] श्री कानूनगो ने यह दलील दी है कि मेवाड के भा: चारो को मिला करके एक कर दिया है। किन्तु ऐसा प्रतीत कि यह आलोचना ठीक नही है। रतनसिंह नाम के अलग २ व राजा नही थे। रावल समरसिंह के बाद रतनसिंह उसका उत्तर' हुआ था। जायसी का पद्मावत न तो ऐतिहासिक ग्रन्थ है समसामयिक कृति। उसने सुनी-सुनाई कथाओ के आधार पर के पिता का नाम गलती से चित्रसेन लिख दिया है। ढूढाड किसी रतना का उल्लेख उस समय नही मिलता है। मेमा के पु का जा टाटेरड जाति का था, अवश्य उल्लेख मिलता है। का भ्रम से टाटेरड को ढूढाड पढा है। यह घटनाकाल के कई वर्ष मर चुका था। यह तलारक्ष मात्र था और इसका राज्य पर कोई सम्बन्ध नही था। चौथे रतनसिंह का वर्णन वश भास्क आधुनिक ग्रन्थ मे मिलता है। हमीर चौहान के वशज गुजरात गये थे, जहा से उनके कई लेख मिले हैं। उनमें हमीर के पुत्र क रतनसिंह दिया हुआ नही है। हमीर महाकाव्य आदि ग्रन्थो हमीर के किसी पुत्र के चित्तोड आश्रय का उल्लेख नही मिल पूर्वमध्यकाल की घटनाए जो वश-भास्कर मे वर्णित की गई है विश्वसनीय नही है। एक विचित्र बात यह है कि कानूनगो एक तो यह तर्क देते हैं कि पद्मिनी का उल्लेख समसामयिक या २० के पूर्व की किसी कृति मे नहीं है, अतएव अप्रमाणिक है जबवि काल्पनिक तर्कों के लिये वश भास्कर जैसे आधुनिकतम ग्र थो का भी लेते है।

[२] श्री कानूनगो रतनसिंह को चित्तोड का शासक नही : हैं। वे लिखत है कि मवाड क चित्तौड के अतिरिक्त अवध चित्रकूट और है। रतनसिंह वही का शासक था। इसके लिये एक विचित्र तर्क प्रस्तुत किया है। उनका कहना है कि प्रो० म: ने एक हस्तलिखित "रतनसन कुलावली" नामक ग्रन्थ ढुढा है,

लिखा है कि चित्तौड के राजा रतनसेन ने मसलमानो से कई युद्ध किये और इसका पुत्र नागसेन प्रयाग का शासक हुआ। नागसेन के वशज नैपाल के शासक हैं। अतएव इनकी धारणा वह है कि यह मेवाड का चित्तौड न होकर इलाहाबाद के आसपास कही स्थित था। जायसी ने भी इसी नगर का वर्णन किया है। कानूनगो का यह कथन केवल काल्पनिक तर्कों पर ही आधारित है। बड दुख के साथ कहना पडता है कि कानूनगो जैस एक उच्चकोटि के विद्वान् बिना पद्मावत को पढे ही ऐसी टिप्पणी लिख देते हैं। यह सर्व विदित है कि नैपाल का मौजूदा राजवश मेवाड के गुहिलोतो से ही सम्बन्धित है। जायसी ने न केवल पद्मावत मे चित्तौड का वर्णन किया है बल्कि मेवाड के माडलगढ आदि का वर्णन किया है। चित्तौड के शासक को हिन्दुओ का सबसे बडा शासक[1] बतलाया है। अतएव कानूनगो के तर्क मे कोई बल प्रतीत नही होता है।

रत्नसिंह का दरीब से वि० स० १३५६ माघ सुदी ५ बुधवार का लेख[2] मिल चुका है जो अल्लाउद्दीन के चित्तौड आक्रमण के लिये प्रयाण करने की तिथि से ४ दिन पूर्व का ही है। अतएव उस समय यही शासक था।

क्या पद्मिनी सिंहलद्वीप की थी?

पद्मिनी और रत्नसिंह के विवाह को लेकर इस कथानक की अत्यधिक आलोचना की जाती है। 'अमरकाव्य' वशावली के अनुसार रत्नसिंह समरसिंह का जाइन्दा पुत्र न होकर सीसोदा शाखा का था जिसे उसने गोद लिया था। मह रुखणसी के साथ यह कई वर्षों तक मेवाड के बाहर मालवा मे भी रहा था।

पद्मिनी को सिंहलद्वीप की राजकुमारी मानने से इस कथानक में

1. जायसी कृत पद्मावत मे चित्तौड युद्ध का प्रसग द्रष्टव्य है। इसमे आक्रमण का मार्ग माडलगढ़ होकर वर्णित किया है।
2. ओझा. उदयपुर राज्य का इतिहास, भाग १, पृ० १६१-६२

बड़ी भ्रांति पैदा हो गई है। जायसी ने तो यह भी निर्देश दिया है कि उक्त सारा ग्रंथ धार्मिक प्रतीकों पर आधारित है, अतएव कई लोग इसे केवल कल्पना ही मानते हैं। 'पद्मावत' निस्सदेह काव्य ग्रंथ है। उसमें इतिहास के साथ २ कल्पना का होना स्वाभाविक है। वस्तुत: भारतीय कथा ग्रंथों में नायक का सिलोन जाकर विवाह कर लाना एक प्रिय विषय रहा है। अपभ्रंश के "करकण्डु चरिउ" में नायक के सिलोन जाकर विवाह करने और मार्ग में लौटते समय समुद्र में तूफान आने आदि का वर्णन है। 'जिणदत्त चरित', भविसयत कहा' आदि में भी इसी प्रकार के प्रसंग है। 'श्री पाल चरित' में समुद्रपार के देशों से कई राजकुमारियों का विवाहित करके लाने का उल्लेख[1] मिलता है। सौभाग्य से महाराणा कुम्भा के शासनकाल में ही लिखी 'रयण सेहरी कहा' में भी इसी प्रकार का प्रसंग[2] है। यह जायसी के कई वर्ष पूर्व की कृति है। उसकी नायिका भी सिंहलद्वीप की राजकुमारी है। इसे प्राप्त करने के तरीके भी पद्मावत और उसमें मिलते हैं। 'रायणसेहरी' में स्वयं मंत्री जोगिनी बनकर जाता है, जबकि पद्मावत में स्वयं राजा। दोनों के मिलन का स्थान मंदिर वर्णित है। कथा बहुत मिलती[3] है। केवल अन्तिम भाग में अन्तर है। अतएव पता चलता है कि इस प्रकार की कथायें भारतीय कथा-साहित्य में बहुत ही प्रचलित थी। इस दृष्टि से पद्मिनी को सिलोन की राजकुमारी मानना गलत है।

कई विद्वान् सिलोन से संगति बिठाने के लिये सिंगोली ग्राम से इसका ध्वनि साम्य बिठाते हैं। कुछ अर्वाचीन[4] वंशावलियों में "समल-द्वीप पाटन" लिखा हुआ है। इन कथाओं में भी इसे प्राय: चौहान वंश

1. मेरा लेख "पद्मणी री ऐतिहासिकता" मरुवाणी, मार्च १९६७, पृ० २१ से २४
2. महाराणा कुम्भा, पृ० २१३ और रयण सेहरी कहा, गाथा १४९ एवं १५०।
3. मरुवाणी, मार्च १९६७, पृ० २१ से २४
4. भारतीय साहित्य, वर्ष २ अंक २ में श्री रतनचन्द्र अग्रवाल का लेख।

की राजकन्या मानी है जो मालवा या पश्चिमी राजस्थान के किसी भू-भाग की रही होगी।

निस्सदेह राजा रत्नसिंह के सिलोन जाने और वहा से पद्मिनी को विवाह लाने की कथा पूर्ण रूप से कल्पना है। अबुल फज्ल ने इसका वर्णन नही किया है। स्मरण रहे कि इस अ श को इस सम्पूर्ण कथानक मे से निकाल देने से पद्मिनी की ऐतिहासिकता पर कोई अन्तर नहीं आता है। रत्नसिंह का शासनकाल अल्पकालीन होने के कारण यह वर्णन सर्वथा गलत है[2]।

क्या पद्मिनी कथानक केवल जायसी की कल्पना है ?

श्री कानूनगो की मान्यता है कि मेवाड के इतिहास मे पद्मिनी की कथा जायसी से ली है। उसके पूर्व इसका कोई रूप ही नही मिलता। यह कथन पूर्ण रूप से गलत है। राजस्थान के जैन भडारो मे इस सबन्ध मे पर्याप्त सामग्री उपलब्ध है। 'गोरा बादल चौपाई'[1] सम्बन्धी कई ग्रन्थ लिखे हुये हैं। हेमरतन की चौपाई इनमे सबसे प्राचीन है। इस चौपाई

---

1. श्री उदयसिंह भटनागर द्वारा सम्पादित "गोरा बादल पदमिणी चउपई" की भूमिका मे पृ० ३ से ६ तक दिये गये वर्णन मे पद्मिनी कथानक को ५ प्रकार के वर्गों म रक्खा है :—
   (1) अज्ञात वर्ग, इसमे जैन कवि, हेतमदान आदि है।
   (2) जायसी वर्ग
   (3) हेमरतन वर्ग
   (4) जटमल नाहर वर्ग
   (5) लब्धोदय वर्ग

   श्री नाहटजी द्वारा सम्पादित "पदमिणी चरित चोपाई" भी दृष्टव्य है।

2. हेतमदान कविमल्ल भणि, अमर विति ते बखत गिणि।
   दठिउ न को रवि चक्र तलि, अलावद्दीन सुलिताण विण ॥१५४॥
   "गोरा बादल पदमिणी चउपई"

को जायसी के पद्मावत के कुछ समय बाद ही पूर्ण किया गया था। इसका आधार जायसी से भिन्न है। इसमे हेतमदान और कविमल्ल की गोरा बादल सम्बन्धी कृतियो का वर्णन है जो निश्चित रूप से जायसी के आसपास ही या इसमे पूर्व की रही है। लगभग इसी समय हेमरतन के आसपास ही पद्मिनी कथानक सम्बन्धी वृतान्त दो कृतियो मे मिलते हैं। 'आइने अकबरी', और तारीख-ए-फरिश्ता'। इन दोनो के कथानक का आधार भी भिन्न है। अतएव पता चलता है कि जायसी व आसपास ही कथानक के कई रूप मिलते थे। इस सम्बन्ध मे एक और *ठोस प्रमाण उपलब्ध है। पद्मावत के पूर्व ही "छित्ताई चरित" लिखा* जा चुका था। यह ग्रन्थ वि० स० १५८३ तवर शासक सलहदी के राज्यकाल मे पूरा हुआ था। इसमे प्रसगवश अल्लाउद्दीन और राघवचेतन की वार्ता दी गई है। अल्लाउद्दीन राघवचेतन से कहता है कि "मैने चित्तौड मे पद्मिनी के बारे मे सुना। उसे प्राप्त करने का प्रयास किया। रतनसेन को बन्दी बना लिया किन्तु गोरा बादल उसे छुडा ले गये।" इस प्रकार यह प्रसग बहुत ही महत्त्वपूर्ण है। डा० दशरथ शर्मा की मान्यता है कि यह प्रमाण इतना ठोस है कि इससे श्री कानूनगो के सारे तर्क की पद्मिनी केवल जायसी की ही कल्पना है गलत[1] साबित हो जाते हैं। जायसी पर स्वय "बैन" नामक किसी कवि का प्रभाव स्पष्ट है।[2] अतएव इस कथा के जायसी के पूर्व ही प्रचलित रहने की बात सिद्ध होती है।

'खजाइन-उल-फतुह' का वर्णन

अल्लाउद्दीन के चित्तौड आक्रमण के समय अमीर खुसरो सुल्तान के साथ निस्सदेह मौजूद था। किन्तु उसकी कृति अल्लाउद्दीन के राज्यकाल की अफिसियल हिस्ट्री नही है। यह कार्य कबीरुद्दीन को दिया

---

1. जनरल ऑफ ओरियन्टल रिसर्च सोसाइटी, vol. १४, अंक १, पृ० ८१ मे डॉ० दशरथ शर्मा का लेख पद्मिनी चरित चौपाई की भूमिका, पृ० १६
2. पद्मावत मे "कथा आरम्भ बैन कवि कहा" उल्लिखित है।

गया। जिसने 'फतहनामा" में अल्लाउद्दीन के शासन का अत्यन्त विस्तृत इतिहास[3] लिखा। इस ग्रन्थ का बरनी आदि कई लेखकों ने उल्लेख किया हैं। इसमे मुगलो के प्रति उत्तम घृणा पूर्ण वर्णन थे। अतएव प्रतीत होता है कि मुगल शासनकाल मे इसे विनष्ट कर दिया। 'खजाइन-उल-फतुह' मे उत्तरी भारत जिनमे गुजरात, रणथम्भोर, चित्तौड, जालोर, सिवाना, मालवा आदि की विजय का सक्षेप मे वर्णन लिखा है। इसके विपरीत दक्षिण भारत की विजयो का अत्यन्त विस्तार से वर्णन लिखा है। उसके अनुवादकार श्री मोहम्मद हबीब की मान्यता है कि 'फतहनामा' म कबीरुद्दीन ने उत्तरी भारत की विजयो का ही विस्तार से वर्णन लिखा है इसलिए 'खजाइन-उल-फतुह में' एव बरनी के ग्रथ में इनका अत्यन्त सक्षेप मे वर्णन लिखा गया है।[4]

अमीर खुसरो स्वय पद्य लेखक था। गद्य लेखक के रूप में 'खजाइन-उल-फतुह' का वर्णन बाण की कादम्बरी के सम न अत्यन्त अलकार पूर्ण भाषा मे है। इसने चित्तौड आक्रमण मे पद्मिनी का उल्लेख नही किया है तो गुजरात आक्रमण के वर्णन मे देवलदेवी का वर्णन भी नही किया है। रणथम्भोर के आक्रमण का वर्णन भी पूरा नही है। इसके अतिरिक्त कई मुगल आक्रमण भी छोड दिये हैं जो अत्यन्त महत्वपूर्ण थे। अनुवादकर श्री मोहम्मद हबीब की मान्यता है कि खजाइन उल-फतुह में जो प्रसग अल्लाद्दीन के चरित्र के विरुद्ध थे वे इसमे स्वेच्छा से छोड दिये हैं। उदाहरणार्थ अल्लाउद्दीन द्वारा अपने चाचा के वध का वर्णन उसमें इसी प्रकार लिखा गया है। अतएव 'खजाइन-उल-फतुह' का वर्णन अत्यन्त सक्षिप्त, एक पक्षीय एव अलकारपूर्ण भाषा में लिखा गया है।

उसमे सुल्तान के आक्रमण के प्रसग में लिखा है "११ मुहर्रम को सुल्तान दुर्ग पर पहुँचा। यह भृत्य (अमीर खुसरो) जो सुलेमान का पक्षी है। उसके साथ था। सुल्तान बार-बार हुद हुद' चिल्ला रहा था किन्तु मैं वापस नही लौटा, क्योकि मुझे डर था कि सुल्तान कही पूछ न

3. मोहम्मद हबीब कृत "खजाइन-उल-फतुह" की भूमिका, पृ० १२
4. उपरोक्त पृ० १३-१४

बैठे कि 'हुद-हुद' दिखाई क्यों नहीं पड़ता है ? क्या वह अनुपस्थित है ? और यदि वह ठीक कैफियत मागे तो मैं क्या बहाना करूगा ।"

दुर्ग पर आक्रमण का उल्लेख करते हुए इसके पूर्व यह पंक्ति दी गई है "इस दुर्ग पर आज के युग के सुलेमान (अल्लाउद्दीन) की सेना को बडी कठिनाई का सामना करना पड रहा है जो शेबा के आक्रमण की तरह है। उसमे स्पष्टत: कुरान शरीफ के २३ वें अध्याय मे उल्लेखित सुलेमान के शेबा की रानी 'बलक्विश' के लिये आक्रमण का सकेत है। इसमें अल्लाउद्दीन को सुलेमान, बलक्विश को पद्मिनी, शेबा को चित्तौड और 'हुद–हुद' को अमीर खुसरो से तुलना की गई है। अधिकाश विद्वान् इसे ठीक मानते हैं किन्तु श्री कानूनगो, वहीद मिर्जा उल्लेख कर उसे ठीक नही मानते हैं किन्तु सारे प्रसग को देखने मे स्पष्ट है कि कानूनगो के आक्षेप गलत हैं, जैसा कि ऊपर उल्लेखित है। अमीर खुसरो अलकारपूर्ण भाषा लिखने में सिद्धहस्त था, अतएव उसने स्वाभाविक वर्णन का भी इसी प्रकार रूपकमय भाषा मे वर्णित किया है जो उसकी शैली की विशेषता है। इस वर्णन को प्रस्तुत करने का अन्य कोई अर्थ समझ मे नही आता है।

क्या अबुल फज्ल पद्मावत का ऋणी है ?

अबुल फज्ल ने 'आइन–इ–अकबरी' मे अजमेर सूबे के वर्णन में चित्तौड का प्रसगवश सक्षिप्त इतिहास लिखा है। श्री कानूनगो की मान्यता है कि पद्मावत से अबुल फज्ल ने यह वर्णन लिया है किन्तु यह आधारहीन बात है। स्वय अबुल फज्ल ने यह लिखा है :–[1] "Ancient Chronicles record that Sultan Alauddin khilji king of Delhi had heard that Rawal Ratan Singh prince of Mewar possessed a most beautiful wife" इसमें "Ancient *Chronicle* " शब्द बडे उल्लेखनीय है। इससे साबित हो जाता है कि अबुल फज्ल के समय कई प्राचीन ग्रन्थो में इसका उल्लेख था। इसको

---

1. मोहम्मद हबीब कृत 'ऊजाइन–उल–फतुह' की भूमिका, पृष्ठ १४
2. आइन–अकबरी, vol. 11, पृ० २७४

पद्मिनी की ऐतिहासिकता सिद्ध करने का ठोस प्रमाण मान सकते हैं क्योकि अबुल फज्ल ने कई ग्रथो को देखकर बडी खोज से अपना ग्रथ लिखा है। 'एनसियट'' का अर्थ कम मे कम १०० वर्ष से अधिक की कृतियो को लिया जा सकता है।

राघवचेतन की ऐतिहासिकता

पद्मिनी कथानक का एक प्रमुख पात्र राघवचेतन है। वह पद्मिनी के सौदर्य पर मुग्ध हो जाता है। इसे प्राप्त करने के लिये बादशाह को प्रोत्साहित करता है। वह मत्रतत्र आदि कई प्रकार की साधनायें जानता था। उसका दिल्ली दरबार में बडा सम्मान था। जिनप्रभसूरि प्रबन्ध मे राघवचेतन के साथ उनका वाद विवाद होना वर्णित है। जिनप्रभसूरि भी कई बादशाहो से सम्मानित थे। मोहम्मद तुगलक के शासनकाल मे[1] इन्होने कई ग्रन्थ पूर्ण किये थे। कागडा के समारचन्द्र की प्रशस्ति म राघवचेतन का वर्णन आता है। शार्ङ्गधर पद्धति में *''श्री राघव चेतन्य श्री चरणाना'' वर्णित है।* आमेर शास्त्र भडार मे सग्रहित ''बुद्धिविलास'' म भी राघवचेतन का वर्णन आता है। छिताई चरित' म भी इसका वर्णन है। इस प्रकार राघवचेतन की ऐतिहासिकता में सदेह नही किया जा सकता है। यह प्रारम्भ म चित्तौड मे रहा था। वहा से दिल्ली या बनारस चला गया था। तुगलक सुल्तानो के समय तक यह प्रभावशाली व्यक्ति था।

कुम्भलगढ प्रशस्ति का वर्णन

इस कथानक की सबसे बडी आलोचना इस बात को लेकर की गई है कि इसका उल्लेख किसी समसामयिक शिलालेख म नही है। इस

---

1 खरतरगच्छ पट्टावलि मे वर्णित जिनप्रभसूरि प्रबन्ध का उल्लेख —
''इत्थ पत्थावे वाराणसीओ समागओ राघवचेयणो बमणो चउदस विज्जा पारगो मत जत जाणओ। सो आगतूण मिलिओ भूव। साहिणा बहुमाणो कओ। सो निच्चमेव आगच्छइ राय समीवे। एगया पत्थावे सहा उवविट्ठा। तओ राघवचेतणेव चितिय दुट्ठ सुहाव दोसवत काऊण निवरयामि इत्थ ठाणाओ ॥

सम्बन्ध मे मूलभूत बात यह है कि शिलालेखो मे राणियो के नाम प्रायः बहुत कम मिलते हैं। मीरा, हाडी करमेती, पन्ना धाय आदि के नाम भी नहीं मिलते हैं। इनकी भी ऐतिहासिकता मे इसी प्रकार संदेह करना त्रुटिपूर्ण होगा। लोगो मे प्रचलित परम्पराओ पर विचार करना भी आवश्यक है। कुम्भलगढ़ प्रशस्ति मे प्रथम बार मेवाड का विस्तृत इतिहास लिखा गया था किन्तु उसमे भी पद्मिनी का उल्लेख नही किया है। उस सम्बन्ध में स्पष्ट है कि यह प्रशस्ति कुम्भा के उन्नत शासन-काल मे बनाई गई थी। अतएव इसमे यह वर्णन अत्यन्त संक्षिप्त कर दिया है। किन्तु श्लोक सं० १७७ मे लक्ष्मणसिंह का वर्णन करते हुए इस सम्बन्ध मे कुछ संकेत दिया है। इसमे लिखा है कि रत्नसिंह के चले जाने के बाद कुल की मर्यादा की रक्षा करते हुये जिन्हें कायर पुरुष छोडना चाहते थे, वह काम आया। "कुल स्थिति कापुरुषैविमुक्तां न जातुधीरा पुरुषास्त्यजति" का अर्थ स्पष्ट है इसमे गोरा-बादल और पद्मिनी सम्बन्धी कथा का संकेत मिलता है।

पद्मिनी के महल

चित्तौड मे पद्मिनी के महलो को लेकर भी बडी आलोचना की जाती है, कहा जाता है कि ये महल आधुनिक हैं किन्तु मध्यकालीन ग्रन्थो मे पद्मिनी के महलो का वर्णन मिलता है। 'अमरकाव्य' मे सागा के प्रसग में वर्णित है "संस्थाप्य पद्मिनी गेहे कारायां चित्रकूटके" अर्थात् पद्मिनी के महलों मे कुछ समय के लिये मालवे के सुल्तान को बन्दी रक्खा। कुछ प्राचीन गीतो में भी वर्णन मिलता है। बीकानेर नरेश रायसिंह का विवाह जब चित्तौड मे महाराणा उदयसिंह की पुत्री से हुआ तब पद्मिनी के महलो मे जाने और प्रत्येक सीढी पर जाते हुये दान देने का वर्णन मिलता है। चित्तौड की गजल मे भी पद्मिनी के महलो का उल्लेख है। इसी प्रकार और भी वर्णन मिलते है। अतएव चित्तौड में पद्मिनी के महल अवश्य विद्यमान थे। इनका आधुनिकीकरण तो बाद मे हुआ है।

अन्य प्रमाण

राजा को बन्दी बनाने की घटना का उल्लेख वि० सं० १३६३ में

लिखी नाभिनन्दन जिनोद्धार प्रबन्ध मे भी है।³ नागपुर सग्रहालय मे सग्रहित गुहिलवशियो के एक शिलालेख मे विजयसिह नामक शासक के लिये उल्लिखित है कि उसने चित्तौड की लडाई मे सुल्तान को हराया (जो चित्तौडउ जुझिअउ जिए दिल्ली दलु जित्तु) । यह शिलालेख समसामयिक होने से महत्त्वपूर्ण है। 'खजाइन उल–फ्तुह' के वर्णन से भी सुल्तान की एक बार हार होना माना जा सकता है। इस सारे वर्णन पर ऐतिहासिकों का ध्यान कम गया है। सुल्तान के ११ मुहर्रम को दुर्ग पर जाने का वर्णन आता है, इसके बाद रतनसिंह को बन्दी बनाने का वर्णन है। अन्त मे फिर १० मुहर्रम को चित्तौड से जाने का वर्णन है। इन तिथियो मे व्यवधान है जो विचारणीय है। अबुल फज्ल ने भी दो आक्रमण माने हैं। इस सम्बन्ध मे राजपूत सामग्री को देखकर और शोध की आवश्यकता है। सबसे बडी कठिनाई हमारे दृष्टिकोण की है। फारसी तवारीखो में ही इतिहास सीमित नही है बल्कि राजस्थान के इतिहास की सामग्री यहा के डिंगल–साहित्य मे, यहा की परम्पराओ में, यहा के विपुल जैन भडारो में प्रचुर मात्रा मे मिलती हैं। अतएव इनको अगर उपेक्षा की दृष्टि से देखा गया तो बडा राष्ट्रीय अहित होगा।

[शोध पत्रिका वर्ष १६ अंक ३, में प्रकाशित।]

---

3. श्रीचित्रकूट दुर्गेश बद्धवा लात्वा च तद्धनम्।
   मण्ठ वद्ध कपिमिवा भ्रामयत्त च पुरे पुरे ।।३।।४।।
   —नाभिनन्दन जिनोद्धार प्रबन्ध

—✽—

मालदेव और वीरमदेव मेड़तिया का संघर्ष

७

मेडतिया राठौड बडे प्रसिद्ध हुए हैं। वीरमदेव दूदावत के समय इनका मालदेव के साथ भीषण संघर्ष हुआ था। इस संघर्ष का प्रारम्भ दौलतखा के भागे हुए हाथी दरियाजोश को मेडतियो द्वारा पकड लेना एव गागा और मालदेव के कई बार कहने पर भी उसे नहीं भेजना आदि घटनाओ से माना जा सकता है। वीरम ने इस झगडे को शात करने के लिए दो घोड़े राव गागा के लिए और उक्त दरियाजोश हाथी मालदेव के लिए भेज भी दिया किन्तु हाथी मार्ग मे ही मर गया अतएव वीरमदेव और मालदेव के मध्य मनोमालिन्य बना रहा।[1]

वीरमदेव का अजमेर लेना

राव गागा के बाद मालदेव मारवाड का स्वामी हुआ। नागौर के शासक दौलतखा ने वीरम पर आक्रमण किया तब नागौर को खाली देखकर मालदेव ने उसके राज्य पर आक्रमण कर नागौर हस्तगत कर लिया। जयमलवश प्रकाश मे दौलतखा के आक्रमण का सविस्तार वर्णन किया गया है। दौलत खा अजमेर की तरफ भाग खडा हुआ। यह घटना वि० स० १५९०–९२ के मध्य हुई।[2]

1 रेऊ—मारवाड का इतिहास भाग १, पृ० ११२–११३
ओझा—जोधपुर राज्य का—भाग १—पृ०२८०
नैणसी की ख्यात, जिल्द २, पृ० १५२–५४
जोधपुर राज्य की ख्यात म दौलतखा को ही लौटाना वर्णित है।

2. रेऊ—मारवाड का इतिहास, भाग १, पृ० ११७
आसोपा –मारवाड का मूल इतिहास, पृ० २४६
जयमल वश प्रकाश, पृ० ९०
ओझा जोधपुर राज्य का इतिहास, भाग १, पृ० २८६

अजमेर कुछ समय पूर्व से कर्मचन्द पवार के अधिकार मे था। महाराणा सांगा का यहा अधिकार था और उक्त कर्मचन्द उसका सामन्त था। सांगा की मृत्यु के बाद भी पवारो का राज्य वहाँ बना रहा था। विक्रमी सवत् १५८६ मे यह नगर कर्मचन्द के उत्तराधिकारी जगमल के अधिकार मे था। आमेर शास्त्र भडार मे भविष्यदत्त चरित्र की एक प्रति सग्रहित है[3] इसकी प्रशस्ति मे स्पष्टत: उस तिथि तक वहाँ परमारो का अधिकार होना वर्णित है। वि० स० १५६० मे गुजरात के बादशाह बहादुर शाह ने इसे अधिकृत कर लिया था एव उसने अपनी ओर से शमशेरुमुल्क को नियुक्त किया था।[4] नैणसी ने वहाँ पवारो का राज्य होना लिखा है।[5] श्री शारदा ने वि० स० १५६०–६२ तक अजमेर पर गुजरात के बादशाह का अधिकार होना लिखा है एव बीरम का वि० स० १५६२ के बाद ही अजमेर लेना वर्णित किया है। श्री रेऊजी ने विक्रम[6] सवत १५६१ मे बीरम का अधिकार होना लिखा है जो समवत गलत है।

मालदेव का अजमेर लेना

राव मालदेव के अजमेर जीत लेने से बीरम पर और अधिक चिढ गया। उसने शीघ्र ही बीरम को लिखा कि यह भू भाग उसके सुपुर्द करदे। बीरम ने इन्कार कर दिया। इस पर मालदेव ने बीरम पर आक्रमण कर मेडता अधिकृत कर लिया। विक्रम सवत १५६२ वैसाख की लिखी "षटकर्म" ग्रथावचूरी की प्रशस्ति के अवलोकन से प्रकट होता

---

3 'सवत् १५८६ वर्षे मार्गसिर मासे कृष्णपक्षे दोज बृहस्पति वासरे। अजमेर मह गढ वास्तव्ये राव श्री जगमल राज्य प्रवर्तमाने"—
[भविष्यदत्त चरित्र की प्र०न० २ की प्रशस्ति
डा० कासलीवाल–प्रशस्ति सग्रह, पृ० १४६]

4. बेले—हिस्ट्री आफ गुजरात, पृ० ३७३।
शारदा—अजमेर हिस्टोरिकल एण्ड डिस्क्रिप्टिव, पृ० १५७

5. नैणसी की ख्यात, जिल्द २, पृ० १५४

6. रेऊ—मारवाड का इतिहास, पृ० ११८

है कि उक्त तिथि तक बीरम का वहाँ अधिकार[7] था। श्री रेऊ ने मालदेव का १५९२ के पूर्व ही मेडता लेना लिखा है। जिसका उपरोक्त प्रशस्ति से मिलान नहीं होता है अतएव यह तिथि वि० स० १५९२ या उसके बाद ही होनी चाहिए। इसी समय मालदेव ने अजमेर से भी बीरम को भागने को बाध्य कर दिया। "जयमल वश प्रकाश" में मालदेव के द्वारा मेडता पर २ बार आक्रमण किए जाने का उल्लेख है जिसकी पुष्टि नहीं होती है।

बीरम का चाटसू आदि लेना और मालदेव का उसे वहाँ से भगाना

ख्यातो मे लिखा मिलता है कि बीरम देव अजमेर से रायमल शेखावत के पास गया और उससे सहायता लेकर उसने चाटसू बोली आदि के भूमाग पर अधिकार कर लिया। यह भूमाग उस समय टोडा के सोलंकियों के अधिकार मे था और कछवाहो और इनमे सघर्ष चल रहा था[8]। वि० स० १५९४ की षट्पाहुड ग्रन्थ की प्रशस्ति आमेर शास्त्र भडार म सग्रहित[9] है। इसमे चाटसू मे बीरम को शासक के रूप मे वर्णित किया है। यह प्रशस्ति महत्त्वपूर्ण है और इससे बीरम राठौड की इस क्षेत्र की गति विधियो का पता चलता है।

मालदेव ने बीरम का पीछा किया और विक्रम सवत् १५९५ मे उसे यहां से भागने को बाध्य कर दिया। आमेर शास्त्र भण्डार मे

7. 'सवत १५९२ वर्षे शाके १४५७ प्रवतमाने वैशाखमासे शुक्लपक्षे तृतीयाया तिथौ रवौवारे। मृगशिर नक्षत्रे। श्री मेडता नगरे। राजाधिराज श्री वीरमदेव राज्ये . "

[प्रशस्तिसग्रह (श्री शाह द्वारा सम्पादित), पृ० ९३

8 सोलकी राजा सूर्यसन स० १५९७ तक जीवित था। इसके पुत्र पृथ्वीराज और पूर्णमल थे। पृथ्वीराज का बेटा रामचन्द्र वि०स० १५८१ म घटयावली आदि म नियुक्त था। पूरणमल आवा का जागीरदार था। इनसे बीरम का सघर्ष हुआ था।

9. "सवत् १५९४ वर्षे महासुदि २ बुधवारे श्रवण नक्षत्रे श्री मूलसघे

सग्रहित वरांग चरित की वि० १५६५ की प्रशस्ति से ज्ञात होता है कि टोंक के आसपास तक मालदेव का राज्य था[10]। श्री रेऊजी ने यहा वि० स० १५६५ के स्थान पर १५६७ मे मालदेव का अधिकार करना लिखा है जो उक्त प्रशस्ति मिल जाने से स्वतः गलत साबित हो जाता है।

बीरम देव भाग कर शेरशाह के पास चला गया। नैणसी लिखता है कि जब मालदेव की फौज मोजमाबाद तक आ गई तब बीरम ने खेमा मेहता को कहा कि इस बार मैं अवश्य लडकर के मर जाऊंगा। तब मेहता ने कहा कि पराई धरती मे क्यो मरे और मरना ही है तो मेडता में ही क्यों नहीं जाकर के मरे। इस पर दोनो ही रणथम्भोर के थानेदार के पास गये और उसकी सहायता से ये शेरशाह सूर के पास[11] चले गये। उस समय इस क्षेत्र मे मेवात का शासक शाह आलम नियुक्त था जो शेरशाह का सामन्त था। इसके समय म लिखी विक्रम सवत् १६०० की लघु सग्रहिणी सूत्र की प्रति छाणा (गुजरात) के शास्त्र भण्डार मे है और वि० स० १६०२ की चाटसू मे लिखी षट्पाहुड ग्रन्थ की प्रति प्राप्त हुई है जो आमेर शास्त्र भण्डार[12] मे है। मालदेव का इस क्षेत्र पर अधिकार कुछ वर्षों तक ही रहा प्रतीत होता है। इस क्षेत्र से मिले वि० स० १६०४ के टोडा के लेख मे राव रामचन्द्र महाराणा उदयसिह और सलेम शाह सूर का उल्लेख है।

बलात्कारगणे सरस्वतीगच्छे नद्याम्नाये कुन्दकुन्दाचार्यान्वये भट्टारक श्री शुभचन्द्रदेवास्तत्पट्टे भट्टारक श्री जिनचन्द्रदेवास्तत्पट्टे भट्टारक श्री प्रभाचन्द्र देवस्तत् शिष्य श्री धर्मचन्द्रदेवात्तदाम्नाये खडेलवालान्वये चम्पावती नगरे राठोड वशे राव श्री वीरमदे राज्ये बाकलीवाल गोत्रे ...." [डा० कासलीवाल–प्रशस्तिसग्रह, पृ० १७५]

10. सवत् १५६५ वर्षे माघमासे शुक्लपक्षे षष्ठी दिवसे शनैश्चरवासरे उत्तरानक्षत्रे राव श्री मालदेव राज्य प्रवर्तमाने रावत श्री खेतसी प्रतापे साखोण नाम नगरे श्री शान्तिनाथ चैत्यालये"[उक्त पृ० ५५]
11. नैणसी की ख्यात, भाग २, प० १५६–५७
12. 'सवत् १६०२ वर्षे वैशाख सुदि १० तिथौ रविवासरे उत्तरा

वीरम का मेड़ता लेना

शेरशाह ने विक्रम संवत् १६०० में जब मालदेव पर आक्रमण किया तब बीकानेर का राजा और वीरम भी उसके साथ थे। ख्यातों में प्राय वीरम के विरुद्ध यह दोष लगाया जाता है कि उसने युद्ध के अवसर पर मालदेव के सरदारों के पास चातुरी से रुपये अथवा तलवारें पहुंचा दी और मालदेव को कहला दिया कि तुम्हारे सरदार शेरशाह से मिल गये हैं। इसलिए वह भागने को विवश हो गया। इसके विपरीत फारसी तवारीखों में शेरशाह का ही पत्र डालना वर्णित है। यह विवादास्पद[13] है। जो कुछ भी हो, वीरम को लगभग वि० सं० १६०० के आस पास शेरशाह ने मेड़ता वापस दिला दिया। इस प्रकार लगभग १० वर्षों तक युद्ध की मुख्य मुख्य तिथियां इस प्रकार होनी चाहिए —

(अ) दौलत खां का वीरम पर आक्रमण वि०सं० १५९०–९२
(आ) वीरम का अजमेर पर अधिकार वि० सं० १५९२
(इ) मालदेव का मेड़ता लेना वि०सं० १५९२–९३
(ई) वीरम का चाटसू आदि लेना वि० सं० १५९३–९५
(उ) मालदेव का चाटसू टोंक आदि लेना वि० सं० १५९५
(ऊ) वीरम का मेड़ता लेना वि० सं० १६००

[मरुभारती प्रकाशित]

फाल्गुणनक्षत्रे राजाधिराज शाहआलमराज्य नगर चम्पावती मध्ये"

13. नणसी की ख्यात जिल्द २, पृ० १५७–५८। इसमें २० हजार रुपयों की थैली जैता और कूम्पा के डेरे पर भिजवाना वर्णित है। अन्य ख्यातों में ढालों में जाली पत्र लिखकर डलवाना वर्णित है [वीर विनोद, भाग २, पृ० ८१०] फारसी तवारीखों में मालदेव के यहां शेरशाह का पत्र डलवाना वर्णित है [तारीख-इ-शेरशाही इलियट डौसन, भाग ४, पृ० ४०५। मुन्तखाब-उत तवारीख [रैंकिंग का अनुवाद], भाग १, पृ० ४७८ आदि।

दानवीर भामाशाह-परिवार | ८

भारत के इतिहास मे भामाशाह का नाम स्वर्णाक्षरो में लिखा रहेगा। देशभक्ति, अपूर्व त्याग और स्वामिभक्ति के लिए आज भी इन्हे आदर्श माना जाता है। मेवाड के लिए इनकी सेवायें उसी प्रकार उल्लेखनीय हैं जिस प्रकार गुजरात के लिये वस्तुपाल तेजपाल की।

मेवाड के महाराणा सांगा की मृत्यु वि०स० १५८४-८५ मे खानवा युद्ध के कुछ समय पश्चात् हो गई। उसके उत्तराधिकारी उसके समान शक्तिशाली नहीं थे। भारत मे उस समय सत्ता के लिये मुगल और अफगान सघर्ष कर रहे थे और हुमायू ने सूरवशी सुल्तान को हटाकर अपना खोया हुआ राज्य वापस प्राप्त कर लिया। थोडे समय पश्चात इसकी मृत्यु हो गई। इसका उत्तराधिकारी अकबर अत्यन्त शक्तिशाली था। इसने कई राजघरानो से वैवाहिक सम्बन्ध स्थापित कर अपने राज्य की नींव दृढ कर ली। इसने मेवाड पर वि० स० १६२४ मे आक्रमण किया। उस समय वहा का महाराणा उदयसिंह शासक था। राजपूतो ने महाराणा को पहाडो मे भिजवा कर चित्तौड दुर्ग का भार जयमल मेडतिये को सौप दिया। राजपूतो की हार हो गई और उदयसिंह कुम्भलगढ़ की तरफ चला गया। वि० स० १६२५ की लिखी सम्यक्त्व-कथाकौमुदी की प्रति आमेर-शास्त्र भडार मे सग्रहित है जिसमे कुम्भलगढ़ मे उक्त राणा के शासनकाल मे ग्रथलेखन का[1] उल्लेख है। जिसमे

1. सवत् १६२५ वर्षे शाके १४९० प्रवर्तमाने दक्षिणायने मार्गशीर्ष-शुक्लपक्षे षष्ठम्यां शनौ श्री कुम्भलमेरू दुर्गे रा० श्री उदयसिंह राज्ये खरतरगच्छे श्रीगुणलाल महोपाध्यायं स्ववाचनार्थं लिखापित। (सम्यक्त्वकथाकौमुदी प्र० न० १६१०, आमेर-शास्त्र भण्डार)

कुम्भलगढ मे उसके राज्य की पुष्टि होनी है। धीरे-धीरे अकबर ने मेवाड के अधिकाश भाग को अधिकृत कर लिया। यहा के महाराणा के पास उस समय धन और सैनिक सामान दोनो की व्यवस्था कर सकने वाले पुरुष की आवश्यकता थी। उस समय रामाशाह प्रधान था किन्तु वह इतना उपयुक्त नही था। उसे हटाकर उदयसिंह के वशज महाराणा प्रताप ने भामाशाह को अपना प्रधान नियुक्त किया। ख्यातों मे लिखा मिलता है "भामो परधानो करे, रामो कीधो रद्द।[2]

भामाशाह के पूर्वज

भामाशाह कावडिया गोत्र का ओसवाल था। इसके पूर्वज अलवर क्षेत्र के रहने वाले थे और सागा के समय इसका पिता भारमल रणथम्भोर मे किलेदार के पद पर था। वह इस पद पर कई वर्षों तक सफलतापूर्वक कार्य करता रहा।

महाराणा सागा ने अपने अन्तिम दिनो मे इस दुर्ग को अपने पुत्र विक्रमादित्य एव उदयसिंह को दे दिया था। ये दोनो अपनी माता हाडी करमेती के साथ यही रहा करते थे।[3] बाबर ने अपनी जीवनी तुजके बाबरी मे लिखा है कि सागा की मृत्यु के पश्चात् उक्त रानी ने चित्तौड के राज्य को प्राप्त करने मे उसकी सहायता चाही थी एव

---

2. ओझा-उदयपुर राज्य का इतिहास, भाग २, पृ० ६६२।
3. ख्यातो मे लिखा है कि करमेती पर राणा सागा का विशेष प्रेम था। एक दिन करमेती ने निवेदन किया कि आप अपने जीवन-काल मे ही अपने दोनो पुत्रो को, जो रतनसिंह से छोटे हैं, रणथमोर की जागीर दिला दें और सूरजमल हाडा को इनकी देखभाल के लिये नियुक्त कर दें तो अधिक अच्छा रहे। सागा ने ऐसा ही कर दिया। किन्तु उसके मरने के बाद रतनसिंह और सूरजमल मे विद्वेष बना रहा और दोनो इसी मामले को लेकर आपस में मन मुटाव रखने लगे। इसके परिणामस्वरूप दोनो ने एक-दूसरे पर घातक आक्रमण कर अपनी जान से हाथ धोया।

रणथम्भोर उसे देने का वचन भी दिया था।[4] किन्तु राणा सागा का ज्येष्ठ पुत्र एव उत्तराधिकारी रत्नसिंह शीघ्र ही मार डाला गया एव हाडी करमेती का पुत्र विक्रमादित्य स्वतः चित्तौड का स्वामी हो गया। इतना होते हुए भी रणथम्भोर पर मुसलमानो का अधिकार हो गया। आमेर-शास्त्र भण्डार मे उक्त काल की लिखी कुछ ग्रन्थो की प्रतिया उपलब्ध है जिनम स्थानीय शासक का नाम लिखवा दिया हुआ है।[5] अतएव प्रतीत होता है कि इस राजनैतिक परिवर्तन के अवसर पर यह परिवार भी रणथम्भोर से चित्तौड चला आया हो तो कोई आश्चय नही। क्योकि उस समय हाडी करमेती के पुत्रो का ही राज्य चित्तौड म था। यह घटना वि० स० १५९० ९५ के मध्य सम्पन्न हुई होगी।

भामाशाह की सेवाएँ

भामाशाह का जन्म चित्तौड में आषाढ शुक्ला १० वि० स० १६०४ (२८ जून १५४७ ई०) को हुआ था।[6] लू कागच्छीय पट्टावली से प्रतीत होता है कि यह परिवार वि० स० १६१६ के पूव अवश्यमेव चित्तौड मे बस चुका था और किसी दक्षिणी शख की कृपा से इस परिवार क पास करोडो रुपयो की सम्पत्ति हो गई थी। मूल वणन देपागर मुनि के वर्णन के साथ आता है जो परिशिष्ट के रूप मे दिया गया है।

हल्दीघाटी के युद्ध और इसके पश्चात् निरन्तर युद्धो मे व्यस्त रहने के कारण प्रताप की लगभग सारी सम्पत्ति विनष्ट हो गई। आजादी का दीवाना प्रताप देश की स्वाधीनता के लिये जगलो की खाक छानता फिर रहा था। इन भयकर विपत्तियो के समय भी वह अपने दृढ निश्चय पर अडिग रहा था। किन्तु धनाभाव से दु खी होकर वह सदैव के लिये मेवाड छोडकर जा रहा था। ऐसे समय मे भामाशाह ने अपनी सारी सम्पत्ति लाकर के उसके सन्मुख रख दी। कर्नल टाड के द्वारा

---

4. तुजके बाबरी (अ ग्रेजो अनुवाद) पृ० ६१६-६१३
5. राजस्थान के जैन भण्डारों की सूची, भाग ३, पृ० ७३
6. वीर विनोद, भाग २, पृ० २५१। ओसवाल जाति का इतिहास पृ० ७४।

दिये गये वर्णन के अनुसार सम्पत्ति इतनी अधिक थी कि प्रताप २५ हजार सैनिकों को १२ वर्ष निर्वाह करा सकता था। सम्पति देने के सम्बन्ध में विद्वानो मे मतैक्य नही है। श्रीगौरीशंकर हीराचन्द ओझा लिखते है कि भामाशाह महाराणा का विश्वासपात्र प्रधान होने के कारण उसी की सलाह के अनुसार मेवाड राज्य का खजाना सुरक्षित स्थानो पर रखा जाता था जिसका ब्यौरा वह एक बही में रखता था और आवश्यकता पडने पर इन स्थानों से द्रव्य निकालकर लडाई का खर्च चलाया जाता था। यह मत सत्य नही लगता है क्योकि बहादुरशाह के मेवाड पर दो बार आक्रमण हुए और एक बार शेरशाह का आक्रमण हुआ। इसके बाद अकबर के साथ उदयसिंह का भयकर युद्ध हुआ। इन युद्धो से मेवाड का राजकोष खाली सा हो चुका था। बहादुरशाह को सागा द्वारा छीने हुए मालवे के सुल्तान के बहु मूल्य जेवर, जडाऊ मुकुट, सोने की कमरपटी आदि तक देने पडे थ। अतएव उस समय जो राशि भामाशाह ने दी थी वह स्वय उसके परिवार की ही थी। लूकागच्छीय पट्टावली के वर्णन के अनुसार इस परिवार के पास करोडो की सम्पत्ति थी। इस सम्पत्ति के अतिरिक्त महाराणा ने भामाशाह और उसके छोटे भाई ताराचन्द को मालवा से सम्पत्ति लूट कर लाने को भेजा। दोनो भाइयो ने २०,००० मोहरें लूट करके ला कर महाराणा को प्रस्तुत की[9]। अकबर के सेनापति शाहबाजखा ने पीछा किया और लडते-लडते बसी ग्राम के पास ताराचद घायल हो गया। तब बसी का स्वामी साईंदास उसको उठाकर ले गया और उपचार की समुचित व्यवस्था कराई।

इस प्रकार विशाल सम्पत्ति के मिल जाने से प्रताप ने अपनी खोई हुई भूमि को वापस प्राप्त करके म सफलता प्राप्त कर ली। मेवाड मे चित्तौड कुभलगढ के महत्वपूर्ण दुर्गों को छोडकर शेष सारे भाग पर उसका अधिकार हो गया था।

.7 ओसवाल जाति का इतिहास, पृ० ७३
८ ओझा उदयपुर राज्य का इतिहास, भाग २, प० ६६१ ६२
9 डा० गोपीनाथ शर्मा-मेवाड एण्ड मुगल सम्परर्स।

भामाशाह और ताराचंद दोनों कुशल सैनिक भी थे। हल्दीघाटी के युद्ध में दोनो सफलतापूर्वक[10] लडे थे। ताराचद उस समय गोडवाड मे सादडी ग्राम का हाकिम था। इसने इस नगर की बड़ी सुन्दर व्यवस्था की थी और शाहबाजखां को इसे अधिकृत नही करने दिया था।[11] नाडोल की तरफ से बादशाह की ओर से आक्रमण होते रहते थे। इनका उसने सफलता-पूर्वक मुकाबला किया था।[12] भामाशाह द्वारा जारी किये गये कई ताम्रपत्र भी मिले हैं। ये महाराणा प्रताप के शासनकाल के हैं और वि० स० १६३३ से लेकर १६५१ तक के मिलते हैं।

(२) वि० स० १६४४ का दिगम्बर जैन मन्दिर ऋषभदेव का।

(१) वि० स० १६३३ का कुंभलगढ का ताम्रपत्र—"महाराजाधिराज महाराणा श्री प्रतापसीघ आदेशात् आचार्य बालाजी बा किशनदास बलभद्र कस्य ग्राम १ सयाणो मया कीधो

---

१०. वीर विनोद, भाग २. प० १५१। ओझा–उदयपुर राज्य का इतिहास, भाग १, पृ० ४३२

११ शाहबाजखा बराबर इस क्षेत्र मे लड रहा था। रामपुरा नवाब की लाइब्रेरी मे सुरक्षित तारीख-ए-अकबरी जो हाजी मोहम्मद आरिफ कधारी ने लिखी है, इस सम्बन्ध मे महत्वपूर्ण है। इसके अनुसार वि. स. १६३३ मे ही अकबर ने शाहबाजखा को इस क्षेत्र मे लगा दिया था। जैसलमेर भडार मे भोजचरित की हस्तलिखित प्रति संग्रहीत हैं जिसमे वि० स० १६३४ की प्रशस्ति दी है जिसमे कुंभलगढ के लिए लिखा है—"कुंभलगढ दुर्गं विग्रहो विजयो भवति" एवं वहा अकबर का राज्य भी उल्लिखित किया है आदि। शाहबाजखा को पूर्ण विजय वि० स० १६३५ मे मिली थी। उस समय भी धोखे और चालाकी से। कधारी ने 'लिदहाव और फरेबदादा' शब्द प्रयुक्त किये हैं। इस प्रकार निरन्तर दो वर्षों तक शाहबाजखा इस क्षेत्र में बराबर लड़ता रहा था।

१२ वीर विनोद, भाग २ पृ० २५१

उदके आघाटे दत्ता कु'भलमेर मध्ये सवत् १६३३ वष भादवा सुदी ५ रवौ श्रीमुष प्रति हुक्म दी दो रायजीसाह-भामो पहला पतर ले गया लुटयो गयो सु नवो करे मया कीधो"—(मेवाड एण्ड मुगल एम्परर्स, पृ० २०८)
इस ताम्रपत्र से स्पष्ट है कि इस सवत् तक अवश्यमेव वह मेवाड का प्रधान हो चुका था।

(३) वि० स० १३४५ का ताम्रपत्र जहाजपुर का :—
"सिधश्री महाराजाधिराज महाराणा जी श्री प्रतापसिहजी आदेशातु तिवाडी सादूल नाथए भवान काना गोपाल टीला धरती उदक आगे राणाजी श्री जी ताम्वा पत्र करावे दीधो थो प्रगणे जाजपुर रा ग्राम पडेरमध्ये हुलै धरती बीगा गारा करे दीधो श्रीमुष हुकम हुओ। साह भामा। सवतु १६४५ काती सुदी १५।"

(४) वि० स० १६५१ का ताम्रपत्र—
"महाराजाधिराज महाराणा श्री प्रतापसिंह आदेशातु चौधरी रोहितास कस्य ग्राम मय कीधो ग्राम डईलाणा बडा माहे येन ४ वरसाली रा उदक ·····स० १६५१ वर्षे आवौज सुद १५ दव श्रीमुख वोदमान सा० भामा।"

इन उपरोक्त विवरणों से उक्त वर्षों मे उसके बराबर प्रधान रहने की बात सिद्ध होती है।

वीर-विनोद में दिये गये वृत्तान्त के अनुसार भामाशाह[13] को अब्दुलरहीम खानखाना ने महाराणा को अकबर की अधीनता में लाने के लिए बहुत समझाया था और हर तरह से इसे लोभ दिया गया था किन्तु त्यागमूर्ति भामाशाह ने उसे नकारात्मक उत्तर दे दिया।

लूंकागच्छ की सेवायें

भामाशाह-परिवार लूंकागच्छ का मानने वाला था। उक्त पट्टावली में दिये गए वृत्तान्त के अनुसार भीण्डर आदि मेवाड के कई ग्रामो

१३. उक्त पृ० १५६। ओझा—उदयपुर राज्य का इतिहास, पृ० ४४६

में लूकागच्छ के फैलाव के लिए इसने बडी सहायता दी थी। कई दिगम्बर परिवारो तक को इसने दीक्षित कराया था। लोगों को लाखो रुपयों की धन से भी सहायता दी थी। ताराचद ने भी गोडवाड में इस कार्य को किया था। मोहनलाल दलीचद देसाई लिखते [14] हैं कि भामाशाह के भाई ताराचद को गोडवाड की हाकिमी मिलते ही वह सादडी मे रहने वाले लूकागच्छीय साधुओ का पक्ष लेने लगा। उसने मूर्तिपूजा बन्द तो नही कराई किन्तु पुष्पादि वस्तुयें इसके लिए वर्जित करादी। इसके प्रभाव के कारण कई लोग लूकागच्छ में आ गए। उसने मूर्तिपूजको पर कई अत्याचार किए। श्री देसाई ने अत्याचार का उक्त कथन श्री जैन श्वेताम्बर मूर्तिपूजक गोडवाड और सादडी लूका मतियो के मतभेद का दिग्दर्शन नामक पुस्तक के आधार पर लिखा है जो कहा तक सही है कहा नही जा सकता।

कलाप्रेमी ताराचंद

ताराचद बडा कलाप्रेमी था। इसने सादडी मे विशाल बावडी बनवाई थी और उस पर एक शिलालेख भी लगवाया था। यह बावडी इसके मरने के बाद इसके पुत्र ने पूरी की थी। इसका शिलालेख अभी जीर्णोद्धार के समय वहा से हटा लिया गया प्रतीत होता है। मैने कुछ वर्ष पूर्व इसकी छाप ली थी और इसे प्रकाशित भी कराया था। [15] यह बावडी स्थापत्यकला का एक उत्कृष्ट नमूना है। ताराचद के यहा कई सगीतज्ञ भी थे। सादडी में उसकी छत्री के समीप इसकी चार स्त्रियो की मूर्तियां हैं। इनके अतिरिक्त एक खवास ६ गायिकाए, एक गवैया और एक गवैया की स्त्री की मूर्तिया भी खुदी हुई हैं। इन पर वि० स० १६४८ वैशाख वदि ८ के लेख हैं। इससे प्रतीत होता है कि कलाओं का वह बडा सरक्षक था। बावडी मे उसके बैठने का स्थान दर्शनीय है। वह साहित्य प्रेमी भी था। हेमरत्न ने प्रसिद्ध

---

१४ जैन साहित्यनो सक्षिप्त इतिहास, पृ० ५६६

१५ मरु भारती सन् १९६६ अक ३, पृ० २ से १०

गोरा बादल चोपाई [16] इसके पास रहकर के ही लिखी थी। इसकी प्रशस्ति से प्रताप के अन्तिम दिनों में इस परिवार की स्थिति का पता चलता है।

भामाशाह के वंशज

भामाशाह की मृत्यु वि० स० १६५६ में हुई थी। [17] महाराणा प्रताप के बाद उसके पुत्र अमरसिंह के समय में भी वह इस पद पर विद्यमान रहा था। उसकी मृत्यु के पश्चात् उसका पुत्र जीवाशाह मेवाड का प्रधान बनाया गया। कर्णसिंह के साथ संधि के समय वह जहांगीर बादशाह के पास गया था। [18] इसकी मृत्यु के पश्चात् इसका पुत्र अक्षयराज मेवाड का प्रधान [19] बना था। इसके बाद संभवतः इसके वंशजों को यह अधिकार प्राप्त नहीं हो सका। किन्तु इनका सम्मान यथावत् बना रहा। महाराणा स्वरूपसिंह जी के समय एक विवाद उठ खड़ा हुआ कि ओसवालों की न्यात में प्रथम तिलक किनको किया जावे ? इस पर महाराणा ने वि० स० १९१२ ज्येष्ठ १५ बुधवार को एक पट्टा लिखकर भामाशाह के परिवार वालों की प्रतिष्ठा बनाये रखने और उनको प्रथम तिलक करने का आदेश दिया। [20]

---

१६. संवत् सोलइसइ पणयाल। श्रावण सुदी पचमी सुविसाल ॥
पुहवी पीठि धनु पर गही। सबल पुरी सोहइ सादडी ॥
पृथ्वी परगट राणा प्रताप। प्रतपउं दिन दिन अधिक प्रताप ॥
तस मत्रीसर बुद्धिनिधान। कावडिया कुल तिलक निधान ॥
सामिधरमी धुरी भामुसाह। वयरी वस विधुंपण राह ॥

१७ ओझा—उदयपुर राज्य का इतिहास, भाग २, पृ० ६६२-६३

१८ उक्त भाग २ पृष्ठ ६६३

१९ उक्त

२० "स्वस्ति श्री उदयपुर सुमसुथाने महाराजाधिराज महाराणा श्री स्वरूपसिंघजी आदेशात् कावडया जैचद कुनणे वीरचन्द कस्य अप्रंच थारा बडा बाबा भामो कावडयो ई राजम्हे सामद्र कासु काम चाकरी करी जिकी मरजाद ठेठसू इंया है—महाजना की जातम्हे बावनी त्या

इस प्रकार भामाशाह की सेवाओं से मेवाड की ही रक्षा नही हुई, अपितु समस्त हिन्दू जाति का महान उपकार हुआ। अगर यथा-समय धन की सहायता भामाशाह परिवार नही देता तो सम्भवत. प्रताप मेवाड छोडकर चले जाते। यहा का इतिहास कुछ और ही होता। प्रताप की त्याग बलिदान और अपूर्व साहस की कहानी के साथ-साथ भामाशाह की स्वामिभक्ति और देशभक्ति की गाथाए सदैव गाई जाती रहेगी।

सादडी का शिलालेख

सादडी का उक्त तारा बावडी का शिलालेख महाराणा अमरसिंह के शासनकाल के प्रारम्भिक वर्षों का है। इसमे भामाशाह के पिता भारमल से वशावली दी हुई है। इसमे कुल २२ पक्तिया है। लेख वि० स० १६५४ वैशाख वदि २ का है। ताराचद उस समय स्वर्गस्थ हो चुका था। उसके पुत्र सुरत्ताण ने इसकी प्रतिष्ठा कराई थी। लेख मे भामाशाह की माता कपूरदेवी का उल्लेख है। यह लेख इसलिए भी महत्वपूर्ण है कि महाराणा प्रताप के अन्तिम दिनो में इस क्षेत्र को मुसलमानो से पूर्ण रूप से मुक्त करा लिया था। इस बात की पुष्टि वि० स० १६५१ के डेलाना (गोडवाड) ताम्रपत्र से होती है। यह ताम्रपत्र भामाशाह के हस्ताक्षरों से जारी किया गया था।

नागपुरीय परिशिष्ट लु का गच्छीय पट्टावली मे भामाशाह का वर्णन

"........तत्पट्टे श्री देवागर सूरयो बभूवस्ते परोक्षक वशोया: कोटडा निगमे वेतसी नामा जनक: धनवती जननी नागोरपुरे चारित्र

चोका को जीमण वा सीग पूजा होवे जीम्हे यह पहेली तलक थार हो सो अगला नगर सेठ वेणीदास कासो कायो अर बेदर्याफत तलक थारे नही करबा दीदो अबारु थारी सालसी दीदी सो नगे करी अर म्यात म्हे हुवसर म सुप हुई सो अब तलाक माफक दस्तुर के थे थारो करांया जाजो आगा सु थारा हुकम कर दीदो है सो पेली तलक थारे होवेगा। प्रवानगी मेहता शेरसीग सवत् १६१२ ज्येष्ठ सुदी १५ बुधे........॥"

पदमपि तत्र सम् सवत् १६१६ चित्रकूट महादुर्गे शावदियान्वयो मारमल धनी तथा गणीयोऽभूत् । तेन देपागरसूरीणामभिधान शुद्धक्रियाधारकत्व च श्रुतम् । तदादित एव तद्गुणरञ्जितचेतस्कोऽवदत् श्लोकः—

धन्यो देपागरस्वामी प्रदीपो जैनशासने ।
एष एव गुरुर्मेऽस्ति धन्योऽह तन्निदर्शकृत् ॥

इति भावनया शुद्धात्माऽभूद् मारमल्ल तस्मिन्नवसरे तत्रत्यो भामा नामो नाहटोऽस्ति । तद्गृहेपुण्योगाद् दक्षिणावर्त्तः शङ्ख. प्रादुरभूत् तत्साम्निध्याद् गृहेऽष्टादशकोटयो धनस्य प्रकटी भवन्ति एकदा तत्र धन्नाख्यचैमण्डपाद्यो धर्मध्यान विदधत् साधुगुणग्रामाभिरामः श्रीदेपागरस्वामी शुद्ध तपोधने मारमल्लेन दृष्टो विधिवद् वन्दितश्च । शुद्धधर्मोपदेशामृत पीत श्रवणाभ्याम् । अति प्रसन्नेन मारमल्लेन विमृष्टमहो ! महान् भाग्योदयो मे प्रकटितोयदीदृग गुणगौरवो दृष्ट सर्वेऽर्था मे सेत्स्यन्ति । तदा मारमल्लान्वये च बहव श्रावका जाता नागोरी लुङ्कगणीया । अथ मारमल्लस्य भामानामकसुतोऽजनि । महान् मह कृत । सर्वत्र दानादिनाऽर्थिजनमनोरथा पूरिता अन्येपि ताराचन्द्रादयः पुत्रा अभूवन् । तत्र भाम शाहताराचन्द्रौ विश्रुतौ जातौ । स्वगच्छरागेण बहवोजन स्वगणे समानीता । पुन श्री राणाजीतोऽमात्य पद लात्वा बलिनौ जातौ । ताराचन्द्रेण सादडीनाम नगर स्थापितम् । सर्वत्र पोषधशालादिकानि स्थानानि कारितानि । स्थाने स्थाने पुरे पुरे ग्रामे ग्रामे बहुजनेभ्यो धन दाय दाय स्व गणीया. कृता । श्री नागोरी लुङ्काङ्-गणोऽतिख्यातिमाप । पुनःभामाशाहेन दिगम्बरमतगा नरसिंघपोरा स्वगणेसमानीता । बहु स्व दत्वा १७०० गृहाणि तेषामात्मीयानी कृतानि । भिण्डरकादि पुरेषु तदा च जात श्रावकग्रहाणा चतुरशीतिसहस्राधिक लक्षमेकम् । ...”

(मरुधर केसरी अभिनन्दन ग्रथ से)

कछवाहों का प्रारम्भिक इतिहास | ९

प्रतिहार साम्राज्य के विघटन के पश्चात् उत्तरी भारत मे कई नये राज्य स्थापित हो गये । इनमे उल्लेखनीय गुजरात के चालुक्य, मालवा के परमार और अजमेर के चौहान थे । इनके अतिरिक्त अन्य कई छोटे २ राजा भी स्वाधीन हो गये जिनमे ग्वालियर, दूबकुण्ड और नरवर के कछावा भी हैं ।

कछवाहो का प्रारम्भिक इतिहास अन्धकारमय है । निश्चित प्रामाणिक सामग्री के अभाव मे तिथि–बद्ध इतिहास प्रस्तुत करने मे कठिनाई होती है । ख्यातों के आधार पर कछावो की उत्पत्ति राम मे[1] मानी गई है । ऐसी मान्यता है कि ये लोग प्रारभ मे अयोध्या से रोहतासगढ़ गये जहा नरवर आकर[2] बस गये थे । १० वीं शताब्दी के पश्चात् से कछावो का ग्वालियर, दूबकुण्ड, नरवर और आम्बेर की शाखाओं का जो इतिहास मिलता है उसका सक्षिप्त वर्णन इस प्रकार है —

१. बडे वस श्री रामके कछवाहे दल साजि ।
   आये नरवर तें लियो देस ढुढाडउ राज ।।५७
२. पोलिटिकल हिस्ट्री आफ जयपुर स्टेट by T.C ब्रूक एव श्री J P. स्ट्रैन द्वारा लिखित "दी जयपुर आम्बेर फेमिली एण्ड स्टेट" की जयपुर स्थित प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान की टाइप्ड प्रतियों के पृष्ठ क्रमश २८ और ५ ।

ग्वालियर के कछावा

कुछ शिलालेखों के अतिरिक्त इस शाखा के इतिहास जानने का कोई साधन नहीं है। वि. सं. ११५० के *सासबहू के मन्दिर का लेख* इनका पहला विस्तृत लेख है जिसमें निम्नांकित ८ राजाओं का उल्लेख है यथा :– (१) लक्ष्मण (२) वज्रदामा (३) मंगल (४) कीर्तिराज (५) मूलदेव (६) देवपाल (७) पद्मपाल और (८) महीपाल।

लक्ष्मण—लक्ष्मण के पिता और निवास स्थान का उल्लेख नहीं मिलता है। *यह निश्चित है कि इसका ग्वालियर पर अधिकार नहीं* था। उस समय ग्वालियर दुर्ग पर प्रतिहारों का अधिकार था। ग्वालियर से वि स. ९३३ माघसुदि का एक लेख भोज प्रतिहार के समय[3] का मिला है। इसके पश्चात् भी कई वर्षों तक इस दुर्ग पर प्रतिहारों का ही अधिकार रहा प्रतीत होता है। लक्ष्मण के पुत्र वज्रदामा की तिथि स १०३४ है। अतएव उसमें से २० औसतन वर्ष कम करके १०१४ लक्ष्मण की तिथि मान सकते[4] हैं। सासबहू मंदिर के लेख से विदित होता है कि वज्रदामा ने सबसे पहले ग्वालियर दुर्ग को विजित किया था। लक्ष्मण के लिये इस लेख में यह वर्णित है कि इसने प्रजा के हित के लिये पृथु की तरह हथियार धारण किये थे। अतएव इतना अवश्य पता चलता है कि उसने कहीं अपना छोटा राज्य अवश्य बना लिया था। कुछ ख्यातों में इसे ढोला राव का पुत्र भी वर्णित किया है और नरवर से ही आकर ग्वालियर जीतना लिखा है। लेकिन उसकी पुष्टि अब तक किसी प्रामाणिक सामग्री से नहीं

---

३ "......संवत ९३३ माघसुदि २ अद्येह श्रीगोपगिरीश्वरमिह परमेश्वर श्रीभोजदेव तदधिकृत कोट्टपाल मल्ल बलाधिकृत तुर्क स्थानाधिकृत श्रेष्ठि वव्वियाक इच्छुवाक सार्थवाह......"
[जरनल, रायल एशियाटिक सोसाइटी बंगाल, भाग३१, पृ० ३९५]

४ पोलिटिकल हिस्ट्री आफ नोदर्न इंडिया फ्राम जैन सोर्सेस पृ० ७१–८२

हो जावे जब तक इसे नही माना जा सकता है। लक्ष्मण का विशेषण "क्षोणीपतेर्लक्ष्मण" लिखा मिला है। अतएव यह छोटा राजा रहा होगा।[5]

वज्रदामा– वज्रदामा लक्ष्मण का पुत्र था। सुहानिया से प्राप्त एक जैनमूर्ति के लेख में इसे महाराजाधिराज वज्रदामा लिखा है। इस लेख की तिथि वि. स १०३४ है।[6]

सासबहू के मन्दिर के लेख मे इसके द्वारा ग्वालियर दुर्ग को जीतने और गाधिनगर के राजा को हराने का उल्लेख है।[7] यहां गाधिनगर के राजा का तात्पर्य कन्नौज के प्रतिहारो से है।[8] उस समय विजयपाल शासक था।[9] इन अन्तिम प्रतिहार सम्राटो के समय राज्य की शक्ति बहुत कमजोर हो गई थी। वि. स १०११ के चन्देल लेख मे धगदेव द्वारा गुर्जर प्रतिहारो को हराकर कालिंजर जीतने का उल्लेख

---

५. आसीद्वीर्यं लघुक्तेन्द्र तनयो निःशेष भूमीभृता।
वन्द्यः कच्छप घात तिलका क्षोणीपतेर्लक्ष्मण,।
यः कोदण्डधरः प्रजाहितकरश्चक्रे स्वचित्तानुगाङ्ग—
मेक पृथुवत्पृथूनापि दृढाद् राय पृथ्वीभृतः।।५।।

[उपरोक्त पृ० ३६६]

६. सम्वत: १०३४ श्रीवज्रदामा महाराजाधिराज वइसाखवदि पाचमि–[उपरोक्त पृ ३६६ एव जैन लेख सग्रह भाग २ पृ १६८]

७. तस्माद्वज्र (रोपमः क्षितिवज्रदामाभव दुर्वारोर्जितबाहुदण्डविजिते गोपाद्रिदुर्गेयुवा। निर्व्याजम्परिभूय वैरिनगराधीशप्रतापोदय यद्वीरव्रतसूचक समभवत् प्रोद्घोषणाडिडिमिः।।६।।

[उपरोक्त पृ. ३६६]

८. डा. त्रिपाठी--हिस्ट्री आफ कन्नौज पृ १२

९. वही पृ. २७६। पोलिटिकल हिस्ट्री आफ नोर्दर्न इ डिया फ्राम जैनसोर्सेस पृ ७३। दी एज आफ इम्पिरियल कन्नौज पृ. ३७ ३८

मिलता है।[10]इतना होते हुए भी समसामयिक विनायकपाल को सम्राट के रूप में वर्णित[11] किया। इससे प्रकट होता है कि यद्यपि उस समय प्रतिहारो की शक्ति अवश्य कम हो गयी थी फिर भी परम्परागत मान्यता अवश्य दी हुई थी। ऐसा प्रतीत होता है कि उस समय चन्देल राजपूत शक्ति बढ़ाते जा रहे थे। समव है कि वज्रदामा ने भी ग्वालियर विजय करने मे इनसे सहायता ली होगी। डा० गुलाबराय चौधरी वज्रदामा को चन्देलो का सामन्त राजा मानते हैं किन्तु यह आधारहीन प्रतीत होता है। इसके २ पुत्र सुमित्र और मगलराज हुए। मगलराज ग्वालियर का अधिकारी हुआ और सुमित्र को कुछ ख्यातो के अनुसार नरवर का राज्य दिलाया गया। वज्रदामा की मृत्यु आनन्दपाल और मोहम्मद गजनवी के मध्य हुए युद्ध मे ३१ १२। १००१ को हुई मानी जाती है।[12]

राजा धगदेव के खजुराहू के लेख श्लोक २३३ एवं ५० एपिग्राफिआ इंडिका भाग १ पृ. १२२ इस लेख में वर्णित विनायकपाल के सम्बन्ध मे डा. त्रिपाठी की मान्यता है कि यह विनायकपाल है। जिसकी अभितिथि ए. डी. ६४२ या ६६६वि० मिली है। इसके पश्चात् महेन्द्रपाल इसका उत्तराधिकारी हो गया था। अतएव ऐसा प्रतीत होता है कि इस शिला लेख का प्रारूप ६४२ ई के पूर्व हो तैयार कर लिया गया होगा किन्तु उत्कीर्ण इसके बाद ६५४ A D. या १०११ के आसपास किया गया होगा होगा। [डा. त्रिपाठी हिस्ट्री आफ कन्नोज पृ० १२]। डा० राय के अनुस र यह विनायकपाल II था [इ डियन ए टिक्वेरी, vol LVII page २३२]।

११. राजोरगढ से प्राप्त मथनदेव के लेख में "महाराजाधिराजपरमेश्वर" प्रयुक्त हुआ है। मथनदेव समवत. पूर्ण स्वतन्त्र शासक था [दी एज आफ इम्पिरियल कन्नोज पृ० ३८-३६]।

१२. श्री जगदीशसिंह गहिलोत्-जयपुर राज्य का इतिहास पृ. ५८

मंगलराज—बयाना के पास "ऊखामंडल" के शिलालेख मे मंगलराज का उल्लेख है। इसमें उसके वंश वगैरा का उल्लेख नहीं है। किन्तु विद्वान् लोग मानते है कि यह मगलराज ग्वालियर का कछवाहा राजा ही है। यह शिव का भक्त था। इसके द्वारा कई युद्धो मे भाग लेकर शत्रुओं को हराने का भी उल्लेख मिलता है।[13]

महमूद गजनवी ने जब ग्वालियर पर आक्रमण किया था तब मगलराज या कीर्तिराज शासक रहा होगा।

कीर्तिराज—यह मगलराज का पुत्र था। इसका मालवे के राजा के साथ युद्ध होना विख्यात है। सास बहू के मन्दिर की प्रशस्ति मे केवल मालवे के राजा से युद्ध करना वर्णित है।[14] हाडौती मे मालवे के परमारों का अधिकार था। शेरगढ और झालरापाटन से मालवे के राजा उदयादित्य की प्रशस्तियाँ मिली हैं। ऐसा प्रतीत होता है कि कीर्तिराज ने राज्य विस्तार हेतु बयाना से आगे बढ़कर हाडोती मे अधिकार करना चाहा हो। दूब कुण्ड के कछावा उस समय मालवे के परमारो के सहायक थे। उक्त शाखा के कछावा अभिमन्यु के लिये लिखा मिलता है कि मालवे के राजा भोज ने भी उसकी प्रशंसा की थी। उसके पुत्र के समय का एक शिलालेख भी बयाना से मिला है। अतएव पता चलता है कि भोज ने कीर्तिराज को हराकर उससे बयाना के आसपास का भू भाग छीन लिया और दूबकुण्ड शाखा के कछावो को दे दिया प्रतीत होता है। यह शिव का बडा भक्त था। इसके द्वारा कई शिवमन्दिर बनवाये गये थे।[15]

---

१३ ततो रिपुध्वान्तसहस्रधामा नृपोमव•मगलराजनामा।
मशेश्वरैकप्रणतिप्रभावान्महेश्वराणाम्प्रणत सहस्त्रे ।।८।।
[सासबहू मदिर का लेख]

१४ श्री कीर्तिराजो नृपतिस्ततोभूद्यस्य प्रयाणेपु चमूसमुत्थे धूलीविताने.—..........तेन शौर्याब्धिना धत्ते मालवभूमि• यस्यपभरेमस्यामतीतोजित:...... ....(उपरोक्त)

१५ अद्भुताखिलहासनीय नगरे येन कारित.।
कीर्तिस्तम्भ इवाभाति प्रासादः पार्वतीपतेन ।। ११ ।। (उपरोक्त)

शुद्रक के विशेषणों की याद दिलाते हैं। इसकी तुलना पाचों पांडवों दुर्योधन आदि से की गई है।[२१] इसकी रानी का नाम लक्ष्मा देवी था। इससे वीरसिंह उत्पन्न हुआ। इस दानपत्र में स्पष्टरूप से कच्छपवशी शब्द अंकित है।

आम्बेर के कछावा राजा भी इसी शाखा से सम्बन्धित हैं। सं० ११७७ के बाद इस शाखा का इतिहास अभी उपलब्ध नहीं हुआ है।

दूबकुण्ड के कछावा

इस शाखा का एक विस्तृत शिलालेख वि.सं. ११४५ का मिला है। इसमें ५ राजाओं का वर्णन है—(१) युवराजदेव (२) अर्जुनदेव (३) अभिमन्यु (४) विजयपाल और (५) विक्रमसिंह। इस लेख में यह वर्णित नहीं है कि इस शाखा के राजा, दूबकुण्ड के आने से पूर्व कहां थे?

युवराज देव के लिये कोइ सामग्री इस लेख में नहीं दी गई है। इसका पुत्र अर्जुन था। उक्त लेख में इसकी बड़ी प्रशंसा की गई है। इसे भूपति बिरुद ही दिया गया है। यह विद्याधर चन्देल का सामन्त था। इस लेख में स्पष्ट रूप से उल्लेखित किया गया है कि इसने विद्याधर चन्देल के लिए राजपाल को मारा था। यह राजपाल प्रतिहार

---

२१ ''''''''सवत ११७७ कार्तिक वदि अमावस्यायां रविदिनेऽद्येह श्रीमन्नवलपुरमहादुर्गे परमवैष्णवपरमब्राह्मण्योदीनानाथः कृपणजनवत्सलोऽनेकगुरुगुणालङ्कृतशरीरः पितृमातृपदाम्बुजसुग्रहणपरो युधिष्ठिरवत् सत्यवादी भीमसेनइवात्यद्भुतवीर्योऽर्जुन इवधनुर्धराग्रेसरः कर्ण इव त्यागार्जितकीर्तिः दुर्योधन इव महामानी मृगेन्द्र इवाऽप्रतिमपराक्रमः समरवसुधावतीर्ण दुर्वारवैरिघटावारणसघट्टविघटनोपार्जितयशः सुधाधवलिताखिलमहीमडलः श्रीमत्कच्छपघोतान्वयसर' कमलमार्तण्डो महाराजाधिराजपरमेश्वरशरदसिंहदेवपादानुध्यानपरः परमराज्ञी श्रीलक्ष्मादेवीगर्भरत्न करोत्पन्नमाणिक्यमूर्तिः—परमभट्टारकमहाराजाधिराजपरमेश्वरश्रीवीरसिंहदेवो विजयी''''''''''''

वशी सम्राट[२२] था। राज्यपाल के उत्तराधिकारी त्रिलोचनपाल के समय ही सुल्तान मोहम्मद ने १०२७ ई० म इस पर आक्रमण किया था।

इसका पुत्र अभिमन्यु हुआ। यह परमार राजा भोज का सामन्त था और इसके अधीन रहकर लडा भी था। उक्त लेख मे 'यस्माद्‌भुतवाह वाहनमहाशस्त्रप्रयोगादिपु प्राविण्य प्रविकत्थित प्रथुमति भोजपृथ्वीभुजा' उल्लेखित है। जैसाकि ऊपर कहा गया है कि भोज ने इसे बयाना के आसपास का इलाका दे दिया था।

अभिमन्यु के बाद विजयपाल शासक हुआ। इसके समय का स० ११०० का एक लेख बयाना की मस्जिद पर लगा हुआ है। इस लेख म १८ पक्तिया हैं। इसकी पाचवी पक्ति म 'अधिराजविजय' नामक राजा का उल्लेख है। इसके राज्य म श्रीपथ नगर के जैनाचार्य महेश्वर-सूरि जो क म्पक गच्छ के आचार्य थे की मृत्यु होने पर 'निपेधिका' बनाने का उल्लेख मिलता है। इसके पश्चात् विक्रमसिह राजा[२३] हुआ। इसके समय का ही दूबकुण्ड का शिलालेख है। इस लेख में कुल ६१ पक्तिया हैं। इसम चन्दोमा नगर का वर्णन है जो वर्तमान दूबकुण्ड ही रहा प्रतीत होता है। इसमे ऋषि और दाहड नामक २ श्रेष्ठियो द्वारा जैन मदिर के निर्माण का उल्लेख मिलता है। इस

---

२२ आसीत्कच्छपघातवशतिलकस्त्रैलोक्यनिर्यद्यश पाडुयुवराजसूनुरसम चन्द्रीमचेनानुग.। श्रीमानर्जुनमभूपति. पनिरपामस्याप यस्त्वयता नो गाँमीयगुणेन निर्जितजग (द्व) न्वी धनुर्विद्यया। श्रीविद्याधरदेवका यनिरत श्रीराज्यपाल हठात्कण्ठास्थिच्छिदनेकवाणनिवहैर्हत्वा महत्यात्द्वे। (दूबकुण्ड का लेख, पक्ति १०-१२)

२३. 'अर्थतस्य जिनश्वरमदिरस्य निष्पादनपूजनसस्कराय कालान्तर-स्फुटितप्रतीकारार्थं च महाराजाधिराजश्रीविक्रमसिह स्वपुण्य-राशिप्रतिहतप्रसर परमोपचय चतमि [नि] धाय गाणी प्रतिवि-शोपक गोधूमगोणीचतुष्टयवापयोग्य क्षेत्र। [उपरोक्त प० ५४ स ५६]

मंदिर के लिये विक्रमसिंह ने प्रत्येक गोणी अनाज पर विशोपक($\frac{1}{20}$) कर लगाया।

इसके पश्चात् इस शाखा का कोई उल्लेख नहीं मिलता है।

आम्बेर के कछावा

आम्बेर के कछावों का प्रारम्भिक प्रामाणिक इतिहास उपलब्ध नहीं है जो कुछ सामग्री उपलब्ध है वह पश्चात् कालीन लेखकों द्वारा लिखी गई है।

सोढ़ा:—नरवर के शासक सुमित्र के वंशजों से ही आम्बेर के कछावों की उत्पति मानी गई है। ख्यातों मे सुमित्र के बाद मधुब्रह्म, कहान, देवानिक, ईशासिंह सोढ़देव आदि नाम मिलते हैं। ऐसी भी मान्यता है कि ईशासिंह को करोली के आस पास जागीर मिली हुई थी। सबसे पहले सोढ़ा ने दौसा का भाग छीन कर एक छोटा सा राज्य स्थापित किया। कुछ ख्यातो मे सोढ़ा के स्थान पर उसके पुत्र दुल्हराय द्वारा राज्य स्थापित करना भी मिलता है। टॉड ने भी ऐसा ही माना है। यह लिखता है कि दुल्हराय को उसकी माता ने बाल्या वस्था मे लाकर खोह गग मे शरण दी थी।[25] कुछ ख्यातों मे ऐसा भी मिलता है कि वह कुछ समय के लिये अपने पैतृक राज्य अपने भानजे को देकर दौसा विवाह करने के लिये आया था। यहा काफी समय तक रहा था। जब उसे मालुम हुआ कि उसके भानजे ने अपने राज्य पर अधिकार कर लिया है तो वह लम्बे झगडे से बचने के लिये दौसा को अपने अधिकार मे कर लिया। रावल नरेन्द्रसिंह ने दुलहराय का विवाह मौरां के चौहान राजा सालार सिंह जिसे राल्हणसी भी कहते है की पुत्री कुमकुमदे के साथ होना वर्णित किया है।[26] उसे राल्हणसी ने यहीं ढूंढाड प्रदेश मे रहने को कहा और दौसा के आसपास का भू भाग उसे जीत कर देदिया। दौसा मे उस समय बडगूजर शासक

---

२४. श्री गेहलोत, जयपुर राज्य का इतिहास (१९६६) पृ० ५८।
२५ एनल्स एण्ड ऐंटीक्वीटिज भाग २ पृ. २८०
२६ ए ब्रीफ हिस्ट्री आफ जयपुर पृ. १६-२०/मीणा इतिहास-पृ १२३

थे। नैणसी ने सोढदेव द्वारा दौसा मे राज्य स्थापित करना लिखा है जो अधिक उपयुक्त प्रतीत होता है।

दुलंभराय

पृथ्वीराज विजय और कच्छप वंश महाकाव्य के अनुसार दुलंभराय को कुलदेवी की प्रेरणा मिली और राज्य विस्तार की उसे प्रबल कामना हुई।[२७] इस सम्बन्ध में ख्यातो में लिखा मिलता है कि माचो के सीहरावशी मेदा मीणा के साथ सघर्ष करते हुये एक बार दुल्हराय की हार हो गई अतएव वह बहुत ही हतोत्साहित हो गया। इस पर उसने देवी की आराधना की और देवी से प्रेरणा लेकर उसने माची पर आक्रमण कर उस पर अधिकार कर लिया।[२८] गटोर घाटी और झोटवाडा के मीणाओ के राज्य भी सभवत: इसी ने समाप्त किये थे। कर्नल टॉड की मान्यता है कि इसकी मृत्यु मांच के मीणाओ के साथ हुए सघर्ष मे हुई थी। मीणाओ का सर्वप्रथम इतिवृत्त प्रस्तुत करने वाले विद्वान् लेखक श्री रावत सारस्वत की इस सम्बन्ध में मान्यता है कि दुलहराय ने सबसे पहले खोह का राज्य लिया था।[२९] *खोह का राज्य मिल जाने पर अपने सुसुर मोरां के चोहान शासक* की सहायता से दौसा के बडगूजरो को हराकर उस पर दुल्हराय का अधिकार कर लेना ठीक लगता है। दौसा के बाद मांची के मीणो से छीनकर उसे माची लेना और उनसे लडते हुये ही काम आना—दुलहराय के जीवन का प्रधान इतिवृत है। दुलहराय ने ढूढाड में वि. स. ११२५ के आसपास राज्य स्थापित किया था। जयपुर राज्य के अन्य विवरणों में यह तिथि भिन्न २ प्रकार से लिखी मिलती है। भू पू जयपुर राज्य की १९४१ की रिपोर्ट (एडमिनिस्ट्रेटिव रिपोर्ट। में दुलहराय की मृत्यु वि. स १०६३ में होना वर्णित किया है। इसमें दुलहराय के पिता सोढ़ देव की तिथि वि स १०२३ से १०६३ तक दी हुई है। श्री

---

२७ शोध पत्रिका वर्ष १८ अंक ३ पृ०

२८ रावत सारस्वत–मीणा इतिहास पृ १३१

२९ उपरोक्त पृ. १३३

जगदीश सिंह गेहलोत ने यह तिथि वि स ११६४ दी है। [30]इनकी मान्यता का आधार यह है कि वज्रदामा के वि स० १०३४ के लेख के बाद ६ पीढि और हुई थी। अतएव २५ वर्ष प्रत्येक पीढि पर लेते हुये ११६८ ही मानी गई है। अगर प्रारम्भिक वशावली मे वर्णित ६ राजाओ के नाम सही हैं तो यह तिथि ठीक हो सकती है। खातो मे यह वर्णित किया मिलता है कि दुर्लभराय अन्तिम दिनो मे दक्षिण की ओर यात्रा के लिये भी गया था। [31] इसकी मृत्यु कहाँ हुई थी यह सदेहास्पद है। ग्वालियर मे उस समय कछावो की दूसरी शाखा का अधिकार था। अतएव इसका वापिस जाना आदि बातें मन गडन्त प्रतीत होती हैं।

कांकिल

कर्नल टोड इसका जन्म अपने पिता की मृत्यु के बाद मानते है जो ठीक प्रतीत नही होता है। पृथ्वीराज विजय काव्य के अनुसार कांकिल का जन्म अपने पिता की मृत्यु के पूर्व निश्चित रूप से हो चुका था और धर्म शास्त्रानुसार वह अपने पिता की उत्तर क्रिया करने के उत्तराधिकारी भी हो चुका था।[32] मीणाओ के साथ इसका बडा सघर्ष हुआ। आमेर मे सूसावत मीणाओ का राज्य था। उस समय वहा "भत्तो" शासक था। कांकिल ने उस पर आक्रमण किया और आमेर जीत लिया और अपनी राजधानी वहां[33] स्थिर की। जयपुर राज्य की ख्यात के अनुसार मीणो ने कांकिल के राज्यगद्दी पर बैठते ही उसके राज्य की जमीन दबाली तथा जब बहुत ही अधिक दबाव पडने लगा तो उसने भी मीणों पर चढाई की और सघर्ष मे वह घायल हो गया। इस पर कछावो की इष्ट देवी जमवाय माता ने धेनु का रूप धारण कर अमृत रूपी दूध की वर्षा की जिससे कांकिल की मूर्च्छा हटी और माता ने वरदान दिया जिससे वह आमेर जीतने मे सफल हो गया। उसने मीणाओ से सधि करके १२ गाव आमेर के आसपास

३० जयपुर राज्य का इतिहास पृ ५
३१ शोध पत्रिका वर्ष १८ अक ३ पृ०
३२ उपरोक्त
३३ रावत स रस्वत–मीणा इतिहास पृ १४१

उनके अधिकार में रहने दिया और वहा का कर (टैक्स) आदि वसूल करने का अधिकार भी दे दिया। जयपुर राज्य की वशावलियो मे काकिल का शासन काल बहुत ही अल्पकालीन वर्णित है अर्थात् उसने २ वर्ष और ३ महिने ही राज्य किया था अतएव वह इतनी बडी विजय कर सका होगा अथवा नही इस सम्बन्ध मे कुछ विद्वान् सदेह भी करते हैं।

बुद्धिविलास को वशावली और टॉड द्वारा दी गई वशावली में भी अन्तर है। टॉड ने ढोला के खोह गाव पर अधिकार करने और माचो के सेरा मीणा राव नाटू को मारने का उल्लेख किया है। इसके बाद काकिल को दोनों ने ही शासक माना है। हूणदेव और काकिल के बीच मेहल नामक राजा को टाड ने और माना है। इसी प्रकार हूणदेव के बाद भी वे कुन्तल नामक एक राजा को और मानते हैं। बुद्धिविलास मे जानडदे और सुजान नामक राजाओ का उल्लेख है। इसमे कुन्तल को बाद मे माना है।

कॉकिल के उत्तराधिकारियो में हणूदेव, जानडदे, सुजान और पजनदेव गद्दी[34] पर बैठे ख्यातो मे पजनदेव को पृथ्वीराज चौहान का समकालीन वर्णित किया है।[35] यह पृथ्वीराज का सामन्त प्रतीत होता है। कहा जाता है कि उसने तराइन के युद्ध में भी भाग लिया था। इसके बाद क्रमशः मालसी, बिजलदेव, रामदेव,

---

३४ प्रथम राज काकिल कियौ मत्रि मवासे तोडि।
बचे मोमिया ते सबै मिले आप कर जोडि॥ ५८॥
तिनके पाट हणू नृपति भयौ मानौ हनुमान।
बबुरयौ जानडदे भए तिनके पाटि सुजान॥ ५६॥
पुनि पज्जवण भए नृपति महाबली सामत।
तिनको बल जस प्राकरम बहु कविजन बरनत॥ ६०॥
[बुद्धिविलास]

३५ एनाल्स एड एटोक्वेटीज आफ राजस्थान भाग २ २८२। इस ग्रथ में पजनदेव की बडी प्रशसा की है। यह वर्णन पृथ्वीराज रासो एव भाटो की ख्यातो पर आधारित है। इसमे सच्चाई कहा तक है यह कहना कठिन है।

विल्हण, कुतल, सुरसी, उदयकरण, नरसिंह, बणबीर, उद्धरण एव चन्द्रसेन नामक राजाओ ने राज्य किया था। इस राजाओ के विषय म कोई विशेष वृत्तान्त नही मिलता है। उदय करणके वशज बालोजी के पुत्र मोकल हुये। जिसके शेखा जी हुये। शेखावत राजपूत इमके वशज है। उद्धरण महाराणा कुम्भा का समकालिक राजा था और उसका सामन्त भी था। कछावों की ख्यातो मे उसका विवाह महाराणा कुम्भा की एक पुत्री इन्द्राहे से होना वर्णित है।[36] किन्तु मेवाड मे अबतक यही मान्यता है कि कुम्भा के एक ही पुत्री थी जिसका विवाह गिरनार के राजा मडलिक के साथ हुआ। सगीतराज मे राजा के परिवार का जहा वर्णन आता है वहा एक ही पुत्री का उल्लेख है। उस समय तक आम्बेर का राज्य अत्यन्त सीमित ही था। रणथमोर, बमाना, लाल्सोट चाटसू आदि का भूभाग कभी मुसलमानो की जागीर में था तो कभी मेवाड वालो के राज्य में। ग्वालियर का राजा डूगरसिंह तोमर भी अत्यन्त बलशाली था। टोंक के आसपास तक एवं बार इसने आक्रमण कर वि० स० १५१० के लगभग जीत लिया था, किन्तु कुम्भा ने इसे वापस हटा दिया। मालवे के सुल्तान मोहम्मद खिलजी ने भी कई बार ढूढाड और रणथमोर पर आक्रमण किया था। कुभलगढ प्रशस्ति के अनुसार महाराणा कुभा ने भी आम्बेर जीता था।[37] कुभा का इस विजय का उद्देश्य राज्य विस्तार करना ही रहा प्रतीत होता। क्यामखारासो से यह भी पता चलता है कि कायमखानियों ने आम्बेर जीत कर वहा के मीमियो को भगा दिया था।[38] समवत महाराणा कुभा ने कायमखानियो से आम्बर लेकर वापस उद्धरण को दिलाया हो। टोडा में भी उसने ऐसा ही किया था। वहा के शासक सोढदेव को मुसलमानों ने हटा दिया था जिसे कुभा ने वापस प्रतिष्ठापित किया था।

---

३६ हनुमान शर्मा—नाथावतों का इतिहास, पृ० ३२।

३७ महाराणाकुभा पृ. ६६

३८ उपरोक्त पृ. १००

आम्बेर के १५ वी और १६ वीं शताब्दी के शासकों के सबसे प्रबल प्रतिद्व दी टोडा के सोलंकी रहे प्रतीत होते हैं। चाटसू तक इनके राज्य का भूभाग रहा था। उस समय पूर्वी राजस्थान की स्थिति बडी विषम थी। सारा ढूढाड प्रदेश मुसलमानों के निरन्तर आक्रमणो से परेशान था। कुंभा भी इस क्षेत्र को मुसलमानो से पूर्ण मुक्ति नही दिला सका। टोक, नरेना, नैनवा, बयाना आदि मे कुभा के शासन-काल के अन्तिम दिनो की कई प्रशस्तिया मिली हैं जिनमे वहा के शासको के नाम कुभा के स्थान पर मुसलमानो के अंकित है।

महाराणा सागा के समय आम्बेर मे पृथ्वीराज कछावा का उल्लेख मिलता है।[39] पृथ्वीराज ने कछावा की १२ कोटरियें स्थापित की थी। इनके दो पुत्र पूरणमल और भीमदेव मे गृहयुद्ध हुआ। भीमदेव के बाद उसका लडका रत्नसिह कुछ समय पश्चात् शेरशाह के पास चला गया और इसकी सहायता से उसने वापस राज्य हस्तगत कर लिया। इसे भी उसके छोटे भाई आसकरण ने हटा दिया। जिसने केवल १५ दिन ही राज्य किया था। आसकरण को भारमल ने हटा दिया एव वि० स० १६०३—४ मे वह स्वय शासक बन गया।

इस प्रकार महाराणा सांगा के शासन काल से ही आम्बेर के इतिहास मे बडी उथल-पुथल आई प्रतीत होती है। सोलंकियो की एक शाखा के 'रामचन्द्र' के आधीन चाटसू और इसका भूभाग रहा था।

---

३९. पृथ्वीराज कछावा की एक ही प्रशस्ति अब तक मिली है जो इस प्रकार है। यह यशोनन्दजी दिगम्बर जैन मदिर जयपुर मे सग्रहित ज्ञानार्णव नामक ग्रथ की है। इसकी वे० स० २५ है.—
सवत् १५८१ वर्षे फाल्गुन सुदि १ बुधवारदिने श्री मूलसघे बलात्कारगणे सरस्वती गच्छे श्री कुन्दकुन्दाचार्यान्वये भट्टारक श्री पद्मनन्दि देवास्तत्पट्टे भट्टारक श्री-श्री शुभचन्द्रदेवास्तत् पट्टे जितेन्द्रिय भट्टारक श्री जिनचद्रदेवस्तत्पट्टे सकल विद्यानिधान यमस्वाध्याय ध्यान तत्पर सकल मुनिजनमध्य लब्धप्रतिष्ठ भट्टारक श्री प्रभाचन्द्रदेव। आबेरगढस्थाने। कूरमवशे महाराधिराज पृथ्वीराज राज्ये...'' (आमेर शास्त्र भण्डार के सौजन्य से प्राप्त)

यह महाराणा सागा का सामन्त था। इसने अपनी प्रशस्ति में सागा का नाम बडे गौरव से लिखाया है। पृथ्वीराज कछावा के साथ भी सागा के बड अच्छे सम्बन्ध रहे प्रतीत होते हैं। यह सागा का दामाद था। इसने ही सागा को खानवा के युद्ध से घायल स्थिति में उठाने मे सहायता की थी।

भारमल

इस शाखा का सबसे पहला उल्लेखनीय शासक भारमल था इसके शासन काल की लिखित कई ग्रथ प्रशस्तियाँ मिली है।[40] इसने ६ फरवरी सन् १५६२ ई० (स. १६१६) मे अपनी पुत्री जोधाबाई का विवाह अकबर के साथ करके कछावा इतिहास में एक

४० राजा भारमल के समय की कई प्रशस्तिया मिली है। उदाहरणार्थ पाटोदी जैन मदिर के ग्रथ स० २३६ की पुराणसार की वि०स० १६०६ आषाढसुदि १३, की छोटे दीवानजी जयपुर के मदिर के ग्रथ यशोधरचरित की प्रशस्ति (वे० स० २८८) वि स १६३० भादवा सुदी की एव आमेर शास्त्र भण्डार की नीचे लिखी कुछ प्रशस्तिया उल्लेखनीय हैं --

(१) *जिनदत्त चरितग्रथ की वि स १६११ चैत्र बुदि ११ की प्रशस्ति* (प्रतिलिपि स) "सवत् १६११ चैत्रबुदि ११ सोमबापरे श्रवणनक्षत्रे सिद्धिनामायोगे आम्रगढमहादुर्गे श्री नेमीश्वरचैत्यालये राज श्री भारमल राज्य प्रवर्तमाने ''''' "

(२) पाडवपुराण ग्रथ की प्रशस्ति प्रतिलिपि सवत् १६१६ "सवत् १६१६ वर्षे भाद्रपदमासे शुक्लपक्षे चतुर्दशीतिथौ बुद्धवासरे धनिष्टानक्षत्रे आमेरमहादुर्गे श्री नेमीनाथजिन चैत्यालये राजाधिराज भारमल राज्य प्रवर्तमाने श्री मूलसघे ......"

(३) हरिवशपुराण की प्रशस्ति वि० स० १६१६ (प्रतिलिपि सवत्) "सवत् १६१६ वर्षे आश्विनमासे प्रतिपत्तिथौ शुक्रवासरे शतभिखानक्षत्रे वृनिनामयोगे आबेरिमहादुर्गे श्री राजाधिराज भारमल राज्य प्रवर्तमाने........"

[प्रशस्ति सग्रह के पृ० १०४, १२६ एव ७७ क्रमशः द्रष्टव्य हैं।]

नये युग का सूत्रपात किया। यह बहुत दूरदर्शी था। मेवाड की, बहादुर-शाह के साथ निरन्तर लडते रहने से, शक्ति कमजोर होते देखकर उससे सहायता की अधिक आशा इसे नहीं रही थी। टॉड के अनुसार भारमल को मीणो का भय बहुत अधिक था। किन्तु स्थिति इससे भिन्न थी। वि० स० १६१५ मे भारमल के बडे भाई पूर्णमल का पुत्र सूजा मेवात के सरदार मिर्जा सर्फुद्दीन की सहायता से आम्बेर पर चढाई करने की तैयारी करने लगा। उसने वि० स० १६१८ में आमेर पर अधिकार भी कुछ समय के लिए कर लिया। भारमल वहा से भाग खडा हुआ। सर्फुद्दीन से मुक्ति पाने के लिये उसने अकबर के साथ सधि की थी।

भारमल की मीणाओ के साथ कई लडाइया हुई थी। उसने नहाण के मीणा राज्य को नष्ट किया था जो सभवत: इस समय एक उल्लेख-नीय राज्य रहा होगा।

इस प्रकार सोढा या दुर्लभराय से लेकर भारमल तक के राजाओ को मीणो से बराबर थोडा बहुत सघर्ष करना पडा और धीरे-धीरे उन्होंने यहा के स्थानीय मीणा शासको को हरा कर उनके राज्य पर कब्जा कर लिया।

. . ..

प्राचीन राजस्थान में पंचकुलों की व्यवस्था | १०

प्राचीन भारत में राजाओ को शासनयन्त्र सुचारु रूप से चलाने के लिये कई संस्थायें विद्यमान थीं। इनमें पचकुल सर्वाधिक उल्लेखनीय है। इसके सम्बन्ध में शिलालेखों और प्राचीन साहित्य में प्रचुर सामग्री उपलब्ध है।

ग्राम और महाजन सभा

प्राय सब ही मुख्य मुख्य नगरों में एक महाजन सभा[1] होती थी। ७वी शताब्दी से राजस्थान मे इसकी शक्ति बढती गई इसे कहीं-कही तो कर लगाने का अधिकार प्राप्त था और कहीं राजा की स्वीकृत लेकर यह कर लगाती थी। वि० स० ७०३ के मेवाड के शीलादित्य के लेख से प्रकट होता है कि श्रेष्ठि जेंतक ने देवी का मंदिर बनाने के पूर्व इस सभा से स्वीकृति प्राप्त[2] की थी। वि० स० १२०० के रायपाल[3] और १३५२ के[4] जूना के लेख में वर्णित किया गया है कि

१ अली चौहान डाइनेस्टीज पृ० १०३।

२ "एमिगुर्णांयंत तत्र तत्र [जें] तकमहतर श्री अरण्यवासिन्या देवकुल चक्रे महाजनादिष्ट " नागरी प्रचारिणी पत्रिका, भाग १, अ क ३, पृ० ३११-३१४, पंक्ति ८-९। अन्वेषण वर्ष १ भाग २।

३ मूल शिलालेख का कुछ अ श इस प्रकार है—

(१) ६०। सवत १२०० कार्तिक वदि ७ रवौ महाराजाधिराज श्री रायपालदेव राज्ये श्री न—

(२) डूलडागीकार्या रा० राजदेव ठकुराया श्री नड्डूला (च) य महाजने (नं) सर्वमिलित्वा श्री

(५) ' एततु महाजनेन वेतरेण धर्माय प्रदत्त ॥

इसी के एक अन्य लेख में "महाजन ग्रामीण। जनपदसमक्षाय धर्माय निमित्त विशोपकोपालिकद्वय दत्त" [रायपाल का लेख, वि स १२००]

४ "असौ लागा महाजनेन मानिता" [वि० स० १३५२ के बाडमेर (जूना) के सामलसिंह के लेख की अंतिम पंक्ति]।

राजा कर लगाने के पूर्व इस सस्था की स्वीकृति लेता था। वि० स० ११७२ के सेवाडी (गोड़वाड) के लेख से प्रतीत होता है कि सेनाधिकारी भी महाजन सभा का सम्मान करता[5] था। इस लेख मे यशोदेव के लिये यह बात बहुत ही गौरव के साथ लिखी गई है कि वह राजा और महाजनसभा द्वारा सम्मानित था।

ग्रामों की सभा को ग्राम सभा कहते थे।[6] इसको भी कई प्रकार के अधिकार प्राप्त थे।

पंचकुलों का गठन

ऐसा प्रतीत होता है कि उपरोक्त सस्थायें ग्राम की सार्वजनिक सस्थाओं की तरह थी, जिनमें सब ही लोग भाग ले सकते थे। इसका सीमित रूप पचकुल[7] था। इसमें गाव के सब नागरिक सदस्य नही हो सकते थे। सोमदेव कृत नीतिवाक्यामृत की टीका मे 'करण' शब्द को पचकुल का परिचायक बतलाकर इसमें ५ सदस्य माने हैं-(१) आदायक (२) निबधक, (३) प्रतिबधक, (४) विनिग्राहक और (५) राजाध्यक्ष।[8]

मध्यकालीन शिलालेखों में राजाओ के मुख्यामात्यो[9] के साथ "पचकुल प्रतिपत्तौ" लिखा मिलता है जिसका अर्थ कुछ विद्वान ऐसा लेते हैं कि जिन पचकुलो मे राज्य का मुख्यामात्य सदस्य होता था वे केन्द्रीय सरकार के अधिकार में थे और जिनमें वह सदस्य नही होता

---

५ इतश्चासीत् विशुद्धात्मा यशोदेवबलाधिपः।
राजा महाजनस्यापि समायामग्रणी स्थितः। ७॥ [वि स ११७२ का सेवाडी का लेख]।

६ अर्ली चोहान डाइनस्टोज, पृ. २०१। लेखपद्धति, पृ. १६।

७ वही, पृ २०४।

८ पोलिटिकल हिस्ट्री आफ नादर्न इंडिया फ्रौम जैन सोर्सेज पृ. ३६२। मेरी पुस्तक महाराणा कुंभा, पृ० १७६।

९ 'सवत् १३१० वर्षे मार्गपूर्णिमायामद्येह महाराजधिराज श्री विश्वलदेव कल्याण विजयराज्ये। तत्पादपद्मोपजीविनि महामात्य श्री नागड प्रभृति पञ्चकुलेन प्रतिपत्तौ ..... "हितोपदेश नामक ग्रन्थ (जैसलमेर भण्डार मे सगृहीत) की प्रशस्ति)।

(यहां न नयरजणाहि ट्ठिया कारणिय)। इन्होंने आधुनिक पुलिस की तरह पूरी जांच की और चोरी गये सामान की सूची से सामान मिलाया और कई प्रश्न किये। कुछ अंश इस प्रकार हैः–

"पुच्छिओ य तेहिं अहं। सत्थवाहपुत्ता, न ते किंचि केणइ एव जाइम रियं सववहारवहियाए उवणीय ति। तओ मए अमंडाय संकेण भणियं। "नहि नहि" ति। तेहिं भणियं। न तए कुच्छियम्ब राय सासणमिणं, ज ते गहमवलोइयव्वं ति। मए भणियं। न एत्थ अवसरो कोवस्स, पया परिरक्खणाए निमित्तं समारम्भो देवस्स। तओ पविट्ठा मे गेह सह नयर बुड्ढेहिं रायपुरिसा। अवलोइय च तेहिं नाणाभवार दविणजाय दिट्ठं च पयत्तट्ठाविय चन्दणनामंकियं हिरण्णवाणए नोलियं बाहि दगियं चन्दणं मञ्झरियस्स। अवलोइऊण संकुलामिव भणियं च तेण। अणुहरइ ताव एयं। न उण निस्संसयं वियाणामि त्ति। कारणेहिं भणियं वाणिहिं अवहरियनिवेणापत्तगं (अपहृत निवेदनापत्रक) कि तत्थ इम ईइसं अभिलिहियं न व त्ति। वाइयं पत्तगं दिट्ठमभिलिहियं। सज्जओ भूया नायरकारणिया भणियं च तेहिं। सत्थवाह पुत्त, कुओ तुह इमं-चिन्तिऊण भणियं मए "नियमंचेव एयं" ति। तेहिं भणियं "कह चन्दण नामंकियं?" मए भणियं "न याणामो कहिं च वासण परावत्तो भविस्सइ"। तेहिं भणियं "किं सोसियं किं वा हिरण्णजायमेत्थ ति" आदि-आदि। (दूसरा भव–समराइच्चकहा)

सवादलक्ष के राजा द्वारा गुजरात पर आक्रमण करने पर मूलराज ने पंचकुल को बुला कर सैनिक सहायता चाही थी।[13]

कई बार पंचकुल को सदस्य मंदिरों की व्यवस्था भी करते थे। सोमनाथ के मन्दिर की व्यवस्था कुमारपाल ने पंचकुल को सम्भलाई थी। राजस्थान में भी ऐसे सैकड़ों उदाहरण मौजूद हैं। ऐसे सदस्य गौष्ठिक कहलाते थे। वि० स० ११६२ के सेवाड़ी के लेख के अनुसार गौष्ठिकों को मन्दिरों की व्यवस्था सौंपी गई थी।[14] बृहत् कथा कोश

१३ चालुक्याज आफ गुजरात, पृ २४१। प्रबन्ध चिन्तामणि, पृ २६।
१४ चालुक्याज आफ गुजरात, पृ. ५४१। अरली चौहान डाइनेस्टीज, पृ. २०४-२०५। प्रबन्धचिन्तामणि, पृ. १२६-१२६। सेवाड़ी के

(कथा १२१ श्लोक २६–२७) मे भी चोरी हो जाने पर पचकुल के समक्ष न्याय के लिए उपस्थित होने का प्रसग आता है । मोह पराजय का वर्णन भी उल्लेखनीय है । इस में लिखा है कि कुबेरस्वामी नामक श्रेष्ठि के नि सतान मर जानेपर एक वणिक कुमारपाल के समक्ष उपस्थित होता है और निवेदन करता है कि हे राजन्, आप पचकुल को नियुक्त कीजिए, जो जाकर कुबेर स्वामी के धन पर अधिकार कर लेवे । लेखपद्धति मे आपसी झगडो के निपटारे के साथ साथ खेतो के बटवारे आदि में भी इसका सक्रिय भाग लेना उल्लिखित है [15] इसके अन्तर्गत माटक सस्था होती थी जो भाडे की देखभाल करती थी । वि० स० ६१८ के घटियाला के लेख म इसका उल्लेख है । इसी प्रकार का वर्णन रत्नपुर के वि० स० १३४८ के लेख मे भी ।

इन कार्यो के अतिरिक्त पचकुलो द्वारा शुल्क[16] या कर सग्रह करने की व्यवस्था का भी उल्लेख मिलता है । सग्रह का कार्य तो वस्तुत मडपिकाओ द्वारा ही होता था । प्रबन्धचिन्तामणि में इस सम्बन्ध मे कई सदम हैं । कान्यकुब्ज से कर सग्रह के लिए एक पचकुल की नियुक्ति करना वर्णित है । धार्मिक कर संग्रह की व्यवस्था भी इसके द्वारा करने का उल्लेख मिलता है । पचकुल के सदस्य मडपिका आय म से कुछ राशि दान के रूप मे दे सकते थे । उदाहरणार्थ वि स. १३३५ का हट्टू डी का लेख है[17] इसमे "द्रम्मा वर्षं वर्षं समी मडपिका पचकुलेन दातव्या : पालनीयश्च" वर्णित है । इसी प्रकार वि० स० १३३६ के इसी लेख के अ श मे भी ऐसा ही उल्लेख है ।

लेख मे "गोष्ठ्या मिलित्वा निषिधकृत" वर्णित है । (नाहर जैनलेख सग्रह भाग १, पृ २२७) । साडेराव के वि. स १२२६ कार्तिक वदि २ के लेख म भी इसी प्रकार का उल्लेख है"

१५ लखपद्धति (गायकवाड सिरीज), पृ ८, ६, १६ और ३४ द्रष्टव्य हैं ।

१६ मेरी पुस्तक-महाराणा कुम्भा, पृ. १७६ ।

१७ प्राचीन जैन लेख सग्रह, ले. स ३१६ ।

पचकुल राज्य मे भूमिदान आदि देने समय साक्षी का कार्य करता था। मदिरो के लेखो से प्रकट होता है कि कई बार दानदाता स्थानीय अधिकारियो और पचकुल को सम्बोधित करके दान देते थे। भीनमाल के वि० स० १३३३ के लेख में भी ऐसा ही उल्लेख है।

इस प्रकार पूर्व मध्यकाल मे राजस्थान मे पचकुलो को स्थानीय व्यवस्था सम्बन्धी विस्तृत अधिकार प्राप्त थे। गोडवाड के लेखो मे इनके कार्य व्यापार की विस्तृत जानकारी प्राप्त होती है।

---

१८ स्वति स० १३३३ वर्षे। आश्विन सुदि १४ सोमे। अद्येह श्री श्रीमाले महाराज कुल श्री चाचिगदेव कल्याण विजयराज्ये तन्नि-युक्त मह० गजसिह प्रमृति पचकुल प्रतिपत्तौ श्री श्रीमाल देश वहि-काधिकृतेन नैगमान्वय कायस्थ महत्तम सुभटेन तथा चेट्टक कर्मसिहेन स्वश्रेयसे आश्वीन मासीय यात्रा महोत्सवे आश्विन सुदि १४ चतुर्दशीदिने श्री महावीरदेवाय प्रतिवर्ष पचोपचार निमित श्री करणीय पच–सेलहथडामि नरपाल च भक्तिपूर्वक सबोध्य ······ वर्तमान पचकुलेन वर्तमान सेलहथेन देवदायकृतमिद स्वश्रेयसे—"

मान मोरी | ११

दक्षिणी पूर्वी राजस्थान और मालवे के कुछ भाग पर ७ वी शताब्दी के प्रारम्भ से मौर्यों का अधिकार हो गया प्रतीत होता है। इन मौर्यों मे चित्राङ्गद[1] मोरी को चित्तौड दुर्ग को बनाने वाला वर्णित किया गया है। कर्नल टॉड को प्राप्त एक लेख[2] में महेश्वर भीम भोज और मान नामक ४ राजाओं का उल्लेख है। महेश्वर को शत्रु का विनाश करने वाला वर्णित किया है। भीम को अवन्तिपुरी का शासक बतलाया गया है। इसके लिए यह भी लिखा गया है कि वह कारागृह मे पडे शत्रु की उन चन्द्रवदनियो के हृदय मे भी बसता था,

---

१—मध्ये दशपुरे स्थित्वा चित्रकूटनग गत ।
शान्तिचैत्ये श्वेतभिक्षो रामचन्द्रस्य सन्निधौ ।। ४३ ।।
जाते चित्र चित्रकूटदुर्गोत्पतिमपृच्छयत ।
रामाऽप्यूचऽत्र श्रीशत्रयेऽभून्मध्यमापुरी ।। ४४ ।।
तत्र चित्राङ्गदो राजासोऽन्यदाभि नवैं फलै ।।

"कुमारपालचरितादि सग्रहम्"

"तत्र चित्राङ्गदश्चक्रे दुर्ग चित्रनगोपरि" (कुमारपाल प्रबन्ध)
कुभलगढ प्रशस्ति के श्लोक स० १०२ से १ ५ में चित्राग तालाब का वर्णन है वह भी इसी का बनवाया हुआ था। राजरूपक (१।११६) में भी चित्राङ्गद मोरी द्वारा चित्तौड दुर्ग बनाने का उल्लेख है जो मोरी बशी था। चित्रकूट प्रबन्ध भी इस सम्बन्ध में द्रष्टव्य है।

चित्रकोट चित्राङ्गदे मोरी कुल महिपाल ।
गढमण्डयौ अकलोकि गिरि देवसी दाढाल ।।

२—वीर विनोद भाग १ के शेष सग्रह मे दिया गया हिन्दी अनुवाद लेख।

जिनके ओष्ठों पर उनके पतियों के दन्तक्षत अब भी बने हुए थे। भोज ने युद्ध में शत्रुहस्ती का मस्तक विदीर्ण किया था। मान इसका पुत्र था। श्री रत्नचन्द्र जी अग्रवाल ने हाल ही में चित्तौड से एक और लेख प्रकाशित[3] कराया है। इसमें भी राजा मान भग का उल्लेख है, जिसे "ग्रहपति जाति" का वर्णित किया है।

इन मौर्यों का समय बड़ा संघर्षमय रहा है। ५ वीं शताब्दी के आस-पास से ही चित्तौड और इसके आस-पास का क्षेत्र मालवा के शासकों से प्रभावित था। छोटी सादडी के वि स. ५४७ माघ सुदि १० के एक लेख में गोरो[4] वशी शासकों का उल्लेख है। ये समवतः मंदसौर के औलिकरों के आधीन थे। स्कन्दगुप्त की मृत्यु के पश्चात् की विषम स्थिति का लाभ उठाकर ये औलिकर मेवाड के दक्षिणी भाग तक फैल गये थे। इनमें आदित्यवर्द्धन (वि. स, ५४०) द्रव्यवर्द्धन (५६१ वि०) यशोवर्द्धन (५८६ वि०) आदि[5] शासक हुये थे। इनमें यशोधर्मा बडा प्रतापी था। इसने स्वेच्छा से गुप्त सम्राट का नाम भी अपने लेख से हटा दिया था। इसकी ओर से अभयदत्त पश्चिमी प्रान्तों का प्रशासक था। हाल ही में प्राप्त छठी शताब्दी के एक लेख में वराह के पौत्र और विष्णुदत्त के पुत्र का

३—राजस्थान भारती में हाल ही मे यह प्रकाशित हुआ है। इसमें इसके द्वारा ऊंचे मन्दिर, वापी, प्रपा आदि बनाने का उल्लेख है
श्रीमानमगनृपः। ग्रहपति जातिरासीन्गु—
पृथ्वी हृपितमतधरो य हितैर्नक्षिने दत्त प—
सि स्तुतानेव यस्य विमकतयः प्रकटैय स्यक्तैर्गुण्ड—
वदुक दिव्यः क्षितो विश्रुतः। येमास्याक्षयवशो यत्र——
न्य वारित जलाकस्य प्रपा शीतल वाप्यः करय-—
यस्या-मिपृष्ठाः कीर्तिपु चाविकीर्त्तन शतग्यस्की—

४—एपिग्राफिआ इंडिका Vol XXX अक्टूबर १९५३ पृ० १२२

५—इंडियन हिस्टोरिकल क्वार्टरली Vol XXXIII No, ४ दिसम्बर १९५७ प० ३१६ वीर भूमि चित्तौड पृ........

उल्लेख है जो दशपुर और माध्यमिका का प्रशासक[5A] था। डा० दशरथ शर्मा के अनुसार वराह[6] के पुत्र और विष्णुदत्त के उल्लेखित पुत्र को पहले प्रशासक का पद मिला था और इसके पश्चात् अभयदत्त को। दोनों एक ही परिवार से सम्बन्धित थे। इनके राज्य को मेदों के सामूहिक आक्रमण से बडी क्षति पहुँची। मेद लोग मेवाड में फैल गये और इनके दीर्घ काल तक यहां निवास करने के कारण इस प्रदेश का नाम भी मेवाड पडा था। मौर्यों ने इसी संधि काल मे मालवा के कुछ भाग दक्षिणी पूर्वी राजस्थान और चित्तौड पर अधिकार कर लिया।

'समराइच्च कहा' का एक प्रसंग

समराइच्च कहा के लेखक हरिभद्र सूरि थे। ये चितौड के रहने वाले थे। इन्होने धूर्त्ताख्यान की पुष्पिका मे स्पष्टतः उक्त ग्रन्थ को चित्तौड में[7] पूर्ण करना वर्णित किया है। प्रभावक चरित के अनुसार ये ब्राह्मण परिवार में उत्पन्न हुए थे और राजा जितारि के पुरोहित थे। जितारि किस का नाम था यह स्पष्ट नहीं है। यह उपनाम प्रतीत होता है।

प्राकृत की कथा 'समराइच्च कहा' के एक प्रसग में राजा मान भग के वसनपुर के आसपास के भाग को जीतने का उल्लेख है। प्रसग इस प्रकार हैं कि राजा गुणसेन अग्निशर्मा नामक साधु को भोजन के लिए आमन्त्रित करता है। यह साधु एक मास का उपवास करता है एव पारण के दिन जिस घर मे पहले प्रवेश के समय जो भी अन्न मिल जावे, उस तक ही सीमित रहने का प्रण किया हुआ था। वह

५ A—इपिग्राफिआ इंडिका Vol XXXIV Part II पृ० ५५–५७

६—रिसर्चर वर्ष ५-६ पृ० ७–८

७—चित्तउडदुग्गसिरिसठिएहिं सम्मत्तरायरत्तेहिं।
सुचरिअसमूहसहिआ कहिआ एसा कहा सुवरा ॥१२३॥
सम्मत्तसुद्धिहेउ चरिअं हरिभद्दसूरिणा रइअं।
णिसुणतकहतारण 'भवविरह'' कुणउ भव्वाणं ॥१२४॥
धूर्ताख्यान (पृ० २३)

साधु गुणसेन से, जब वह राजकुमार था, तंग होकर साधु बना था। राजा के निमन्त्रण पर वह राजा के घर पर पारणे के दिन जाता है किन्तु भाग्य से राजा के सिर में भारी दर्द रहता है, अतएव उसके पारणे की व्यवस्था नहीं होसकी। अगले महिने भी अचानक राजा मान के आक्रमण कर देने से व्यवस्था नहीं होसकी। मान के आक्रमण का का उल्लेख इस प्रकार है —

'एत्थन्तरम्मि य सपत्ते पारणगदिवसे निवेदियं से रन्नो विवसेत्रा-गएहि नियपुरिसेहिं । जहा, महाराय अइसविसमपरक्कमगव्विय विसमदोणीमुहप्पविट्ठ अकयपरिवत्तणोवाय अप्प मत्तेण माणहन्न नरवइणा इहरहा विसमविणासमवलोइऊण वीरचरियमवलम्बिय बीभत्सयुत्तेसु नरिन्दपाइक्केसु जाए अट्ठरत्तसमए अत्थमिए रयणि बहुपियमे तेल्लोक्कमङ्गलपईवे मियङ्के सयलबलसहिएणमवक्खन्द दारुण अइपमत्ता ते विणिज्जिय सेन्न" (पढमो भवो)

यह आक्रमण वसतपुर के आस पास के भू भाग पर किया गया था। वहा के राजा गुणसेन द्वारा प्रत्याक्रमण की तैयारी का भी सुन्दर चित्रण खीचा[8] गया है। इसी ग्रन्थ मे आगे चलकर राजा जितारि या जित-शत्रु। भी उल्लेख किया है। राजा गुणसेन क जब पुत्र उत्पन्न होता है तब वह कहता है कि उत्सव उसी प्रकार सम्पन्न[9] किया जावे, जैसाकि

८—तओ राइणा एवं सूटूसह वयणं मायण्णिऊण बोवाणलजलियर सलोयणेण विसमफुरियाहरेण निद्दयकरामिहयधरणिवट्टेण अमरिसवसपरिवखलन्तवयणेण समाणत्तो परियणो । जहा, देह तुरियं पयाणयपडह सज्जेह दुज्जय करिबल पल्लाणेह दप्पु द्धुर आससाहण संजत्तेह धयमालोवसोहिय सन्दणनिवह पयट्टावेह नाणापहरणसालिण पाइक्कसेन्नति"

(पढमो भवो)

९—जहा, भोयावेह कालघण्टा पओएण नगरज्जे सव्वबन्धणाणि दवावेह घोसणापुव्वय अणवेक्खियाणरुवं महादाणं, विसज्जावेह जियसत्तुप्पमुहाण नरवईणं ममपुत्त जम्म पउत्ति—

(पढमो भवो)

राजा जितारि ने किया था। जैन प्रबन्धों मे जैसाकि ऊपर उल्लेखित है हरिभद्र सूरि को इस राजा का पुरोहित वर्णित किया गया है। ये दोनो प्रसग स्वेच्छा से लेखक ने जोडे हैं। मूल कथा से कोई विशेष सम्बन्ध नही है।

हरिभद्र सूरि मान मोरी के समसामयिक लेखक थे और चित्तौड के रहने वाले थे। यद्यपि इनके आविर्भाव काल के सम्बन्ध मे मतैक्यता नही है किन्तु अब[10] सब लेखक इन्हें वि० स० ७५७ से ८२७ के मध्य हुआ मानते हैं। मेरुतु ग ने विचार श्रेणी मे इनका निधन काल वि० सं० ५८५ बतलाया है। कुवलयमाला के कर्त्ता ने वि० स० ८३५ मे अपना ग्र थ पूर्ण किया था। इसमे हरिभद्र सूरि का उल्लेख किया है। सिद्धर्षि ने वि० स० ९६२ मे "उपमिति भव प्रपच कथा" की प्रशस्ति मे हरिभद्र सूरि को अपना धर्म बोध गुरु कहा है और यह भी लिखा है कि मानो ललित विस्तरा ग्र थ उसके लिये ही लिखा था। सिद्धर्षि के इस प्रकार उल्लेख कर देने से समय निर्धारण मे कुछ असंगति प्रतीत होती है। इसे जिनविजयजी ने अपने निबन्ध 'हरिभद्र सूरि का समय निर्णय' मे अधिक स्पष्ट किया है। इन्होने कई प्रमाणो से हरिभद्र सूरि को वि० सं० ७५७ से ८२७ के मध्य हुआ माना हैं। मान मोरी के शिलालेख वि० स० ७७० के प्राप्त हुये है। अतएव उक्त समराइच्च कहा का प्रसग भी ऐतिहासिक माना जा सकता है। मेवाड की ख्यातों मे भी मान मोरी को कई प्रदेशों को जीतने वाला लिखा है। ये ख्यातें

१०– हरिभद्र सूरि के काल निर्णय के सम्बन्ध मे निम्नांकित सामग्री पठनीय है'–

पूना ओरियन्टल कान्फ्रेंस और जैन साहित्य सशोधक भाग १ अ क १ में प्रकाशित जिनविजयजी का निबन्ध/श्री कल्याण विजय जी–धर्म सग्रहणी की भूमिका/एच० जेकब–समराइच्चकहा (Bib-In 1926) की भूमिका/उपमितिभव प्रपच कथा (B. I) की भूमिका/वि बी अभ्यंकर की 'विशतिविंशिका' की भूमिका/ भद्रेश्वर की कथावली (अद्यावधि अमुद्रित)/प्रभावक चरित राजशेखर का प्रबन्ध आदि आदि

बहुत बाद की है और ऐतिहासिक दृष्टि से इनका महत्व नगण्य सा है। फिर भी परम्परा से चली आई धारणा की अवश्य पुष्टि होती है कि मान मोरी एक प्रबल शासक था। समराइच्च वहा के उक्त प्रसग मे जिस प्रकार सैनिक तैयारी का वर्णन किया गया है, इससे भी इसकी पुष्टि होती है।

गुहिल राजाओं से सघर्ष

मान मोरी का बाप्पारावल के साथ युद्ध करना और उससे चित्तौड लेना प्राय वर्णित किया है। बाप्पारावल की तिथि वि. स. ८१० श्री ओझाजी ने मानी है। यह एक लिंग माहात्म्य [11A] नामक ग्रन्थ के आधार पर स्थिर की है जो महाराणा कुभा के समय सकलित किया गया था। बाप्पारावल की तिथि के सम्बन्ध में १३ वी शताब्दी से ही मेवाड के राजकीय शिलालेखों में भ्राति मिलती है। राणकपुर के लेख में भी उसे गुहिल का पिता मान लिया है। कुभलगढ प्रशस्ति मे जो कई प्रशस्तियों को देखकर के अत्यन्त शोध पूर्वक बनाई गई थी, बाप्पा के समय निर्धारण में भूल की है। चित्तौड से वि० स० ८११ का एक लघुलेख [11B] कुकडेश्वर का कर्नल टॉड को मिला था, जो अब प्राप्य नहीं है। जब वि० स० ८११ में चित्तौड मे राजा कुकडेश्वर शासक था,

---

११–A अकाशचद्रदिग्गजसरुये सवत्सरो बभूवाद्य
श्री एकलिंगशङ्कुरलब्धवरो बप्पभूपाल
एकलिंग माहात्म्य (हस्त० १४७७ सरस्वती भवन उदयपुर)
एक अन्य प्रति में जो अपेक्षाकृत बाद की रचना है, उक्त तिथि में बाप्पारावल का राज्य छोडना वर्णित किया है।
राज्य दत्वा स्वपुत्राय आथर्वणमुपागते।
खचद्र दिग्गजाख्ये च वर्षे नागह्रदे मुने ॥ २/२१ ॥
(उदयपुर राज्य का इतिहास भाग १ से उद्धृत)

११B– आर्कियोलोजिकल सर्वे रिपोर्ट आफ इडिया सन् १८७२-७३ पृ० ११३ एनल्स एण्ड एन्टिक्विटीज आफ राजस्थान Vol I, पृ० 106.

तब किस प्रकार बाप्पारावल वहां शासक हो सकता है ? यह विचारणीय है। बीकानेर के अनूप संस्कृत पुस्तकालय में ओझाजी के अनुसार एक गुटका संग्रहित है, जिसमें बाप्पारावल[12] की तिथि वि० सं० ८२० दी है। मेवाड़ के गुहिल राजाओं में जब तक बाप्पारावल की तिथि निश्चित नहीं होती है, तब तक मान मोरी के मध्य उसके संघर्ष की कथा पर विचार करना[13] संभावित नहीं हो सकता। मान मोरी (७७० वि०) और बाप्पारावल के मध्य एक राजा और होना चाहिए। इस में कोटा के कनसवा के लेख वि० सं० ७९५ में वर्णित धवल अथवा कुकड़ेश्वर को रखा जा सकता है। धवल के लिये लेख में 'भूपेपु भुञ्जत्सु सकलां महीम्' वर्णित किया गया है एवं वह मौर्य वंशी भी था। इस सम्बन्ध में और शोध की आवश्यकता है। ऐसा प्रतीत होता है कि अरब आक्रमण कारी जुनेद के आक्रमण से मौर्यों को बड़ी क्षति पहुंची और इसी के फलस्वरूप बाप्पा ने शक्ति एकत्रित की है।

निर्माण कार्य

मौर्यों द्वारा चित्तौड़ और इसके आसपास कराया गया निर्माण कार्य उल्लेखनीय है। ऊपर उल्लेखित किया जा चुका है कि चित्तौड़ दुर्ग को प्रथम बार सामरिक महत्व का इन मौर्यों ने बनाया था। चित्रांगद द्वारा और भी कई तालाब बनाने का यत्र तत्र उल्लेख मिलता है। मान मोरी के वि० ७७० के टॉड द्वारा प्रकाशित लेख में मानसरोवर के निर्माण का उल्लेख[14A] है। इस तालाब के सिवाय और भी कई एक वारीकूप गगन चुम्बी प्रासाद बनाने का उल्लेख शंकरघट्टा के वि० सं०

१२– बापाभिध समभवद् वसुधाधिपोसौ।
पञ्चाष्टपट परिमितेथ स (श) केन्द्रकालौ (ले)
उदयपुर राज्य का इतिहास भाग १ पृ० १०८

१३– तत स निर्जित्य नृप तु मोरी जातीय भूपमनुराज सज्ञम्।
गृहीतवांश्चित्रवतश्चित्रकूट चक्रेत्र नृप चक्रवर्ती ॥ १८ ॥
राजप्रशस्ति सर्ग ३

(१४A) एनल्स एण्ड एन्टिक्विटीज आफ राजस्थान Vol- I. पृष्ट 652.

७७० के लेख में है। श्री रत्नचन्द्र जी अग्रवाल की धारणा है कि चित्तौड का सूर्य मंदिर भी इस मान मोरी ने ही बनाया[१४a] था। यह राजस्थान की पूर्व मध्ययुगीन स्थापत्यकला की अनुपम निधि है। इस प्रकार राजा मान मोरी एक प्रबल शासक रहा होगा।

राजा मान मोरी और बाप्पारावल के संघर्ष के सम्बन्ध में और शोध किया जाय तो पूर्व मध्यकालीन राजस्थान के इतिहास में एक नई सामग्री प्राप्त हो सकती है। इसी समय प्रतिहार राजा शक्ति बढ़ाते जा रहे थे और कुछ ही समय पश्चात् शक सं० ७०५ (वि० ८४०) में इन्होने उज्जैन आदि भाग जीत लिया था,

क्या गुहिल शासक ने प्रतिहारो की सहायता से चित्तौड जीता था ? इस सम्बन्ध में कोई निश्चय सामग्री उपलब्ध नहीं है। मौर्यों के साथ प्रतिहारो का संघर्ष सम्भावित है। इसी समय सिंध पर अरबो का आक्रमण हुआ था। श्री पृथ्वीसिंह महता के[१५] अनुसार दाहिर के बेटो ने संभवतः चित्तौड के मौर्यों की मदद से अरबो को सिंध के एक बडे भाग से निकाल दिया था। इन संघर्षों के कारण मौर्यों की शक्ति संभवतः कमजोर हो गई हो और गुहिल शासको ने इस का लाभ उठा कर चित्तौड पर अधिकार कर लिया था।

इस समय में चित्तौड में विशाल साहित्य का सर्जन हुआ था जिसका उल्लेख मैंने "वीरभूमि चित्तौड में विस्तार से कर दिया है। विषय की स्पष्टता हेतु मान मोरी का वंश क्रम इस प्रकार प्रस्तुत किया जा सकता है.—

चित्रांगद मोरी {डी० सी० सरकार ने इसे मथुरा शाखा के मौर्यों से सम्बंधित माना है जो गलत प्रतीत होता है।]
|
महेश्वर
|
भीम [झालरापाटन का दुर्गगण इसका सामन्त रहा प्रतीत

१४B– वरदा वर्ष ९ अंक ४ पृ० ७
१५– हमारा राजस्थान पृ० ५५

होता है ।]

|

भोज [इन्द्रगढ़ के लेख में वर्णित नन्न राठोड या इसके पिता

| ने इसे मालवा से निष्कासित कर दिया था ।]

मान [वि० सं० ७७०]

|

धवल [वि० स० ७६५ श्री डी० सी० सरकार ने इसे मथुरा
शाखा से सम्बन्धित माना है, जिसकी कोई पुष्टि नही
होती है ।]

|

कुकडेश्वर (वि० स० ८११)

[वरद वर्ष १० अंक २ में प्रकाशित]

८ वीं शताब्दी में विवाह-समारोह | १२

विवाह एक मांगलिक पक्ष है। राजस्थान में ८ वीं शताब्दी में सम्पन्न विवाहों का सविस्तार उल्लेख कुवलयमाला और समराइच्चकहा में मिलता है। प्रस्तुत निबंध में मुख्यतः इन्हीं दो ग्रन्थों के आधार पर सम्बन्धित विषय पर संक्षेप में प्रकाश डाला जा रहा है।

सगाई एवं मुहूर्त : समराइच्चकहा के अनुसार विवाह के पूर्व 'सगाई' की जाती थी तथा उस अवसर पर बड़ा महोत्सव किया जाता था। विवाह का दिन ज्योतिषी निश्चित करते थे। ज्योतिषियों का उल्लेख कुवलयमाला और हर्षचरित में भी है। कुवलयमाला में कहा गया है कि राजा ने ज्योतिषियों को बुलाकर कहा 'कृपा कर कुवलयमाला के लग्न समय की गणना करो।' इस पर ज्योतिषियों ने जन्म नक्षत्र के अनुसार शुभाशुभ फल बतलाकर विवाह का दिन और समय निश्चित किया। समराइच्चकहा में लिखा है कि विवाह का दिन निश्चित करने के बाद प्रचुर दान-पुण्य किया गया।[1]

विवाह की तैयारियाँ : विवाह की तैयारियों का अधिक विस्तार से वर्णन समसामयिक कृति हर्षचरित में मिलता है। इसमें उल्लेख है कि विवाह के दिन ज्यों-ज्यों नजदीक आने लगे, राजकुल की ओर से सब लोगों की खातिर के लिये ताम्बूल, पटवास और फूल बांटे जाने लगे [उद्दामदीयमानताम्बूलपटवासकुसुमप्रसाधितसकललोक]। चतुर शिल्पी बुलवाये गये। गांवों से तरह-तरह के सामान इकट्ठे किये जाने लगे। कुवलयमाला में भी इसी तरह का उल्लेख है। इसमें अनाज

१ कुवलयमाला, सिंघी जैन सिरीज, पृ० १७०। समराइच्चकहा, दूसरा भव, गाथा १२६ के बाद का गद्य-भाग।

एकत्रित करने तथा भोजन के लिये नाना प्रकार की सामग्री जुटाने की बात भी कही गई है [अविय मुसुमूरिज्जन्ति धण्णाइं पुणिज्जति सहिए समियाओ, सवकारिज्जति खण्ड-खज्जाइं, उयाविखज्जति भक्खाइं, आहारिज्जन्ति कुलालइं............] ।

दूर-सुदूर के सम्बन्धियों को निमन्त्रण दियागया । उनके ठहरने के लिए विशेष व्यवस्था की जाती थी । हर्षचरित और कुवलयमाला में इसका सुन्दर उल्लेख है । [2] भवनों में सफेदी कराई गई [धवलिज्जन्ति भित्तीओ] । हर्षचरित मे सफेदी करने वालों का सुन्दर चित्रण खीचा गया है । वर्णन है कि पोतने वाले कारीगर हाथ में कूंची लिये, कधे पर चूने की हाडी लटकाए, निसैनी पर चढ कर, राजमहल के पोरी, शिखर आदि पर सफेदी कर रहे थे [उत्कूर्चककरैश्च सुधाक्र्परस्कन्धैः अधिरोहिणीसमारूढ़ैः धवैः धवलीक्रियमाणप्रसादप्रतोलीप्रकारशिखर ...] कुवलयमाला में चादी की चीजें बनवाने का उल्लेख है, जबकि हर्षचरित में स्वर्ण आभूषणों के बनवाने का ।

वस्त्रो के सम्बन्ध में हर्षचरित अत्यन्त विस्तार से कहता है । कुवलयमाला में केवल उल्लेख है—'फलिज्जति पडीओ, सीविज्जति कुप्पासया । ,,

विवाह के दिन वर-वधू को विशिष्ट वस्त्र पहनाये जाते थे । समराइच्चकहा में राजकुमार सिंह और कुसुमावली के विवाह प्रसग में इसे विस्तारपूर्वक बताया गया है । वधू को भली भाँति सजाया जाता था । उसे ऊंची चौकी पर बिठाया जाता था । नाई उसके पांव के नाखून साफ करता था । वह लाल रग का वस्त्र पहने रहती थी । नाना प्रकार के सुगंधित द्रव्यो से उस की देह पर लेप किया जाता था । तदनन्तर सधवा स्त्रिया उसे स्नान कराती थी । तरह-तरह के उसे आभूषण पहनाये जाते थे । [3] कुवलयमाला के अनुसार भी इसी

२. कु० मा०, पृ०१७० । ह० च०, चतुर्थ उच्छ्वास, राजश्री-विवाह-प्रसंग । वासुदेवशरण अग्रवाल; हर्षचरित एक सास्कृतिक अध्ययन, पृ० ७०-८१ ।

३. समराइच्च कहा, दूसरा भव, गाथा १०३-१५४ ।

जैन ग्रन्थों में राष्ट्रकूटों का इतिहास

१३

दक्षिण भारत के राष्ट्रकूट राजाओं के गौरवपूर्ण शासनकाल मे जैनधर्म की अभूतपूर्व उन्नति हुई। कई आचार्यों ने उस समय कई महत्वपूर्ण ग्रन्थो की रचना की जिनमें समसामयिक भारत के इतिहास के लिये उल्लेखनीय सामग्री मिलती है।

राष्ट्रकूट राज्य की नींव गोविन्दराज प्रथम ने चालुक्य राजाओं को जीत कर डाली थी। इस का पुत्र दन्तिदुर्ग बड़ा उल्लेखनीय हुआ है। इसका उपनाम साहसतुंग भी था। जैनदर्शन के महान विद्वान् भट्ट अकलंक इसके समय मे हुए थे। इनके द्वारा विरचित ग्रन्थो मे लघीयस्त्रय, तत्त्वार्थराज वार्तिक, अष्टशती, सिद्धिविनिश्चय और प्रमाण संग्रह आदि बड़े प्रसिद्ध हैं। इन के ग्रन्थो में यद्यपि समसामयिक राजाओ का उल्लेख नहीं है किन्तु कथाकोश नामक ग्रन्थ में इनकी संक्षेप में जीवनी है। इसमे इनके पिता का नाम पुरुषोत्तम बतलाया है जिन्हें राजा शुभतुंग का मन्त्री वर्णित किया गया है।[1] यह राजा शुभतुंग निसंदेह कृष्णराज प्रथम है और इसी आधार पर श्री के० बी० पाठक ने इनको कृष्णराज प्रथम का समसामयिक माना है। इसके विपरीत श्रवणबेलगोला की मल्लिषेण प्रशस्ति में इन्होंने राजा साहसतुंग की सभा मे बड़े गौरव के साथ यह कहा था कि हे राजा! पृथ्वी पर तेरे समान तो प्रतापी

---

१. जनरल बम्बई ब्रांच रायल एशियाटिक सोसायटी भाग १८ पृष्ठ० २२६ कथा कोष मे इस प्रकार उल्लेख है—
अत्रैव भवति मान्यखेटाख्य नगरे वरे।
राजा भूच्छुभतुंगाख्यस्तन्मन्त्री पुरुषोत्तमः।
इंडियन एंटिक्वेरी भाग XII पृष्ठ २१५

राजा नही है पर मेरे समान बुद्धिमान भी नही [2] है। "अकलंक स्तोत्र,, नामक एक अन्य ग्रन्थ में कुछ पद ऐसे भी हैं जिन्हे किसी राजा की सभा मे कहा जाना वर्णित है लेकिन इसमें कई स्थालों पर "देवोऽकलङ्ककलौ,, पद आया है। अतएव प्रतीत होता है कि ग्रन्थ किसी अन्य के द्वारा लिखा हुआ [3] है। मल्लिषेण प्रशस्ति के उक्त श्लोक सम्भवत. जनश्रुति के आधार पर लिखे गये हैं जो सही प्रतीत होते हैं।

श्री वीरसेनाचार्य भी प्रसिद्ध दर्शन शास्त्री थे। ये अमोघवर्ष के शासनकाल तक जीवित थे। इनके द्वारा विरचित ग्रन्थो मे धवला और जयधवला टीकाएँ बडी प्रसिद्ध हैं। धवला टीका के हिन्दी सम्पादक डा० हीरालाल जी ने इसे कार्तिक शुक्ला १३ शक सवत् ७३८ मे पूर्ण होना वर्णित किया है और लिखा है कि जिस समय राष्ट्रकूट राजा जगतुंग राज्य त्याग चुके थे और राजाधिराज बोद्दणराय शासक थे इसे पूर्ण किया।[4] श्री ज्योतिप्रसाद जी जैन ने इसे अस्वीकृत कर के लिखा है कि प्रशस्ति मे स्पष्टत "विक्कमरायम्हि,, पाठ है अतएव यह विक्रम सवत् होना चाहिए। अतएव उन्होने यह तिथि ८३८ विक्रमी दी है। भाग्य से ज्योतिष के अनुसार दोनों ही तिथियों की गणना लगभग एक सी है। लेकिन राजनैतिक स्थिति पर विचार करे तो प्रकट होगा कि यह

---

२. राजन् साहसतुंग एसांत बहव श्वेतातपत्रानृपाः।
किन्तु त्वत्सदृशा रणे विजयिनस्त्यागोन्नता दुर्लभाः।
तद्वत्सन्ति बुधा न सन्ति कवयो वादीश्वरा वाग्मिनो।
नानशास्त्रविचारचातुरधियः काले कलौमद्विधाः।
जैन लेख सग्रह भाग १ लेख ५४

३. न्याय कुमुद चन्द्र की भूमिका पृ० ५५

४ अट्ठतीसम्हि सासिय विक्कमरायम्हि एसु सगरमो।
पासे सुतेरसीए भाव-विलग्गे धवलपक्खे ॥ ६ ॥
जगतुंगदेव रज्जे रियम्हि कुंभम्हि राहुणा कोणे।
सूरेतुलाए सते गुरुम्हि कुल विल्लए होते ॥ ७ ॥
बोद्दणराय रिंदे णरिंद चूडामणिम्हि भुंजते ॥ ६ ॥
धवला १,१,१, प्रस्ता० ४४-४५

तिथि विक्रमी के स्थान पर शक सवत् ही होना चाहिये।[5] इसका मुख्य आधार यह है कि विक्रमी सवत नाम का प्रचलन इतना प्राचीन नही है। इसके पूर्व इस सवत् का नाम कृत और मालव सवत मिलता है। विक्रमी सवत् का प्राचीनतम लेख ८९८ का धोलपुर का चड महासेन का अब तक मिला है। किन्तु इसका प्रचलन उत्तरी भारत मे अधिक रहा है।[6] गुजरात और दक्षिण भारत मे उस समय लिखे गए ताम्रपत्रो मे शक सवत् या वल्लभी सवत् मिलता है। इसमें उल्लेखित जगतु ग नि सन्देह राष्ट्रकूट राजा गोविन्दराज तृतीय है और बोद्दणराय अमोघवर्ष। अगर विक्रमी सम्वत् ८३८ मानते हैं तो यह तिथि १६।११।७८० ई० ही आती है उस समय गोविन्दराज का पिता ध्रुव निरुपम भी शासक नही हुआ था। इसके अतिरिक्त हरिवशपुराण मे वीरसेनाचार्य का उल्लेख है। लेकिन उस की इस धवला टीका का उल्लेख नही है। स्मरण रहे कि इस ग्रन्थ मे समन्तभद्र, देवनन्दि, महासेन आदि आचार्यों के ग्रन्थो का स्पष्टत उल्लेख हैं।

जयधवला के अन्त मे लम्बी प्रशस्ति दी हुई है। इससे ज्ञात होता है कि वीरसेनाचार्य की इस अपूर्ण कृति को जिनसेनाचार्य ने पूर्ण किया था। यह टीका शक सवत् ७५६ मे महाराजा अमोघवर्ष के शासन काल मे पूर्ण की गई थी।

बहुचर्चित हरिवश पुराण की प्रशस्ति के अनुसार [7] शक स० ७०५ मे जब दक्षिण मे राजा वल्लभ, उत्तर दिशा में इन्द्रायुद्ध, पूर्व में वत्सराज और सौरमडल मे जयवराह राज्य करते थे तब वढवाण नामक ग्राम मे उक्त ग्रन्थ पूर्ण हुआ था। शक सम्वत् ७०५ की राजनैतिक स्थिति बडी उल्लेखनीय है। दक्षिण के वल्लभ राज का जो

---

५. अनेकात वर्ष ७ पृ० २०७–२१२

६. भारतीय प्राचीन लिपिमाला पृ० १६६

७. शाकेष्वब्दशतेषु सप्तसु दिश पञ्चोत्तरेषूत्तरां
पातीन्द्रायुधा नाम्नि कृष्ण नृपजे श्रीवल्लभे दक्षिणाम्
पूर्वां श्रीमदवन्तिभूभृति नृपे वत्सादि (धि) राजेऽपराम्
सोराणामधिमण्डल जययुते वीरे वराहेऽवति ॥ २५ ॥

उल्लेख है वह सम्भवतः ध्रुव निरुपम है। गोविन्द II की उपाधि भी "वल्लभराज" थी। इसी प्रकार श्रवणबेलगोला के लेख न॰ २४ में ८ स्तम्भ के पिता ध्रुवनिरुपम की भी उपाधि वल्लभराज वर्णित है। गोविन्दराज का शासनकाल अल्पकालीन था और शक स॰ ७०१ के धूलिया के दानपत्र के पश्चात् उसका कोई लेख नहीं मिला है। अतएव यह ध्रुव निरुपम के लिये ही ठीक है। उत्तर मे इन्द्रायुध का उल्लेख है। यह भण्डी वंशी राजा इन्द्रायुध है। फ्लीट, भण्डारकर प्रभृति विद्वानों ने भी इस ठीक माना[9] है। कुछ इसे गोविन्दराज III के भाई इन्द्र III मानते है जो उस समय राष्ट्रकूटो की ओर से गुजरात मे प्रशासक था स्वतन्त्र[10] राजा नही। प्रशस्ति में तो स्पष्टतः इन्द्रायुध पाठ है अतएव इस प्रकार के तोड मोड करने के स्थान पर इसे इन्द्रायुध ही माना जाना ठीक है। पूर्व मे वत्सराज का उल्लेख है। शक स॰ ७०० मे लिखी गई कुवलयमाला मे इस राजा को जालोर का[11] शासक माना है। अवन्ति प्रतिहार राजाओ के शासन मे सम्भवत. दन्तिदुर्ग के शासन पूर्व काल से ही थी। [12] डा॰ दशरथ शर्मा एव भण्डारकर के अनुसार वत्सराज और अवन्ति के शासक अलग २ शब्द हैं।

आचार्य जिनसेन जो आदिपुराण के कर्त्ता थे।[13] अमोघवर्ष

---

८. अल्तेकर—राष्ट्रकूटाज एण्ड देयर टाइम्स पृष्ठ ५२–५३

९. एपिग्राफिआ इंडिका भाग XVIII पृ–११० ११२

१० डा॰ गुलाबचन्द चौधरी हिस्ट्री आफ नोर्दन इंडिया फ्राम जैन सोर्सेस पृ॰ ३३

११. सगकाले बोलीणे वीर एण सएहिंसत्ताई गएहिं।
एक दिन णेणेहि रइया अवरण्ह बेलाए।
परभडभिउडि भगोपण ईयण रोहिणी कलाचंदो।
सिरिवच्छरायणामो णरहत्थी पत्थिवो जइया ।।[कुवलयमाला की प्रशस्ति]

१२. अल्तेकर-राष्ट्रकूटाज एण्ड देयर टाइम्स पृ॰ ४०

१३. "इत्यमोघवर्षपरमेश्वरपरमगुरुश्रीजिनसेनाचार्यविरचितमेघदूतवेष्टि॰ तेपार्श्वाभ्युदये ·······" [पार्श्वाभ्युदय के सर्गों के अन्त की पुष्पिका]

के गुरु के नाम से विख्यात है। उत्तरपुराण की प्रशस्ति में स्पष्ट वर्णित है कि वह जिनसेनाचार्य के चरणकमलों में मस्तक रख कर अपने को पवित्र मानता था।[14] इसकी बनाई हुई प्रश्नोत्तर रत्नमाला नामक एक छोटी सी पुस्तक मिली है। इसके प्रारंभ में "प्रणिपत्य वर्द्धमान" शब्द है। यद्यपि यह विवादास्पद है कि अमोघवर्ष जैन धर्म का पूर्ण अनुयायी था अथवा नहीं किन्तु यह सत्य है कि वह जैन धर्म की ओर बहुत आकृष्ट था। इसी के शासन काल में लिखी महावीराचार्य की गणितसार संग्रह नामक पुस्तक में अमोघवर्ष के सम्बन्ध में लिखा है कि उसने समस्त प्राणियों को प्रसन्न करने के लिये बहुत[15] काम किया था और जिसकी चित्तवृत्ति रूपी अग्नि में पापकर्म भस्म हो गये। अतएव ज्ञात होता है कि वह बहुत ही धार्मिक प्रवृत्ति का था। इसमें स्पष्टतः जैनधर्मावलम्बी वर्णित किया है। राष्ट्रकूट शिलालेखों से ज्ञात होता है कि अमोघवर्ष कई बार राज्य छोड़कर एकांत का जीवन व्यतीत करता था और राज्य युवराज को सौंप देता था। सजान के दानपत्र के श्लोक ४७ व अन्यदान पत्रों में इसका स्पष्टतः उल्लेख है। प्रश्नोत्तर-रत्नमाला में अंतिम दिनों में उसका राज्य से विरक्त होना[16] वर्णित है। अगर अमोघवर्ष जैनधर्म की ओर आकृष्ट नहीं होता तो निसंदेह जिनसेनाचार्य उसकी प्रशंसा में सुन्दर पद नहीं लिखते।[17] उसमें लिखा है कि उसके आगे गुप्त राजाओं की कीर्ति भी फीकी पड़ गई थी। सजान के दानपत्र में भी इसी प्रकार का उल्लेख

---

१४ यस्य प्रांशुनखांशुजालविसरद्धारान्तराविर्भव-
स्पादाम्भोजरजः पिशङ्गमुकुट प्रत्यग्ररत्नद्युति।
संस्मर्ता स्वममोघवर्षनृपतिः पूतोऽहमद्येत्यलं
स श्रीमान् जिनसेनपूज्यभगवत्पादो जगन्मङ्गलम् ॥८॥

उत्तर पुराण की प्रशस्ति

१५ नाथूराम प्रेमी—जैन साहित्य का इतिहास पृ० १५२

१६ अल्तेकर राष्ट्रकूटाज एण्ड देयर टाइम्स पृ० ८८-९०

१७ गुर्जरनरेन्द्रकीर्तेरन्तः पतिता शशाङ्कशुभ्रा या।
गुप्तैव गुप्तनृपतेः शकस्य मशकायते कीर्तिः ॥१२॥

है।[18] उत्तर पुराण की प्रशस्ति मे अमोघवर्ष के उत्तराधिकारी राजा कृष्ण II की[19] प्रशसा की है। किन्तु यह निश्चय पूर्वक नही कहा जा सकता है कि यह राजा जैन था अथवा नही। इसका सामन्त लोकादित्य जो वनवास देश का राजा था अवश्यमेव जैन था। इसकी राजधानी[20] बकापुर थी। यह जैन धर्म का बडा भक्त था।

शिलालेखो और ताम्रपत्रों मे भी गोविन्दराज और अमोघवर्ष का वर्णन मिलता है। गंगवशी सामन्त चाकिराज की प्रार्थना पर शक स० ७३५ में गोविन्दराज III ने जालमगल नामक ग्राम यापनीय सघ को दिया था। यह लेख गोविन्दराज III के शासन काल का अन्तिम लेख है। उत्तरपुराण मे वर्णित लोकादित्य के पिता बकेय के कहने पर अमोघवर्ष ने जैन मंदिर के लिये भूमिदान मे दी थी ऐसा एक दानपत्र से प्रकट होता है।[21]

महाकवि पुष्पदत और सोमदेव उस युग के महान विद्वान थे। पुष्पदत का एक नाम खड भी था। ये महामात्य भरत और उनके पुत्र नन्न के आश्रित रहे थे। ये दोनो राष्ट्रकूट राजा कृष्णराज के III के सम समायिक थे। इसने कृष्णराज के लिये 'तुडिगु' "वल्लभ नरेन्द्र" और "कण्हराय" शब्द भी प्रयुक्त किये हैं।[22] तिरुक्कलुक्कुनरम् के शिलालेख में कन्हरदेव शब्द इस राजा के लिए प्रयुक्त[23] किया

---

१८. हत्वा भ्रातरमेवराज्यमहरत् देवी च दीनस्तथा।
लक्ष कोटिमलेखयत् किलकिलौ दाता स गुप्तान्वय.
येनात्याजि तनु स्वराज्यमसकृत बाह्यर्थ कै. का कथा
ह्रीस्तस्योन्नति राष्ट्रकूटतिलक दातेति कीर्त्यामपि। ४८।
सजान का ताम्रपत्र

१९ उत्तर पुराण की प्रशस्ति श्लोक २६–२७

२०. उत्तर पुराण की प्रशस्ति श्लोक २९ और ३०

२१. जैन लेख सग्रह भाग ३ की भूमिका पृ० ८५ से ८७

२२. सिरीकण्हरायकरयलणि हिय असि जलवाहिणि दुग्ग यरि।
आदि पुराण भाग ३ की भूमिका पृ० १६

२३ एपिग्राफिआ इंडिका भाग III पृष्ठ २८२ एव साउथ इंडियन इंसक्रिप्सन भाग १ पृ० ७६

गया है। यह राजा जब मेलपाटी के सैनिक शिविर में था तब सोमदेव ने यशस्तिलक चम्पू ग्रंथ को पूर्ण किया था।[24] इस ग्रंथ की प्रशस्ति से ज्ञात होता है कि अरिकेशरी के पुत्र वद्दिग की राजधानी गंगधारा में यह ग्रंथ पूर्ण हुआ था। इसमें स्पष्टतः वर्णित है कि कृष्णराज ने पाण्ड्य, सिंहल, चोल चेर आदि के राजाओं को जीता था। इस बात की पुष्टि समसामयिक ताम्रपत्रों से भी होती है। पुष्पदंत के आदिपुराण में मान्यखेटपुर को मालवे के राजा द्वारा विनष्ट करने का उल्लेख है।[25] यशोधर चरित की प्रशस्ति से ज्ञात होता है कि जिस समय सारा जनपद नीरस हो गया था। चारों ओर दुःसह दुःख व्याप्त हो रहा था। जगह जगह मनुष्यों की खोपड़ियां और कंकाल बिखर रहे थे, और सर्वत्र नरक ही नरक दिखाई दे रहा था उस समय महात्मा नन्न ने मुझे सरस भोजन और सुन्दर वस्त्र दिये अतएव वह चिरायु हो।[26] महाकवि धनपाल की पाइअ लच्छी नाममाला[27] के अनुसार यह

---

२४. "पाड्यसिंहलचोल्चेरमप्रभृती-महीपतिन्प्रसाध्य मेलपाटी प्रवर्द्ध-मानराज्यप्रभावे श्रीकृष्णराजदेवे"...एवं ८८१ शक के दानपत्र मे भी इसी प्रकार उल्लेखित है।

२५. दीनानाथधन सदा बहुजन प्रोत्फुल्लवल्लीवन, मान्याखेटपुर पुरन्द पुरीलीलाहर सुन्दरम्। धारानाथनरेन्द्रकोपशिखिना दग्ध विदग्धप्रिय। क्वेदानी वसतिं करिष्यति पुन श्री पुष्पदन्तः कविः। यह पद संदिग्ध है और क्षेपक है। प्र० श्लो० ३४ महापुराण की ५० वीं संधि।

२६. जणु वयनीरसि दुरियमलीमसि। कइणि दायरि दुसहे दुहयरि। पडियकवालइ णरककालइ। बहुर कालइ अइ दुक्कालइ। पवरागारि सरसा हारि सण्हि चेलि वर तंबोलि॥ महु उवयारिउ पुण्णि पेरिउ। गुणमत्तिल्लउ णण्णु महल्लउ॥ होउ चिराउसु" यशोधर चरित ४।३१

२७. विक्कमकालस्स गए अउणत्तीसुत्तरे साहस्सम्मि। मालवनरिंद धाडीए लूडिए मण्णखेडम्मि॥ पाइअ लच्छीनाममाला (भावनगर) पृ० ४५

घटना १०२६ ई० में घटित हुई थी। राष्ट्रकूट राजा खोटिटग के बाद कर्कराज हुआ। परमार आक्रमण के बाद राष्ट्रकूट राज्य का अध पतन प्रारम्भ हो गया और शीघ्र ही चालुक्यो ने वापिस हस्तगत कर लिया।

संस्कृत और प्राकृत के साथ साथ कन्नड भाषा में भी कई दान पत्र और ग्रंथ लिखे गये। इनमे सबसे उल्लेखनीय महाकवि पम्प हैं। इसके द्वारा विरचित आदि पुराण चम्पू और विक्रमार्जुन विजय ग्रंथ प्रसिद्ध हैं। पिछले ग्रंथ मे अरिकेसरी जो चालुक्य वशीय था और जो सोमदेव के यशस्तिलक चम्पू मे भी वर्णित है की वंशावली दी गई है। विक्रमार्जुन विजय ऐतिहासिक ग्रंथ है। इसम राष्ट्रकूट राजा गोविंद चतुर्थ के विरुद्ध उसके सामंत राजाओं क आक्रमण करने और राज्य को बद्दिग राज को सौपने का उल्लेख है। बद्दिग अमोघवर्ष II का ही उपनाम प्रतीत होता है।[28]

शासन व्यवस्था

राष्ट्रकूट राजाओ के राजनैतिक इतिहास मे साथ —साथ समसामयिक राज्यव्यवस्था का भी जैन ग्रंथों मे सविस्तार वर्णन मिलता है। आदि-पुराण और नीतिवाक्यामृत मे इसका स्पष्ट चित्र खीचा गया है। राजा और मंत्रियो को उस समय वंश परम्परागत अधिकार प्राप्त थे।[29] मंत्रियो की संख्या सीमित रखने का उल्लेख सोमदेव ने किया है।[30] मंत्रि मंडल मे मंत्रियों के अतिरिक्त आमात्य (रेवेन्यू मिनिस्टर) सेनापति, पुरोहित दण्डनायक आदि भी होते थे। गावो के मुखियो का उल्लेख आदिपुराण मे है। तलारक्ष का जो नगर अधिकारी था उल्लेख आदिपुराण नीतिवाक्यामृत और यशस्तिलक चम्पू मे भी है। अष्टादश श्रेणिगण प्रधानों का भी उल्लेख यत्रतत्र

---

२८ अल्तेकर राष्ट्रकूटाज एण्ड देयर टाइम्स पृ० १०७–१०८

२९. सन्तान क्रमतो गताऽपि हि रम्या कृष्टा प्रमो सेवया। महामन्त्री भारत ने वंशपरम्परागत पद को जो कुछ दिनो के लिए चला गया था पुन. प्राप्त किया (महापुराण (अप) भाग ३ पृ० १३

३० 'बहवो मन्त्रिणः परस्पर स्वमतीरुत्कर्षयन्ति १०।७३ ।।

मिलता है। नीतिवाक्यामृत मे कई प्रकार के गुप्तचरो का उल्लेख है। राज्य कर जो प्राय: धान के रूप मे लिया जाता था यह उपज का १/६ भाग था। इसके अतिरिक्त शुल्क महत्तिकाओ द्वारा भी सग्रहित किया जाता था। राजाओ के ऐश्वर्य का सविस्तार वर्णन है। इनके राज्याभिषेक के समय किये जाने वाले उत्सवो का भी आदि पुराण मे वर्णन है। राजाओं का अभिषेक भी एक विशिष्ट पद्धति द्वारा कराया जाता था। राज्याभिषेक के समय "पट्ट बन्धन" होता था। यह पट्ट बन्धन युवराज पद पर नियुक्त करते समय भी बांधा जाता था। पट्टबन्धन का उल्लेख शिलालेखो मे भी मिलता[31] है। अन्त:पुर की व्यवस्था का भी उल्लेख मिलता है। इसकी रक्षा के लिये वृद्ध कचुकीगण नियुक्त थे। राजाओं द्वारा जलक्रीडाए और कई प्रकार की गोष्ठिया किये जाने का भी वर्णन मिलता है।

सांस्कृतिक सामग्री

उस समय की सांस्कृतिक गतिविधियो के अध्ययन के लिये जैन सामग्री बहुत ही महत्वपूर्ण है। वर्णव्यवस्था[32] वर्णाश्रम धर्म[33] सामाजिक सस्कार,[34] वेश्यावृत्ति[35] भोजन व्यवस्था,[36] शिक्षा[37]

---

३१ "पट्टब-धापदेशेन तस्मिन् प्राच्वड् कृत वसा (आ० पु० ११,४२) राज्य पट्टबद्ध-धास्य ज्यायान् समवधीरयन्। आ० पु० ५।२०७ "मणणे व शक स ७१६ के लेख मे" राष्ट्रकूट-पल्लवान्वयतिलाकाभ्या मूर्द्धाभिषिक्त गोवि दराज नन्दिवर्माभिधेयाभ्या समुनिष्ठित-राज्याभिषेकाभ्या निजकरघटितपट्टविभूषित ललाट-पट्टो विख्यात" इसी प्रकार पट्टब-धोर्जगद्ब-धो ललाटे विनिवेशित। १६।२३ आ पु० उल्लेख है। पुष्पदत ने राजाओ के अभिषेक और चमरों का उल्लेख व्यग के साथ किया है "चमराणिल उड्डाविय गुणाइ। अट्टि सेय धोय सुयणत्तणाइ"

३२, आदि पुराण १६।१८१-१८८, २४२-२४६, २४७, २६।१४२

३३. ,, ३८ ४५-४८ और ४२ वा पर्व

३४. ,, ४० और ३६ वा पर्व

३५. ,, ४।७३

३६. ,, ३।१८६-१८८-२०३, १६।७३

३७. ,, १४ (१६०-१६१), १६ (१०५-१२८)

चित्रकला,[38] सगीत,[39] आभूषण,[40] सौन्दर्य प्रसाधन,[41] चिकित्सा साधन,[42] खेती की व्यवस्था [43] आदि का इनमें सागोपाग वर्णन मिलता है। समसामयिक भारत के वास्तुशिल्प का भी सविस्तार वर्णन मिलता है। मदिर महल आदि के वर्णनो में इस प्रकार की सामग्री उल्लेखनीय है। अल्तेकरजी ने अपने ग्रथ राष्ट्रकूटाज एण्ड देयर टाइम्स में इस सामग्री का अधिक उपयोग नही किया है। इस सामग्री का अध्ययन वाछनीय है।

---

३८ ,, ६ (१७०–१६१)
३६ ,, १४ (१०४ १५०) १२ (२०३–२०६)
४०. ,, १६ (४४–७१) १५ (८१–८४)
४१. ,, १२ (१७४) ११ (१३१ । ६ (३०–३२)
४२. , ११।५६, ११।५८, ११।१६६ ११।१७४–७६, २८ (३८, ४०)
४३. ,, २६ (११२–११५) २६ (४८) २६ (१२३–१२७) २८ (३२–३६) १६ (१५७)

[बाबू छोटेलाल स्मृति ग्रथ मे प्रकाशित]

....

महाराणा मोकल की जन्मतिथि | १४

महाराणा मोकल महाराणा लाखा का पुत्र और कुम्भा का पिता था। इसकी जन्म-तिथि के सम्बन्ध में विवाद है। मेवाड़ की ख्यातों में यह तिथि वि० स० १४५२ दी हुई है।[1] श्री विश्वेश्वर नाथ रेऊ ने यह तिथि वि० स० १४६६ के आस-पास मानी है।[2] ओझाजी ने इसे छोटी अवस्था में ही शासक होना माना है।[3] प्राप्त सामग्री के आधार पर यह प्रतीत होता है कि यह तिथि वि० स० १४५२ के आस-पास ही आनी चाहिये।

मोकल की पुत्री का विवाह अचलदास खीची के साथ हुआ था वह गागरोण का शासक था। इसकी मृत्यु मालवे के सुल्तान हो शगशाह के आक्रमण के समय हुई थी। यह घटना वि० स० १४८०-८५ के मध्य सम्पन्न हुई थी।[4] अचलदास ने कर्नल टॉड के अनुमार शादी के समय गागरोण की रक्षा का वचन भी मेवाड़ के शासकों से लिया था लेकिन नागोर के सुल्तान के साथ युद्ध में व्यस्त होने के कारण

---

१ वीर विनोद भाग १ पृ० ३१३–१४

२ मारवाड़ का इतिहास पृ० ७५ का फुटनोट

३ ओझा—उदयपुर राज्य का इतिहास भाग १ पृ० २७१

४ तारीख इ–फरिश्ता का अनुवाद भाग ४ पृ० १८३। मुन्तख्वाबउत तवारीख का अनुवाद इसमें वि० सं० १४७६ और १४८३ मे २ बार ग्वालियर पर आक्रमण करना उल्लेखित है।

मोकल ने पर्याप्त सहायता सम्भवत नहीं दी । [5] अचलदास खीची की वचनिका से प्रकट होता है कि मोकल की पुत्री बडी चतुर थी । राज्य की सारी शक्ति उसने अपने हाथ में ले रखी थी । मोकल की तिथि जानने के लिये एकमात्र विश्वस्त साधन अचलदास खीची की वचनिका है जिसका सम्पादन होकर भी सादूंल राजस्थानी रिसर्च इन्स्टीट्यूट बीकानेर से प्रकाशन हो गया है ।

वचनिका का रचनाकाल

वचनिका के रचनाकाल पर विचार करना इसलिये आवश्यक हो गया है कि इसे कुछ विद्वान् सम-सामयिक कृति नही मानते है । डा० हीरालाल माहेश्वरी ने इसे वि० स० १५०० के आस पास की कृति बतलाई है । [6] इसकी हस्तलिखित प्रति वि० स० १६२१ की अनूप संस्कृत पुस्तकालय मे उपलब्ध है । श्री मेनारिया जी ने हाल ही मे इसके रचनाकाल के सबंध मे कुछ सदेह किया है । इनकी आपत्ति के मुख्य आधार ये हैं —[7]

(१) इसमे होशगशाह का पूरा नाम उल्लेखित नही है । इसके लिये केवल मात्र गोरी, सुल्तान, आलम आदि नाम ही दिये है ।

(२) इसमें बून्दी के राजा का नाम समरसिंह दिया है जो वि० स० १४०३ म मर गया था ।

(३) मोकल के पुष्पा बाई नामकी कोई पुत्री ख्यातो मे वर्णित नही है ।

---

५ नागोर के सुल्तान के साथ महाराणा मोकल के युद्ध कई वर्षों तक चल रहे प्रतीत होते हैं । चित्तौड के वि० स० १४८५ के लेख में मोकल की विजय होना उल्लेखित है । इसी प्रकार का उल्लेख शृंगी ऋषि के लेख मे भी हैं । फारसी तवारीखो मे इसी प्रकार महाराणा की हार होना उल्लेखित हैं । वीर विनोद मे २ युद्ध होना वर्णित है जिसमे एक मे महाराणा की हार और दूसरे मे जीत होना वर्णित हैं । कयामखां रासो में लगभग ऐसा ही वर्णन है ।

६ राजस्थानी साहित्य पृ० ८३

७ शोध पत्रिका वर्ष १७ अङ्क १–२ पृ० २५–३०

यह तो विदित है कि होशंगशाह का पूरा नाम अलपखा ही था शिलालेखों में यह नाम कई बार उल्लेखित किया है। वि० स० १४८१ के देवगढ़ के एक लेख में जो जैन लेख संग्रह भाग ३ के पृ० ४६४ पर प्रकाशित हुआ है होशंगशाह के स्थान पर आलम खां ही नाम दिया है जो इस प्रकार हैं —

"श्रीमान् मालवपालके शक नपे गोरी कुलोद्योतके नि: कान्ते-विजयाय मण्डपपुराच्छीसाहिआलम्मके ।"

इसमें स्पष्टत होशंगशाह का नाम आलमखां दिया है। शिलालेख सम सामयिक है और प्रामाणिक आधार हैं। इसके अतिरिक्त इसके लिये जो 'गोरी सुल्तान' आलम आदि नाम दिये है उन पर सदेह नही किया जा सकता है। सम-सामायिक कृतियों में कई ऐसे सदर्भ उपलब्ध हैं जिनमे बादशाह का नाम न देकर केवल मात्र 'सुरताण' शब्द ही दिया मिलता है। इसमें गोरी शब्द दिया हुआ है उससे उल्टा यहध्वनित होता है कि लेखक समसामयिक ही था। गोरी वशी वि स. १४९३ के पश्चात् शासक नही रहे थे। इनके पश्चात् वहा खिलजीवशी शासक आ चुके थे। अगर यह रचना पश्चात् कालीन होती तो इसमे खिलजी शब्द भी अङ्कित कर सकता था क्योंकि गोरी वशियो का शासन बहुत ही थोडे समय तक रहा था।

दूसरी आपत्ति समरसिंह के सम्बन्ध मे है। मेरे ख्याल से बू दी के राजा का नाम इसमें समरसिंह दिया ही नहीं है। डा० दशरथ शर्मा की भी यही मान्यता है। उन्होंने बडोदा के ओ रियन्टल जनरल के सितम्बर १९६४ के अङ्क में प्रकाशित लेख मे यह स्पष्ट कर दिया हैं कि इसमे बू दी के राजा और देवडाओ का उल्लेख मात्र[8] है। इनके शासकों के नाम नहीं दिये हैं। मूल पक्ति इस प्रकार है—"बू दी का चक्रवर्ती अवर

---

८ डा० दशरथ शर्मा के लेख—

(१) राजस्थान भारती का कु मा विशेषांक पृ० २२–२३

(२) अचलदास खीची की वचनिका की भूमिका

(३) जनरल आफ ओरियन्टल इ स्टीट्यूट आफ बडौदा (सितम्बर १९६४) पृ० ७९ से ८३

देवडा हिन्दूराइ बदि छोड़ दूसरा माळदेव समरसिंह सरीखा" । इसमें समरसिंह को बूंदी का शासक वर्णित नहीं किया है । इस पंक्ति का अर्थ यह लेना चाहिए कि 'बूंदी का चक्रवर्ती राजा, सिरोही का देवडा राजा मालदेव समरसिंह आदि युद्ध में सम्मलित हुये । समरसिंह और मालदेव का वंश उल्लिखित नहीं है । उल्टा इसमें बूंदी के चक्रवर्ती शब्द से यह अर्थ निकलता है कि यह कृति समसामयिक ही है । बूंदी के हाडा न तो इसके पूर्व और न इसके पश्चात् कभी भी स्वाधीन रहे थे । वे प्रारम्भ में मेवाड के राजाओं के, कुछ समय तक मालवे के खिलजी वंशियों के और इसके बाद फिर मेवाड वालों के अधीन रहे थे । मुगलों के साथ संधि के बाद ये मुगलों के आधीन हो गये । केवल मात्र मोकल के अन्तिम दिनों में ये लोग स्वाधीन हो गये थे । इसी कारण महाराणा कुंभा को अपने शासनकाल मे सबसे पहले इनको अधीन करके करदाता[9] बनाना पडा था । श्री शारदा जी के अनुसार हाडा मालदेव मोकल का समकालीन भी था ।[10]

इनके अतिरिक्त वचनिका मे ग्वालियर के राजा डूंगरसिंह और रावल गइपा का उल्लेख है जो वि० सं० १४८० में शासक के रूप में विद्यमान थे "पंच पद प्रस्थान विषम पद व्याख्या" नामक ग्रन्थ की प्रशस्ति के अनुसार डूंगरपुर मे महारावल गइपा वि० सं० १४८० मे शासक के रूप म विद्यमान था । डूंगरसिंह के पिता वीरमदेव की अन्तिम तिथि वि० सं० १४७६ आषाढ सुदी ५ है जो आमेर शास्त्र भण्डार के ग्रन्थ 'षटकर्मोपदेश माला" की प्रशस्ति की है । [11]

तीसरी आपत्ति मेवाड की ख्यातों में मोकल की पुत्री का उल्लेख न होना है । ख्यातो मे मेवाड की रानियों के नाम गलत दिये हैं ।

---

९ जित्वा देशमनेकदुर्गविषमं हाडावटी हेलया ।
तन्नायन् करदान्विधाय जयस्तम्भानुद स्तम्भयत् ।।
कुंभलगढ प्रशस्ति

१० शारदा— महाराणा कुंभा पृ० ३१

११ प्रशस्ति संग्रह (अमृतलाल मगनलाल शाह) पृ० १५ एवं,, (श्री कासलीवाल) पृ० १७३

ओझा जी ने इस सम्बन्ध मे विस्तृत प्रकाश डाला है कि ख्यातो में रानियों के नाम प्राय गलत दिये हुए हैं। उनका कथन है कि "ख्यातो मे १३ वीं शताब्दी तक के राजाओ की रानियो के नाम तो मिलते ही नही है यदि कुछ नाम मिलते है तो शिलालेखो में ही— वि० स० १५०० और इसके कुछ पीछे तक रानियो के नाम जो ख्यातो मे दिये हैं वे विश्वास योग्य नहीं है।" [12]स्वय मोकल की रानियों के नाम भी गलत दिये हुये हैं। टाड ने पुष्पादेवी को मोकल की पुत्री माना है जो भी ख्यातों के आधार पर ही था।

बीकानेर वाली प्रति घटना के लगभग १५० वर्ष बाद की है। अतएव इसमे वर्णित घटनायें अप्रामाणिक नही मानी जा सकती हैं जब तक कि कोई समसामयिक अधिक प्रामाणिक तथ्य प्रकाश मे नही आ जावे। इसे वि० स० १५०० के आस पास की कृति मानी जा सकती है।

अन्य सामग्री

श्री रेऊ द्वारा दी गई तिथि को महाराणा मोकल की जन्मतिथि मान ली जावे तो गागरोण पर होशगशाह के आक्रमण के समय कभी भी उसके विवाह योग्य पुत्री नही हो सकती थी। अतएव मोकल की तिथि कभी भी वि० स० १४५२ के पश्चात् नही रखी जा सकती है, इसके पूर्व अवश्य। श्री रेऊ द्वारा भ्रमात्मक तिथिमा मानने का आधार क्या है ? अस्पष्ट है। सभवत राव रणमल को महाराणा कुभा के शासनकाल में वि० स० १४९५ तक हुई घटनाओं का श्रेय देने के लिए ही ऐसी कल्पना की गई प्रतीत होती है। महाराणा खेता की निधन तिथि भी इसी प्रकार भ्रमात्मक मानी गई है। सोम सौभाग्य-काव्य के अनुसार वि० स० १४५० में महाराणा लाखा मेवाड मे शासक के रूप मे विद्यमान थे। अतएव इस तिथिक्रम पर विचार करना आवश्यक हैं। निस्सदेह यह सत्य है कि कुभा राज्यारोहण के समय छोटा सा बच्चा नही था। वि० सं० १४९५ की चित्तौड की प्रशस्ति में कुभा के लिये "वार्त्तापितापविषयात्रकथ प्रजाना श्रीकुभकर्ण पृथिवीपनिर-दभुतौजा." वर्णित है। इसी प्रकार वर्णन राणकपुर के लेख में भी

१२ ओझा निबन्ध सग्रह भाग २ पृ० १७२

हैं। दोनों ही कृतियां राज्याश्रित कवियों द्वारा विरचित भी हुई नहीं है। इसके अतिरिक्त महाराणा कुंभा की मृत्यु के समय उसके ज्येष्ठपुत्र ऊदा के विवाह योग्य एक पुत्री और दो पुत्र[13] थे। यह तब ही सभव हो सकता है कि कुंभा राज्यरोहण के समय पूर्ण वयस्क हो। अतएव जब वि० सं० १४९० मे कुंभा पूर्ण वयस्क था और १४८०–८५ के मध्य मोकल की पुत्री विवाहित थी तब उसकी जन्म तिथि वि० सं० १४६६ के आसपास नही रखी जा सकती है। राजस्थान भारती के वर्ष १० अंक २ मे लिखते हुये डा० दशरथ ने लिखा है कि (क) महाराणा मोकल की मृत्यु सं० १४८९–१४९० में बीच हुई थी। उस समय उसके ७ पुत्र थे क्या इससे यह अनुमान लगाया जा सकता है कि देहावसान के समय महाराणा मोकल की आयु २४ या २५ वर्ष न होकर उससे कहीं अधिक थी। ऐसी ही संभावना होने पर हम पुष्पावती को मेवाड के महाराणा मोकल की पुत्री मान सकते हैं। (ख) किन्तु यह अधिक संभव है कि पुष्पावती किसी राणक मोकल की पुत्री थी जो महाराणा मोकल से भिन्न था। वचनिका मे ऐसी कोई बात नहीं है जो राणा मोकल को महाराणा मोकल मानने के लिये विवश करे।"

वचनिका मे अचलदास अन्त समय में जब अपने शौर्य और त्याग की कथा के सम्बन्ध मे कहता है तब वह गर्व से कहता है कि इसे मोकल डूंगरसी, गहपा आदि सुनेंगे तो वे भी प्रसन्न होंगे। यहां मोकल का संदर्भ निसंदेह मेवाड के महाराणा से सम्बन्धित है तो कोई कारण नही है कि पुष्पावती को अन्य वर्णन में इसकी पुत्री नही माने। मेवाड मे ही नही अचलदास खीची की कथा लिखने वाले पश्चात् कालीन लेखकों ने इसे ठीक माना है। अतएव डा० दशरथशर्मा का उपरोक्त (ख) मे वर्णित विचार माननीय नहीं है।

इसी प्रकार राव रणमल की जन्म तिथि श्री रेऊ ने वि० सं० १४४६ वैसाख सुदी ४ मानी है। मारवाड की अन्यख्यातो मे यह तिथि वि० सं० १४३२ भी मिलती है। वीर मायण में वीरमदेव सलपावत की बात छपी है उस मे यह तिथि वि० सं० १४३२ छपी है। अतएव इससब सामग्री पर अधिक शोध करने की आवश्यकता है।

---

१३. महाराणा कुम्भा पृ० ६५–६६

लकुलीश मत | १५

भगवान शिव के २८ अवतार माने गये हैं जिनमें लकुलीश इनका अन्तिम अवतार है। संस्कृत में लकुलीश के लिये नकुलीश शब्द प्रयोग में लाया गया है किन्तु बूलर[1] भाडारकर प्रभृति विद्वानों ने लकुलीश शब्द को ही प्राचीन स्वीकार किया है। इनका कहना है कि सामान्यतया प्राकृत के व्याकरण के नियमानुसार "ल" का लोप होकर उसके स्थान पर "न" का प्रयोग अधिक होता था जबकि न के स्थान पर "ल" का प्रयोग कम। इसके अतिरिक्त शिव स्वयं लकुल लेकर अवतरित हुये हैं अतः लकुलीश शब्द ही अधिक उपयुक्त प्रतीत होता है।

पाशुपत मत का प्रवर्त्तक कौन ?

नागरी प्रचारिणीपत्रिका वर्ष ६३ अंक ३-४ में श्री विश्वम्भर पाठक ने पाशुपत मत के प्रवर्त्तक श्री कण्ठ को माना है। इनका कहना है कि महाभारत में जहां ५ दर्शनों का विवेचन है वहा पाशुपत मत के प्रवर्त्तक के रूप में श्री कण्ठ का नाम ही[2] दिया है। तन्त्रालोक में वर्णित

१ जनरल बम्बई ब्रांच रायल एशियाटिक सोसाइटी VoXXII पृ. १५६ एवं आर्कियोलोजिकल सर्वे रिपोर्ट आफ इण्डिया वर्ष १९०७ में डी० आर० भंडारकर के लेख

२. सांख्य योग पाञ्चरात्र वेदा पाशुपतस्तथा।
ज्ञाना येतानि राजर्षे विद्धि नाना मतानि वै ॥६४॥
उमापतिर्भूतपतिः श्रीकण्ठो ब्राह्मणः सुतः।
उक्तवानि दमव्यग्रो ज्ञानं पाशुपतं शिवः ॥६७॥ शांतिपर्व पृ० ३४९

है कि श्री कण्ठ ने पचस्रोनोरूप शिवशासन का[3] प्रवर्तन किया। कालान्तर मे इसके विलुप्त हो जाने पर अद्वैत-त्रिक द्वैत-शैव सिद्धान्त और द्वैताद्वैत लाकुलीश के विभिन्न मतो का प्रवर्तन हुआ। अतएव श्री पाठक की मान्यता है कि "इन साक्ष्यों से प्रतीत होता है कि श्रीकठ ही शैवमत के आद्य आचार्य हुये और क्रमशः इस मूल मत से अलग होकर अनेक सम्प्रदायो की उत्पत्ति हुई। श्री प्रबोधचद्र बागची ने बिना किसी प्रमाण के ही यह लिखा है कि श्री कठ और लकुलीश सम्भवतः गुरुशिष्य होगे और इसीलिए पाशुपत मत के साथ दोनो के नाम जुडे हैं। तत्रालोक में भी दोनो को शिवशासन से सम्बद्ध बत[4] लाये हैं। अभिनवगुप्त[4] यह भी कहते हैं कि श्री कठ के यशोगान के लिये ही लकुलीश का आविर्भाव हुआ"। यद्यपि शैव ग्रंथों में श्री कण्ठ का गुणगान हो रहा है किन्तु पाशुपत धर्म की जो धारा उत्तरी और दक्षिणी भारत में फैलाई थी उसमें लकुलीश का ही प्रधान योगदान रहा था। शिलालेखो में लकुलीश आचार्यों का पाशुपताचार्य कहा गया है। एक लिंग मंदिर के वि० १०२८ के लकुलीश सम्प्रदाय के शिलालेख मे हिमालय से लेकर कन्या कुमारी तक कीर्ति फैलाने वाला कहा गया[5] है। तत्रालोक के अवतरण से भी स्पष्ट है कि श्री कण्ठ द्वारा चलाया हुये शैव मत की कई शाखायें होगई किन्तु इन शाखाओ मे लकुलीश सम्प्रदाय वाले ही अधिक विख्यात हुये। अगर लकुलीश नहीं होते तो निसदेह पाशुपत सम्प्रदाय इतना अधिक विख्यात नही होता। श्री पाठक जी ने भले ही साहित्यिक आधार पर श्री कण्ठ के सम्बन्ध मे

---

३. तच्च पञ्च विध प्रोक्तं शक्तिवैचित्र्यचित्रितम्।
पचस्रोत इति प्रोक्तं श्री मच्छ्रीकण्ठशासनम् तत्रालोक जि० १ पृ० ३४ (नागरी प्रचारिणी पत्रिका वर्ष ६३ पृ० ३३८ से उद्धृत)

४. एतद्विपर्ययाद् ग्राह्यमवश्य शिवशासनम्।
द्वा वाप्तौ तत्र च श्रीमच्छ्रीकण्ठ लकुलेश्वरौ (उक्त पृ० ३३६)

५. तेभ्यो..........क्लेश समुद्गतात्ममहसः—योगिनः। शापानुग्रह भूमयो हिमशिला व (ब) न्धोज्वलादागिरेरासते रघुवश कीर्ति-पिशुनास्ती... ..." एकलिंग मंदिर का १०२८ का शिलालेख

सामग्री अवश्य प्रस्तुत की है किन्तु शिलालेखों मे लकुलीश को पाशुपत सम्प्रदाय का आद्य आचार्य कहा गया है। कहीं कहीं तो आरम्भ ही "ॐ नमो लकुलीशाय" से किया गया है। इस सामग्री पर भी हमें दृष्टि डालनी पडेगी। अत यही कहा जा सकता है कि जो मत श्रीकण्ठ ने प्रारम्भ किया था और जो विलुप्त प्राय. सा हो गया था उसे लकुलीश ने वापस पल्लवित किया। शिलालेखो मे श्रीकटाचार्य का बहुत ही कम उल्लेख है। पुराणों मे भी लकुलीश को ही शिव के अवतार के रूप में वर्णित किया है।

उत्पत्ति

यह बतलाना कठिन है कि भगवान शिव के विभिन्न अवतारों की कल्पना कब हुई थी? पुराणों मे इस सम्प्रदाय के सम्बन्ध मे बहुत ही कम सामग्री उपलब्ध है। लिंग और वायु पुराण में इस मत का उद्भव काल वर्णित है। वहां लिखा है कि जब भगवान कृष्ण और द्वैपायन व्यास अवतरित होगे तब ही शिव भी लकुल लेकर अवतरित[6] होंगे। पुराणो का यह कथन अधिक विश्वसनीय नहीं है। सचमुच बात यह है कि सामान्यतया सभी उपासक अपने उपास्य देव को परमब्रह्म या शक्तिशाली देव के रूप मे पूजते हैं। कालान्तर मे यह भावना इतनी बलवती हो जाती है कि उन्ही देवो को लोक मे पूजे जाने वाले अन्य देवो के साथ सम्बन्धित करने की चेष्टा करते हैं। अपने मत के प्रसार हेतु कई चमत्कारिक घटनाओ की कल्पना कर लेते हैं। अत इसमे कोई आश्चर्य नहीं कि पाशुपताचार्यों ने भी लकुलीश को भगवान श्री कृष्ण का समकालीन बतलाकर अपने मत को अपेक्षाकृत प्राचीन बतलाने का प्रयास किया हो तो कोई आश्चर्य नहीं।

मथुरा से प्राप्त वि० स० ४३७ के चन्द्रगुप्त II के लेख मे पाशुपताचार्य कुशिकान्वयी उदिता चार्य का[7] उल्लेख है। यह कुशिक

६. यदा भविष्यति व्यासो नाम्ना द्वैपायन प्रभुः। १ ५
तदा षष्टेन चाशेन कृष्ण पुरुषोत्तमः।
वासुदेवाद्यदुश्रेष्ठोवासुदेवो भविष्यति। १२६
तदाप्यह भविष्यामि योगात्मा योगमायया॥

७. एपिग्राफिआ इण्डिका Vol XXI मे प्रकाशित

से १० वीं पीढ़ि में हुये थे। अतएव इस मत का प्रादुर्भाव काल वि सं. १६२ से १८७ के मध्य हुआ माना जाता है। इसमें प्रत्येक आचार्य का औसतन काल २५ वर्ष माना जाकर ११ के लिये २७५ वर्ष मानने पर लकुलीश का काल ज्ञात हो जाता है। अगर यह लेख नहीं मिलता तो लकुलीश की ऐतिहासिकता में संदेह बराबर बना ही रहता है। यह युग निसंदेह शिवोपासना की दृष्टि से बड़ा महत्वपूर्ण था। कुशाण एव भारशिवनागवंशों का उदय भी लगभग इसी काल में हुआ था।

शिव का यह अवतार गुजरात में कायावरोहण (कारवां) नामक स्थान पर हुआ है। एकलिंगजी के वि० स० १०२८ के लेख में वर्णित है कि भगवान का यह अवतार भृगुकच्छ देश में हुआ जहां मेकला की पुत्री नर्मदानदी बहती है और जहां भृगुऋषि तपस्या[8] करते थे। सोमनाथ मन्दिर की वि० स० १२७४ की प्रशस्ति के अनुसार यह अवतार उल्का के पुत्रो को अनुग्रहित करने के लिये हुआ[9] था। शिलालेखों में प्राय भगवान शिव के स्वय लकुट लेकर अवतरित होने का उल्लख है जब कि पुराणों में मरे हुये ब्राह्मण के शरीर मे प्रविष्ट होने का। पाशुपत सूत्राणि पर राशिकर भाष्य में भी लिखा है कि ब्राह्मण काय में मनुष्य रूप से आकर इन्होंने सबसे पहले उज्जैनी जाकर प्रथम उपदेश कुशिक को दिया।[10]

इतिहास

इस सम्प्रदाय में मुख्यरूप से प्रारम्भ में ४ प्रकार के आचार्य[11]

८. एकलिंग मंदिर के वि० स० १०२८ के लेख की पंक्ति स. ७। पालड़ी के लेख वि० स० ११७३ की पंक्ति स० ८ और ६

६. अनुग्रहीतुं च चिर विपुत्रवनुलूकभूतानभिशापत. पितुः।

१०. अवतरदचत्वारः पाशुपतविशेषचर्यायें।
 इहकुशिकगार्गकोरुषमैत्रेया इति तदत सद ॥१६॥

११. "मनुष्यरूपीभगवान् ब्राह्मणकायन्मास्थायकायावतरणे अवतीर्ण इति.............तथा पद्भ्यामुज्जयिनीं प्राप्त............अतो रुद्र प्रचोदितः कुशिक भगवान्भ्यागत्य पृष्ठवान्" पाशुपत सूत्राणि राशिकर भाष्य पृ. ४ नागरी प्रचारिणी पत्रिका के वर्ष ६३ पृ. ३३७ से उद्धृत)

हो प्रमुख हुये थे (१) कुशिक (२) गार्ग्य (३) कौरुष और (४) मैत्रेय।। हरिभद्रसूरि ने "षटदर्शन समुच्चय" में १८ नाम दिये हैं। इसी प्रकार का उल्लेख कौडिन्य रचित पचार्थभाष्य की भूमिका में भी उपलब्ध है। कुछ नामों मे हेरफेर अवश्य है। मुनि कान्तिसागर जी द्वारा रचित एकलिंगजी के इतिहास पृ. ४०० पर इनकी नामावली इस प्रकार प्रस्तुत की है:—

(१) नकुलीश (२) कुशिक (३) गर्ग (४) मैत्रेय (५) कौरुष (६) ईशान (७) पारगार्ग्य (८) कपिलाण्ड (९) मनुष्यक (१०) कुशिक (११) अत्रि (१२) पिंगल (१३) पुष्पक (१४) बृहदार्य (१५) अगस्ति (१६) सन्तान (१७) राशिकर (१८) विद्यागुरु कौडिन्य।

लकुलीश मत के महन्त यौगिक क्रियाओं में विशारद माने जाते थे। ७ वी शताब्दी के शीतलेश्वर महादेव झालरापाटन से प्राप्त शूकर वराह की प्रतिमा पर उत्कीर्ण लेख मे "ईशान मुनि" का उल्लेख है जिसे लकुलीश के समान बतलाया है और उसके विशेषण स्वरूप'—ष्ट जाततिलकोवामिकवनभूषण:[१२]" लिखा गया है। यह प्रतिमा वराह की है जो वैष्णव मत की है। इस पर तत्कालीन शैव साधु का नाम होना एक उल्लेखनीय घटना है। मूर्ति बनाने वाला इसका उपासक था। ईशान मुनि लकुलीश के १८ आचार्यों मे से १ एक है। कल्याणपुर से राजा पद्म और केदर्थिदेव के समय के २ शैवलेख प्रकाशित हुये हैं। पहले लेख को श्री रतनचन्द्र अग्रवाल ने और इन दोनों को डॉ. सी सरकार ने सम्पादित[१३] किये हैं। केदर्थिदेव वाले लेख में शैवाचार्य कुटुकाचार्य और उनकी शिष्या वेष्णा का उल्लेख है।

---

१२ कनिघम आर्कियोलोजिकल सर्वे रिपोर्ट आफ इंडिया Vol II पृ. २६६।

१३. जरनल आफ इन्डियन हिस्ट्री Vol XXXV अंक १ पृ ७३–७४। एपिग्राफिआ इण्डिया Vol XXXV पृ. ५६।

प्रतिहार राजा भोज ने प्रमाणराशि नामक पाशुपताचार्य को कुछ राशि गोष्ठियो को पहुचाने को दी थी। कामां से प्राप्त हर्ष सवत २६६ शिलालेख[14] मे इसकी सूचना दी गई है। चामुण्डा और विष्णु के देवालयों की देखभाल का कार्य भी शैवाचार्यों को सौंपा गया था जो एक विशेष घटना है।

एकलिंग क्षेत्र—मेवाड में एकलिंग मदिर के मठाधीश बडे प्रसिद्ध रहे है। बाप्पारावल को राज्य प्राप्ति के लिये, एक लिंग माहात्म और ख्यातो के अनुसार हारीत राशि नामक शैवसाधु ने महत्वपूर्ण योगदान दिया था। इन हारीत राशि की गुरु परम्परा आदि का विस्तृत विवरण एव अन्य सम सामयिक वृतान्त उपलब्ध नहीं है। इनका उल्लेख भी १३ वी शताब्दी के शिलालेखो[15] में ही आया है। यहां लकुलीश का मदिर आज भी मौजुद है। इसमें वि० स० १०२८ का शिलालेख लग रहा है। शिलालेख की पक्ति ६ में लकुलीश के अवतार लेने का उल्लख है और १२ वी पक्ति मे यहा के आचार्यो का उल्लेख है जो कुशिक शाखा के थे। वे लोग शरीर पर भस्म लगाते थे। वक्षो की छाल पहिनते थे और सिर पर जटा धारण करते थे। लेख के अन्त में कुछ साधुओ के नाम भी दिये हैं यथा—सुपूजित राशि सद्योराशि एव विनिश्चत राशि। प्रशस्ति की रचना वेदाग मुनि के शिष्य आम्रकवि ने की थी। वेदाग मुनि का बौद्ध और जैन धर्मावलम्बियों से शास्त्रार्थ हुआ था। सौभाग्य से

---

१४. एपिग्राफिआ इडिया Vol XXIV पृ ३३१।
वर्णन इस प्रकार है "२६६ फाल्गुण शु. २ पुरा श्री भोजदेवेन ये ह्म्मास्सम्प्रसादिता प्रमाण राशये तेन चामुण्डाकस्य तर्पिता:।

१५. वि. स. १३३१ के चित्तौड के लेख के श्लोक ६ से ११। चित्तौड के १३३५ वि. के लेख के ८वी पक्ति। इनमे भी स्पष्टत: हारीत-राशि शब्द है। "श्री एकलिंगशिवसेवनतत्परश्रीहारीतराशिवश सम् तमहेश्वरराशितच्छिष्य श्रीशिवराशि....................." शब्द अंकित है।

इस घटना का उल्लेख लाट बागड की गुर्वावली मे भी किया गया है।[16] शैव साधुओं का मेवाड़ म दीर्घकाल से सम्मान किया जाता था। बाप्पा रावल के समकालीन ही हुए हरिभद्र सूरि ने आजव कौण्डिन्य न मक साधु का जो विवरण समराइच्चकहा में प्रस्तुत किया है वह ठीक शैव साधु[17]सा ही प्रतीत होता है। इससे उस समय मे प्रचलित जन भावनायें पति ध्वनित होती है। पश्चिमी राजस्थान में लिखे उप मिति भव प्रपच कथा में वठर गुरु का वृतान्त दिया है वहा इसमे जो शिव मदिर और मठ का प्रसग वश वर्णन दिया है वह[18] रोचक है। मदिर मे धतूरे को पीने का प्रचलन था। मेवाड़ में एकलिंग क्षत्र से पालडी और चीरवा के शिल लेख और मिले हैं जो भी इन पर प्रकाश डालते हैं। पालडी के ११७३ वि के लेख मे भी लकुलीश की उत्पति आदि का परम्परागत वर्णन है। इस लेख में खण्डेश्वर नामक शैव साधु की परम्परा में हुए कई आचार्यों का उल्लेख है यथा जनकराशि त्रिलोचन राशि वसन्त राशि

---

१६ "चित्रकूटदुर्गे राजानरवाहनसमाया विकटशैवादिवृन्दवन दहनदावानलविविधाचारग्रन्थकर्त्ता श्रीमतप्रभाचंद्रदेव

१७ दिठठो य तेण विवकलवियडजडाजणतिदण्डाधरि य।
मड्ड रयकति पुण्डो आसन कमण्डलु मो मो॥
मिसियाए सुट्ठ निसण्णा क्यली हरयन्तरमि झाणगओ।
परि वत्तन्तो दाहिणकरेण रुद्दक्खमाल ति॥
मन्तक्खर जवणेण य ईसि वियलन्त कण्ठ उठठ उडो।
नासाए निमिय दिटिठ विणिवारिय मस वावारो॥
अयसिमय जोगपटटयपमाणसगय कयासण विसेसो।
तावसकुलप्प हाणो अज्जवकोडिण्ण नामोत्ति॥ (प्रथम भव)

१८ ' ततो दृष्टोऽसौ बठरगुरुणामाहेश्वर । तथा भव्यतया च सञ्जातखेदेन या चितोऽसौ जलपान । माहेश्वर प्राह। भट्टारक ! पिबद तत्व रोचक नामसत्तीकोदक। पीनमनेन। तत प्रनष्ट क्षणादुन्मादो निर्मलीभूताचतना विलोकित शिव-मंदिर दृष्टास्ते धूर्तस्करा।

(पञ्चम प्रस्ताव पृ १२०६-०७)

बल्कल आदि। बल्कल के एक शिष्य शिव भक्ति ने ही पालडी का शिव मन्दिर बनाया था चीरवा के १३३० वि. के लेख मे शिव राशि का उल्लेख है। इसके लिए "पाशुपतनपस्विपतिः" विशेषण दिया है। यह महेश्वर राशि का शिष्य था जो पाशुपत सम्प्रदाय मे हुए हारीत राशि की परम्परा में था।

महाराणा कुम्भा के लेखों में एकलिंग माहात्म्य एकलिंग पुराण और रायमल के दक्षिण द्वार की प्रशस्ति आदि १५ वीं. शताब्दी की सामग्री में इन आचार्यो की उपेक्षा की गई जो एक विचारणीय विषय है। शिलालेखो से प्रतीत होता है कि वि० सं० १५६२ में नरहरि नामक मठाधीश ने मौजुदा मठ का विस्तार किया था और वि. स० १६०२ में गर्गाचार्य के मठाधीश होने का उल्लेख मिलता है। अतएव प्रतीत होता है कि इस समय मे आचार्य वापस यहां आ चुके थे। एकलिंग माहात्म्य आदि में वर्णित है कि महाराणा कुम्भा के साथ शिवानन्द नामक शैवाचार्य के सम्बन्ध ठीक नहीं होने से आचार्य रुष्ट होकर काशी चला गया था। कालान्तर में नरहरि वापस आया हो किन्तु ये पाशुपत मठाधीश अधिक समय तक नहीं रह सके और इनकी जगह दण्डी स्वामी साधु यहा लाये गए और व्यवस्था मे आमूल मूल परिवर्तन किया गया। एक लिंगक्षेत्र मे प्राप्त शिलालेखों में इन आचार्यों के विषय में विस्तार से क्रम बद्ध वर्णन नहीं मिलता है।

मेनाल क्षेत्र–मेनाल क्षेत्र माण्डलगढ़ सब डिवीजन में है। इस क्षेत्र में चौहान कालीन कई शिव मन्दिर आज भी विद्यमानहैं। लाहोरी के भूतेश्वर शिवालय में वि० स० १२११ का एक शिलालेख[19] उत्कीर्ण है जिसमें चौहान राजा वीसलदेव के शासनकाल में पाशुपताचार्य विश्वेश्वर प्रज्ञ द्वारा सिद्धेश्वर मन्दिर का मण्डप बनवाना वर्णित है। मेनाल के मठ में वि० स० १२२६ का एक शिलालेख लग रहा है जिसमे ब्रह्म-

---

१९. राजपुताना म्युजियम रिपोर्ट अजमेर १९२३ पृष्ट १। वरदा वर्ष ८ अङ्क १ पृ० ६

मुनि द्वारा मठ के [20] निर्माण का उल्लेख है । इसी समय के घोड़ के शिलालेख में पाशुपताचार्य प्रमासराशि का उल्लेख है । यहा के वि सं. १२२६ के एक लेख[21] में इसी प्रमासराशि द्वारा मठ बनाने का भी उल्लेख है । जिसमें बाहर से आये हुये कपिल तपस्वी ठहर सकें । कपिल के स्थान पर कापालिक पाठ भी पढ़ा जाता है । विश्वास किया जाता है कि मेनाल के साधु प्रारम्भ में अजमेर के चाहान शासकों के गुरु थे । यहां अच्यतधज जोगी नामक एक साधु का उल्लेखनीय वर्णन मिलता है । इसका नाम एक लिंग मंदिर स्थित लकुलीश मंदिर मे भी खुदा हुआ है । माडलगढ़ के उण्डेश्वर शिवायतन मे भी इसका नाम अंकित है । इसके आगे वि० सं० १४१० भी खुदा हुआ है ।[22] चित्तौड के मन्दिरों में भी इसका नाम खुदा मिलता है । कोटा क्षेत्र के रामगढ़ भडदेवरा बूढ़ादीत आदि के मदिरों मे भी इसका नाम खुदा हुआ है ।[22A] मेनाल से वि० स० १५१४ पोष बदि १२ सोमवार के एक लघुलेख में कडव भोजा और चम्पा जोगियों[23] का उल्लेख है । कडव महन्त[24] का उल्लेख और भी कई लेखो में मिलता है । उदयपुर सग्रहालय मे सग्रहित लकुलीश सम्प्रदाय के १६वीं शताब्दी के एक लेख से उस समय तक इस सम्प्रदाय की विद्यमान प्रतीत होती है । यह लेख मेनाल क्षेत्र से ही प्राप्त हुआ है ।[25] इस लेख का प्रारम्भ "जयमव लिन्गुवादाराय" से होता है । कालान्तर मे यह मत इस क्षत्र से विलुप्त हो गया था । इस प्रकार १०वी शताब्दी से १६वीं शताब्दी तक इस मत के कई शिव मन्दिर इस क्षत्र से प्राप्त हुए हैं ।

---

२०. "कारित मठमनुत्तम कलौ भावब्रह्ममुनिनाम्नाख्य" वीर वनोद भाग १ में प्रकाशित

२१. वरदा वर्ष ८ अङ्क ४ में श्रीरत्नचन्द अग्रवाल द्वारा सम्पादित

२२. वरदा वष ६ अङ्क ४ पृष्ठ ६

२२A. रिसर्चर भाग III एव IV पृ० १७ का फुटनोट २१

२३ महाराणा कुम्भा पृष्ठ १८८ फुटनोट १६

२४. " स० १५१४ वर्षे पोष वदि १२ सोमे कडव भोजाचम्पा ... ..." (उपरोक्त)

२५. वरदा वर्ष ४ अङ्क ३ पृ० ३-४

शेखावाटी मे हर्षनाथ के मन्दिर व वि स १०३० के शिलालेख में इस सम्बन्ध मे पर्याप्त सामग्री[26] उपलब्ध है । शिलालेख मे अनन्त गोत्र के साधुओ का उल्लेख है जो वृदिक की शाखा के थे । इस लेख की पक्ति स ३२ म विश्वरूप नामक गुरु को "पचार्थलाकुलाम्नाये' कहा गया है । इसका शिष्य अल्लट हुआ । यह रणपल्लिका ग्राम में रहता था और "सासारिकक्रमाम्नाय" का मानने वाला था । प्रस्तुत लेख की २३वीं पक्ति मे इसे "आजन्मब्रह्मचारीदिगमलवसन सयमारमातपस्वी' कहा गया है । इससे पता चलता है कि यह शैव साधु भी नग्न रहता था । इसकी २६वी पक्ति में अल्लट के शिष्य भावद्योत का उल्लेख है जो पाशुपत व्रत मे एक निष्ट था । इस प्रकार प्रतीत होता है कि हर्ष-नाथ का यह शिवालय इन पाशुपत साधुओ का केन्द्र स्थल रहा था । नासुण के लेख मे वर्णित है कि नीललोहित[27] शिव का मन्दिर गामुण्ड स्वामी नामक एक शैवाचार्य ने स्थापित किया था । धनोप के लेख मे भी नग्न भट्ट रक नामक साधु का उल्लेख है जिसने शिव मन्दिर की प्रतिष्ठा कराई थी ।[28] अर्थूणा (बासवाडा) क्षेत्र मे भी लकुलीश की प्रतिमायें मिली हैं । यहा के मण्डलेश्वर शिवालय में जो वि.स ११३६ में परमार राजा चामुण्डराय के द्वारा बनाया गया था द्वार पर लकुलीश की प्रतिमा बनी है ।[29] यहा के साधुओं का वर्णन नहीं मिलता है ।

आबू के वि.स० १२६५ के एक लेख में शैवाचार्य केदाररा शि का उल्लेख है । इसे 'अमलचपलगोत्रप्रोद्यताना मुनीनामजनि तिलक स्वरूपस्य केदारराशि" कहा गया है । इसी लेख की १५वी पक्ति मे "शान्ता" नामक ब्रह्मचारिणी का उल्लेख है । इससे पता चलता है कि स्त्रिया भी पाशुपत सम्प्रदाय मे दीक्षित हो सकती थी ।[30] आबू के एक

---

२६ एपिग्राफिआ इडिका भाग II पृ० १२३ । वरदा वर्ष ८ अङ्क १ पृ० ६

२७. इण्डियन एन्टिक्वरी भाग LIX पृ० २१

२८. उक्त भाग LX पृ० १७५

२६. बासवाडा राज्य का इतिहास पृ०

३० वरदा वर्ष ८ अङ्क १ पृ० १०

अन्य विस० १३४२ के दाँव मठ मे एक लेख मे भावाग्नि और उसके शिष्य भावशङ्कर का उल्लेख हैं जो पाशुपत साधु थे। मारवाड मे चोहटन नामक स्थान में तीन मन्दिरो के भग्नावशेष है। इनमे से एक पर कण्डडदेव चौहान के समय का लेख है। एक ११वी शताब्दी के लकुलीश मंदिर का विस० १३६५ पौष सुदि ६ के दिन उत्तमराशि के शिष्य धर्मराशि द्वारा जीर्णोद्धार कराने का उल्लेख वहा लगे शिलालेख मे मिलता है।[31]

मध्यप्रदेश के झालावाड जिले की सीमा से लगे इन्द्रगढ से वि स. ७६७ का शिलालेख मिला है। इसमे भी पाशुपत सम्प्रदाय के विनीतराशि और दानराशि के नाम है।[32]

गुजरात से इस सम्प्रदाय के सैकडो शिलालेख और असख्य मूर्तिया मिली है। यहा कई आचार्य हुये हैं जो चालुक्य और बाघेला राजाओ के गुरु थे। सिंत्राप्रशस्ति मे इस सम्बन्ध मे विस्तार से लिखा हुआ है। इन आचार्यों में से कुछ नाम ये है श्री वच्छकाचार्य दीर्घिाय भावबृहस्पति विश्वेश्वरराशि बृहस्पतिराशि त्रिपुरान्तकराशि आदि।[33]

दक्षिणी भारत मे भी यह सम्प्रदाय खूब फैला। यहा बिल्लुक नामक एक साधु को तो पाशुपताचार्य लकुलीश का अवतार तक कहा गया है। इस सम्बन्ध में कई शिलालेख वहा मिले हैं जिनमे 'लकुलिन' शब्द प्रयुक्त हुआ है।

इन शिलोत्कीर्ण प्रशस्तियो मे वर्णित आचार्यों के अतिरिक्त वामध्वज नामक एक पाशुपताचार्य द्वारा विरचित ग्रन्थ भी मिले हैं। अगर चन्द नाहटा ने राजस्थान भारती में इस सम्बन्ध में विस्तार से विवेचन किया है।

उपमिति भवप्रपच कथा के प्रस्ताव ४ प्रकरण १२ मे जो विवरण प्रस्तुत किया है उसमे पता चलता है कि उस समय कई पाशुपतो की

---

३१. जोधपुर राज्य का इतिहास पृ०

३२ एपिग्राफि आ इण्डिका भाग XXXII पृ० ११३

३३. सित्रा प्रशस्ति की पक्ति १८,१९ २० और २१ में कार्तिक राशि का नाम है जिसे "गार्गेय गोत्राभरण" लिखा है। इसका शिष्य वाल्मिकी राशि था और उसका त्रिपुरातक।

शाखायें थी। ये दोनों से भिन्न थी। ये पाशुपत, शैव पाशुपत, दिगम्बर शंख धर्म नारा (कनफटे योगी) आदि थे। हरिभद्र सूरि के षट् दर्शन समुच्चय के अनुसार कुछ पाशुपत विवाह करते थे और कुछ अविवाहित होते थे। गुजरात के साधु विवाह करते थे। सिन्ना प्रशस्ति मे इसका विस्तार से उल्लेख है।

लकुलीश प्रतिमा

लकुलीश की मूर्ति में शिव को एक हाथ में बिजोराफल और दूसरे हाथ में लकुल लेकर पद्मासन में बैठे हुये घुंघराले बालों सहित उत्कीर्ण किया जाता है। लकुलीश उर्ध्व रेता होता है अतएव लिंग का चिन्ह भी बना रहता है। मूर्तिकला की दृष्टि से लकुलीश का यह वर्णन अत्यन्त प्रसिद्ध है:—

नकुलीश उर्ध्वमेढ्ं पद्मासन सुस स्थितम्।
दक्षिणे मातुलिंग च वामे दंड प्रकीर्तितम्।"

लकुलीश की यह प्रतिमा मुख्य द्वार के बाहर उत्कीर्ण होती है। साधारणतया लकुलीश का मंदिर शिव मंदिर से अभिन्न होता है। अन्तर केवल द्वार पर खुदी हुई लकुलीश की मूर्ति से ही प्रतीत होता है।

भारतीय मूर्ति कला के इतिहास में लकुलीश की प्रतिमा अपना विशिष्ट स्थान रखती है। दूर से जैन तीर्थङ्करों-सी प्रतीत होने वाली यह प्रतिमा विशेष आकर्षण का विषय बनी रहती है। जिस प्रकार पाशुपताचार्यों ने बीज और बिन्दु का समन्वय करके अर्द्धनारीश्वर की कल्पना की थी उसी प्रकार लकुलीश की प्रतिमा की कल्पना में उन्होंने शाक्त और शैव सिद्धान्तों का समन्वय किया प्रतीत होता है। इस प्रतिमा मे दण्ड बिजोराफल और लिंग चिन्ह ही इसे जैन प्रतिमा से भिन्न सिद्ध करते हैं। कारवा माहात्म्य नामक ग्रन्थ के ४ थे अध्याय की परिसमाप्ति पर लकुलीश के लिये 'तीर्थङ्कर' शब्द भी प्रयोग में लिया गया[३४] है। अतएव प्रतीत होता है कि इस मूर्ति की रचना करते समय कलाकारों के सम्मुख

---

३४. *आर्कियोलोजिकल सर्वे रिपोर्ट सन् १६०६–७, पृ २८० महाराणा कुम्भा पृ १८६*

प्राय मूर्तियों का स्वरूप अवश्य रहा था। तिलस्मा की मूर्ति में हाथ के आयुधो मे बिजोरा की जगह नारियल हैं। माडलगढ़ के मन्दिर की मूर्ति में दण्ड की जगह साधारण डडा है। तिलस्मा की उपरोक्त मूर्ति जैन पार्श्वनाथ की प्रतिमा सी दिखाई[35] पड़ती है। हाल ही में श्री रतनचन्द्र अग्रवाल ने कई लकुलीश और शिव मूर्तिया ऐसी ढूढ निकाली हैं जिन पर जैन तीर्थङ्करो की तरह श्रीवत्स का चिन्ह भी बना हुआ है। इन्होंने इस सम्बन्ध में नागदा के सास बहु देवालय की आसनस्थ शिव प्रतिमा, आहड के गगोद्‌भव कुण्ड के पास की जटाधारी शिव प्रतिमा अजमेर सग्रहालय की लकुलीश की प्रतिमा विशेष उल्लेखनीय बतलाई है।

लकुलीश की प्रतिमाओ में दो की जगह चार हाथ भी होते हैं इन प्रतिमाओ में झालावाड कोटा सग्रहालय की लकुलीश प्रतिमायें विशेष रूप से उल्लेखनीय है। झलावाड वाली प्रतिमा डग नामक स्थान से प्राप्त हुई थी। कन्सुवा के मालव सवत ७६५ वाले लेख वाले मदिर में भी चतुर्भज लकुलीश प्रतिमा का अकन है। बाडोली के शिवालय में एक गान्धर्व किन्नरियो से युक्त चतुर्बाहु वाली लकुलीश प्रतिमा है। इसके सिर पर जटाजूट बना हुआ हैं। इसी प्रकार इसी देवालय में एक शिला पर ब्रह्मा और विष्णु के साथ चतुर्बाहु लकुलीश का सुन्दर अंकन हो रहा हैं। चित्तौड के सूर्य मन्दिर मे भी चतुर्बाहु आसनस्थ लकुलीश प्रतिमा उत्कीर्ण है। कुम्भश्याम के मदिर में स्थानक लकुलीश की प्रतिमा अपने ढग की विशिष्ट प्रकार की है। यहां जटाधारी शिव के केवल २ हाथ है और स्थानक मुद्रा में है। वामहस्त में सर्प वेष्टित दण्ड है और दाये हाथ में बिजोरा। राजस्थान में तो स्वतन्त्र द्विबाहु लकुलीश की प्रतिमायें बहुत ही कम मिली है। दशपुर से भी गुप्तोतर युगीन् एव स्थानक द्विबाहु शिव

३५. महाराणा कुम्भा पृ १८६

३६. वरदा वर्ष ७ अक २ में श्री रतनचन्द्र अग्रवाल का लेख।

३७. शोध पत्रिका वर्ष ८ अङ्क ३ में 'श्री रतनचन्द्र अग्रवाल का' लेख

३८. वरदावर्ष ९ अंक ४ में—

या १३६८--६६ ई० में घटित होने से दत्त महोदय कल्पना करते है कि खेता और रणमल के मध्य युद्ध इसके पश्चात् हुआ ³ होगा। इसके साथ ही साथ वे यह भी कहते हैं कि मालवे के सुल्तान अमीशाह के साथ भी खेता का युद्ध होना प्रसिद्ध है, जो वि० स० १४६२ (१४०५ ई०) तक जीवित था। अतएव अमीशाह की निधन तिथि को ही खेता की निधन तिथि मानी जानी चाहिए।

श्री दत्त का आधार काल्पनिक तर्क है। कुंभलगढ़ प्रशस्ति के रचनाकाल के लगभग ही विरचित किये गये सोम सौभाग्य ⁴ काव्य में

(३) कुंभलगढ़ प्रशस्ति का मूल श्लोक इस प्रकार है—

"माद्यन्माद्यन्महेभप्रखरखरहतिक्षिप्तराजन्ययूथो।
य खानः पत्तनेशो दफर इति समासाद्य कुण्ठीबभूव ॥
सोय मल्लो रणादिः शकनुलवनितादत्तवैधव्यदीक्षः।
कारागारे यदीये नृपतिशतयुते सत्तर नाति लेभे ॥ १६६ कु० प्र०
वीर श्रीरणमल्ल दुर्विलगरुदनपालगर्वान्तक।

रुकुर्जद्गुर्जरमण्डलेश्वरमसौ कारागृहे चीवसत् ॥२३॥ ची० प्र०
ईडर के राव रणमल्ल की वीरता में संदेह नहीं किया जा सकता है। समसामयिक जैन ग्रंथो मे "संग्रामसंत्रासितनैक शाखी—सूरेपुरेखारणमल्ल भूप.", वर्णित है। रणमल्ल काव्य में उसका राजस्थान जीतना वर्णित है। सोम सौभाग्य काव्य मे जो महाराणा कुंभा के शासन काल में विरचित किया गया था, के ७ वें सर्ग के श्लोक स० ५ में भी प्रसंगवश ऐसा ही उल्लेख है।

(४) श्री वाचकोत्तमपद खशरधिचद्र सवत्सरे (१४५०) विगतमत्सर-
चित्तवृत्तेः। अब्दैः समस्य सभमूत नखसमिताब्दे वाब्देन सन्मधुरि-
मातिशयेन तस्य ॥१४॥
श्री मेदपाद विकटावनिपृद्रतुल्ये विस्तीर्णं देवकुल सकुलमध्य मागे।
श्री ख्यात देवकुलपाटकपत्तने ते श्री वाचकाः समागमन् मुनिवृ द-
युक्ताः ॥१६॥
श्री लक्ष ,भूमिपति पति मान्यवदान साधु श्री रामदेवसचिवोत्तम
चुण्डमुख्याः। श्री मद्गुरोरभिमुख समुखा महेभ्या जग्मु विभूषित
देहदेशाः ॥१७॥ सोम सौभाग्य काव्य पचमसर्ग

वि० स० १४५० में ही मेवाड में महाराणा लाखा को शासक के रूप में वर्णित किया है। उस समय मेवाड राज्य का प्रधान रामदेव नवलखा था। इसने आचार्य सोम सुन्दरसूरि का देलवाडा मे स्वागत किया था। उस समय राजकुमार चु डा मुख्यमत्री का कार्य करता था। इस ग्र थ में वर्णित सारी घटनाए वि० स० १४६५ की चित्तौड के महावीर जैन मदिर को प्रशस्ति और 'गुरु गुण रत्नाकर काव्य" से मिलती हैं। सोम सौभाग्य काव्य में जब वि० स० १४५० में ही मेवाड मे महाराणा लाखा को शासक के रूप में विद्यमान होना वर्णित कर दिया गया है, तब वि० स० १४६२ तक उसके पिता के जीवित रहने का प्रश्न ही नहीं पैदा होता।

रामदेव नवलखा और इसके पुत्र सारग और सहणपाल कई वर्षों तक मेवाड मे प्रधान के पद पर रहे थे। रामदेव महाराणा खेता के समय से प्रधान था। करेडा के जैन मदिर का वि० स० १४३१ का विज्ञप्ति लेख इस [5] सम्बन्ध मे द्रष्टव्य है। राणा लाखा ने इसे बहुत सम्मानित किया था। इसे जैन लेखो मे "श्रीउर्मोत्कटमेदपाटसचिव श्रीरामदेव" लिखा मिलता है। इसके और उसकी पत्नी मेला देवी के कई शिलालेख मिलते है। इसके पुत्र सहणा का उल्लेख महाराणा कु भा के मुख्यमत्री के रूप मे वि० स० १४६१ के लेख मे है। इसके परिवार के अन्य सदस्यों का उल्लेख आवश्यक वृहद्वृत्ति की प्रशस्ति और करेडा के मदिर के एक लेख म है। दूसरे पुत्र सारग का उल्लेख वि. स. १४६४ के नागदा को अद्भुतजी की मूर्ति के लेख में है। इसी प्रकार सोम सुन्दरसूरि के मेवाड से कई लेख मिले हैं। ये मेवाड मे प्रथम बार वि० स १४५० मे आये थे। अतएव दोनो ऐतिहासिक व्यक्ति हैं और सोम सौभाग्य काव्य मे उल्लेखित घटनाओ की भी इससे पुष्टि होती है।

---

(५) वि० स० १४४६ में इस विज्ञप्ति लेख की प्रतिलिपि कपडे पर की गई थी,
सवत् १४४६ वर्षे श्री दीपोच्छव दिवसे समर्थितमिद ॥श्री॥ मूल विज्ञप्ति लेख में रामदेव का उल्लेखनीय वर्णन मिलता है यथा
"श्रीकरहेटाख्य श्रीपार्श्वनाथजिनचरणपरिचर्याप्राप्तसादवरेण सुधा करेणेव सदवगुरुसगमस्पृहयालुनागुराकृतसुकृतसम्बोधयदश श्रीम सराज्यप्रधानसाधुरामदेव श्रावक वरेण ......',

इसके अतिरिक्त कुंभलगढ़ प्रशस्ति के श्लोक १९६ एवं कीर्ति स्तम्भ प्रशस्ति के श्लोक २३ (जो मूलतः फुटनोट स० ३ मे दिये है) म जो वर्णन है, उनका सार यही है कि वहा शत्रु को प्रबल घोषित किया गया है। यहा प्रशस्तिकारों का उद्देश्य खेता की वीरता बतलान म लिये उनके द्वारा हराये गये शत्रुओ को भी अत्यन्त प्रबल वर्णित किया है। यह अलंकारिक वर्णन है। अगर यह समसामयिक होता तो उल्लेखनीय हो सकता था। ये दोनों प्रशस्तिया लगभग ५० वर्ष बाद की है। केवल मात्र इन दो श्लोको के आधार पर ही हम खेता की निधन तिथि इतनी पीछे नही रख सकते हैं। सोम सौभाग्य काव्य म जब वि० स० १४१० मे लाखा को मेवाड़ का शासक वर्णित किया है फिर वि स १४६२ के बाद तक उसके पिता खेता को शासक रूप मे माना जाना असगत है।

खेता की निधन तिथि वि० स० १४६२ मानने स मोकल का जन्म तिथि वि० स० १४६५ ६६ के लगभग मानी गई है जो किसी की स्थिति मे सही नही हो सकती। मोकल की पुत्री लालादे वि० स० १४८० के पूव विवाह योग्य हो चुकी थी और गागरोण के शासक अचलदास खींची को ब्याही (६) थी। अतएव अगर मोकल की जन्म तिथि १४६५ ६६ मे मानते है तब १४८० म कभी भी उसके विवाह योग्य पुत्री नही हो सकती। यह तभी समव है जब कि मोकल की जन्मतिथि वि० सं० १४५२ के पूव मानी जावे। यह लाखा के शासन-काल म जन्मा था।

अतएव इन सब घटनाओ पर विचार करते हुये यह मानना पडेगा कि महाराणा खेता की निधन तिथि वि० स० १४६२ नहीं हो सकती। यह तिथि वि० स० १४३६ के लगभग ही होनी चाहिये।

---

(६) मेरा लेख 'महाराणा मोकल की जन्मतिथि" राजस्थान भारती ६ अक ४ मे प्रकाशित द्रष्टव्य है।

[वरदा मे प्रकाशित]

पूर्व मध्यकालीन जैसलमेर | १७

जैसलमेर क्षेत्र ऐतिहासिक और सांस्कृतिक दृष्टि से बड़ा महत्वपूर्ण है। हाल ही में हुये सर्वेक्षण के अनुसार लूणी नदी के तटवर्ती भागों मे प्रस्तर कालीन सभ्यता के अवशेष मिले हैं। सिंधुघाटी सभ्यता के अवशेष हड़प्पा और मोहनजोदडों के अतिरिक्त बीकानेर में कालीबंगा और सौराष्ट्र में लोथल नामक स्थान से भी मिल चुके हैं। अतएव आश्चर्य नहीं कि उत्खनन से इस क्षेत्र में भी उक्त सभ्यता के चिन्ह मिल जावें। स्मरण रहे कि मोहन जोदडों में ऊट के अवशेष भी मिले थ। अतएव उनका भी इस रेगिस्तान से अवश्य सम्पर्क रहा होगा। पौराणिक काल मे इस क्षेत्र में कौन शासक हुये थे इसका प्रामाणिक वर्णन उपलब्ध नहीं है।

विद्वानो की मान्यता है कि पश्चिमी राजस्थान का कुछ भाग जिसमें जैसलमेर भी सम्मलित है यूनानी राजा सेल्युकस के राज्य के अन्तर्गत था एव चन्द्रगुप्त मौर्य के साथ सधि हो जाने पर यह मौर्य साम्राज्य का अ ग बन गया। इस क्षेत्र पर जाट और मेवों का अधिकार लम्ब समय तक रहा था। ये दोनो एक दूसरे के पड़ोसी थे और बराबर एक दूसरे से सघर्ष किया करते थे। कभी जाट विजय प्राप्त करते तो कभी मेव।[1] यहीं से ये जातियाँ कालान्तर में राजस्थान के अन्य भागो और गुजरात में चली गयी प्रतीत होती है।

भाटियों का प्रारम्भिक इतिहास

जैसलमेर के भाटी राजा यदुवंशी हैं। इनकी मान्यता है कि द्वारिका स यादवों का एक दल काबुल की तरफ चला गया जहा से

(१) इन्टिट एण्ड डानस। हिस्ट्री आफ इंडिया भाग १ पृ० ५१६-२१

७ वीं शताब्दी में वापस ये लोग भारत की तरफ लौट आये। ख्यातों में कई राजाओं के नाम मिलते हैं। वंश के आदि पुरुष का नाम राजा रज बतलाया जाता है। इसके पुत्र का नाम गज था : यह पजाब के सीमांगन्त में शासन करता था। टॉड ने इसे कलियुगी सवत् ३००८ वैशाख सुदी ३ को होना माना है, परन्तु इसका कोई प्रमाणिक आधार नहीं है। इसका उत्तराधिकारी शान्ति वाहन नामक राजा हुआ। इसका भी पजाब में स्यालकोट के आसपास अधिकार रहा माना जाता है। इसका पुत्र बलन्द हुआ। जिसके भट्टिक नामक पुत्र हुआ। वर्तमान भटिन्डा एवं हनुमानगढ़ (भटनेर) की स्थापना इसके द्वारा ही की गई[2] मानी जाती है जो कहां तक सही है कहा नहीं जा सकता है।

भाटियों का जैसलमेर क्षेत्र में बसना

राजा भट्टिक के पीछे ही भट्टिक सवत चला था। यह किसी बड़ी विजय का सूचक है। ख्यातो में मगलराव के राजस्थान में आकर के बसने का उल्लेख किया गया है। किन्तु भट्टिक के ही इस क्षेत्र में बसना मानना युक्तिसगत है क्योंकि किसी सवत का प्रचलन किसी साधारण घटना से नहीं, किसी विशेष विजय की परिचायक होना चाहिये। यह पश्चिमी भारत की विजय का सूचक ही माना जाना चाहिये। भट्टिक की तिथि वि० स० ६८० ही ठीक प्रतीत होती है। इसका आधार यह है कि प्रतिहार राजा बाऊक के लेख में जो वि० स० ८९४ का है अपने ५ वें पूर्वज शीलुक के लिये देवराज भाटो को जीतने वाला लिखा है। देवराज भट्टिक से ७ वी पीढि में हुआ था। प्रत्येक पीढ़ि के लिये २० वर्ष लेवें तो शीलुक का समय वि० स० ८१४ और इसी हिसाब से भट्टिक का समय ६८० के आसपास आ जाता है।[3]

भट्टिक के पीछे तन्नूजी उल्लेखनीय शासक हुये। तन्नूजी ने तन्नकोट में राजधानी[4] स्थापित की ऐसा ख्यातो मे लिखा मिलता है। ऐसा लगता है कि अरब आक्रमणकारी जुनैद ने वल्ल मडल (जैसलमेर

---

(२) टॉड-एनल्स एन्ड ए टिक्वीटिज भाग २ पृ १७३ से १७८

(३) गेहलोत राजपूताने का इतिहास भाग १ पृ० ६५१

(४) नैणसी की ख्यात (रामनारायण दूगड) भाग २ पृ० २६२

क्षेत्र) पर भी आक्रमण किया था और यहा से मारवाड होकर उज्जैन[5] गया था। इसके आक्रमण के फलस्वरूप राजनैतिक परिवर्तन हुआ और इसी का लाभ उठाकर भाटियों ने शक्ति एकत्रित करली हो। देवराज भाटी शक्ति सम्पन्न हुआ था। राज्य विस्तार के मामले में प्रतिहार राजाशीलुक के साथ संघर्ष हुआ था जिस में इसकी हार हो गई थी[6]। ख्यातो में लखा है कि इसके समय में राजधानी लोद्रवा स्थापित होगई थी।

देवराज के बाद सबसे उल्लेखनीय घटना मोहम्मद गजनी का आक्रमण है। जब मोहम्मद सोमनाथ पर आक्रमण करने जारहा था तब वह लोद्रवा के माग से गया था। यहा के भाटी शासक ने उसका सामना भी किया था किन्तु कोई सफलता नही मिली। उस समय बछराज नामक शासक हुआ था। इसका शासनकाल वि० स० १०६५ स ११०० तक माना जाता है।

वस्तुत. उस समय भाटियो को यवनों के आक्रमणो का निरन्तर मुकाबला करना पड रहा था। पोकरण के बालकनाथ के मदिर के वि० सं० १०७० के लेख मे गायो की रक्षा[7] करते हुये स्थानीय गुहिल और परमारो के बलिदान का उल्लेख है। अतएव प्रतीत होता है कि भाटियो को भी उस समय इनसे अवश्य संघर्ष करना पड रहा होगा!

विजयराव लांजा

विजयराव लाजा एक बडा प्रबल शासक हुआ था। ख्यातो मे विजयराव नाम के २ शासक हुये हैं। एक के भट्टिक सवत् ५०१, ५४१, और ५५२ के शिलालेख[8] मिले है। इसके विरुद भी परम भट्टारक महा०

(५) राजस्थान थ्रू दी एजेज भाग १ पृ० १११

(६) तत शीलुको जात. पुत्रो दुर्व्वारविक्रम
येन सीमा कृता निश्या स्त्र (त्र) वणीवल्लदेशयोः ॥
भट्टिक देवराजयो वल्लमण्डलपालक
निपात्य तत्क्षण भूमौ प्राप्तवान् (वांछ) छत्र चिन्हकम् ॥

(७) सरदार म्युजियम रिपोर्ट वर्ष १६३१ पृ ८

(८) रिसर्चर वर्ष III–I; पृ० ५० से ५३

राजधिराज परमेश्वर मिलते हैं। इससे प्रतीत होता है कि यह एक प्रबल शासक था। इसका विवाह गुजरात के चालुक्य शासक जयसिंह की कन्या से हुआ था। तब इसे "उत्तर मट किवाड" कहा गया था[9] जिसका अर्थ है कि भारत पर उत्तर की ओर से होने वाले आक्रमणों का दृढतापूर्वक मुकाबला करना। उस समय की राजनैतिक परिस्थिति से विदित होता है कि कुमारपाल चालुक्य ने पश्चिमी राजस्थान तक अपना अधिकार स्थापित कर लिया था। उसने नाडोल के चौहान शासक आल्हण को किराडू दे दिया किन्तु कुछ वर्षों बाद उसे हटाकर उक्त प्रदेश वापस सोमेश्वर परमार को लौटा दिया था।[10] सोमेश्वर के किराडू के वि० स० १२१८ के शिलालेख में लिखा है कि चालुक्य शासक की आज्ञा से उसने तणकोट जीतकर उसे वापस वहां के अधिकारी को लौटा[11] दिया। तणकोट का भू-भाग उस समय भाटियों के राज्य मे ही था। अतएव प्रतीत होता है कि जैसलमेर क्षेत्र पर कुमारपाल का कुछ समय के लिये अधिकार हो गया। उस समय या तो विजयराज शासक या अथवा इसका पिता। बहुत कुछ सभव है कि इसका पिता उस समय शासक रहा होगा। विजयराव ने चालुक्यो से सभवतः मुक्ति प्राप्त की और वास्तविक उत्तराधिकारी जैसल से राज्य छीन लिया। विजयराव का सबसे पहला शिलालेख भ स ५४१ का मिला है।[12] जिससे प्रतीत होता है कि वि स १२२१ के पूर्व वह अवश्य शासक हो चुका होगा। भट्टिक सवत ५४१ वाले लेख मे विजदासर

(९) मट किवाड उतराद रा भाटी भेलण भार।
बचन रखा बिजराज रो समहर बांधा सार॥
तोडा धड तुरकाण रा भोडा खान मजेज।
दाखै अनमी भोजदे जादम करे न जज॥

(१०) अरली चौहान डाइने स्टिज पृ० १३२

(११) ग्लारिज आफ मारवाड मे छपा लेख।

(१२) राजस्थान थ्रू दी ऐजेज vol I पृ० २८६ फुटनोट २। रिसर्चर vol III एव IV पृ० ५०। इ डियन हिस्टोरिकल क्वाटरली सितम्बर १९५० पृ० २३१

तालाब बनाने का उल्लेख है जो आसानी कोट के पास है। दूसरे भट्टिक संवत् ५४३ के लेख मे चाहणी देवी के मन्दिर निर्माण का उल्लेख है। स० ५५२ के लेख मे विजयराज देव की पटरानी का उल्लेख [13] है। इसका उत्तराधिकारी भोज हुआ। इसके समय मे मोहम्मद गोरी का आक्रमण हुआ। यह आबू जा रहा था मार्ग मे इसने लोद्रवा पर आक्रमण कर भोज को हराया। संभवत लोद्रवा नगर को जीतकर इसे जैसल को दे दिया। किराडू से प्राप्त वि० स० १२३५ के एक लेख मे तुरुष्कों द्वारा मन्दिर को भग्न करने का उल्लेख [14] मिलता है जिससे भी इसकी पुष्टि होती है।

जैसलमेर नगर की स्थापना

जैसलमेर नगर के निर्माण की तिथि ख्यातों मे वि० सं० १२१२ दी हुई मिलती है। डा० दशरथ शर्मा इस तिथि को अप्रमाणिक मानते हैं और यह घटना विस० १२३४ के पश्चात्[14] रखते हैं, जो ठीक है। वस्तुत मुस्लिम आक्रान्ताओं के निरन्तर आक्रमण के कारण सुरक्षित स्थान पर राजधानी स्थापित करने का विचार दृढ हुआ। नगर निर्माण का कार्य जैसल के पुत्र शालिवाहन के समय भी चलता रहा। इसका सबसे प्राचीनतम उल्लेख खरतरगच्छ पट्टावली में है जहां १२४४ वि. के एक वर्णन मे अन्य नगरों के साथ इसका भी नाम है [15] जैसलमेर भंडार में सगृहीत वि.स. १२८५ की कृति धन्य शाली भद्र चरित में इस नगर का नाम दिया है जिससे प्रतीत होता है कि नगर निर्माण के शीघ्र बाद ही जैन धर्म का केन्द्र रहा होगा। [16] ऐसा कहा जाता है कि शालिवाहन

---

(१३) ग्लोरिज आफ मारवाड़ म छपा लेख।

(१४) राजस्थान थ्रू दी ऐजेज vol 1 पृ. २८५। रिसर्चर vol III एव IV पृ. ५२

(१५) युग प्रधान गुर्वावली पृ. ३४

(१६) तदाज्ञया सद्गुरा सर्वदेवाचार्ये, मम जेसलमेरुदुर्गे। स्थितो गिरेर्वा स्व परोपकार हेतो. समाधि मतसोऽभिलाष्यन् (वि. स. १२८५ में पूर्ण भद्र लिखित धन्य शाली भद्र चरित इ० प्र'ष स. २७० जैसलमेर भण्डार),

का भाटियों के साथ संघर्ष हुआ था। इसकी मृत्यु मिजखा बल्लोच के साथ युद्ध करते हुए हुई थी। इसके बाद उसका पुत्र केजल उत्तराधिकारी हुआ जो केवल २ मास तक ही शासक रहा। इसे हटाकर इसके काका केल्हण ने राज्य ले लिया। केल्हण के बाद चाचगदेव अधिकारी हुआ। इसी समय,[17] कर्ण और जैत्रसिंह शासक हुये जो खरतरगच्छ पट्टावली के अनुसार वि स. १३४० म और १३५६ म क्रमश शासक के रूप म विद्यमान थे।[18] कर्ण के बाद लखनसेन पुण्यपाल जैत्रसिंह और मूलराज नामक शासक हुये। ख्यातो मे लखनसेन को गद्दी स उतारने का वर्णन मिलता है।

पहला और दूसरा शाका

इन आक्रमणो का उल्लेख फारसी तवारीखो मे उपलब्ध नही है, किन्तु नैणसी के वृतान्त के अनुसार पहला आक्रमण अल्लाउद्दीन खिलजी के शासनकाल मे हुआ था।[19] पहले कमालुद्दीन को लगाया किन्तु उस जब सफलता नही मिली तो उसने मलिक कफूर को इस कार्य के लिये नियुक्त किया। उसने कमालुद्दीन की राय के अनुरूप घेरा नही डालकर सीधा दुर्ग पर आक्रमण किया इसके फलस्वरूप उसे भी सफलता नही मिली। सुल्तान ने पुन कमालुद्दीन को ही लगाया जिसे ८०,००० सैनिक दिये। इस विशाल सेना के सामने स्थानीय राजपूतो की शक्ति नगण्य-सी थी। अतएव जैसलमेर वालो की हार हुई। मूलराज और रत्नसिंह वीरगति को प्राप्त हो गये। अब प्रश्न उठता है कि फारसी तवारीखो मे इस आक्रमण का वर्णन क्यो नहीं मिलता है? यह अवश्य विचारणीय है। खजाइन उल फतुह आदि कृतियां वस्तुत, समकालीन होने हुये भी सुल्तान के राज्य की तरफ स तैयार की हुई

१७ "सकलसैन्यपरिवारपरिकलितसमुखायातप्रमुदित श्रीकर्णमहानरेन्द्राणा श्रीजिनप्रबोधसूरिमुनीन्द्राणा श्रीजेसलमेरौ स १३४० फाल्गुनचतुर्मासके महता विस्तरेण प्रवेशकमहोत्सव समपनीपद्यत।"

१८ सं, १३५६ राजाधिराज श्री जैत्रसिंह विज्ञप्तया मार्गशीर्षसित-चतुर्थ्या श्रीजैसलमेरौ श्री पूज्या समायाता,।'

१९ नैणसी की ख्यात भाग २ पृ २८८ से २९७

आफिसियल हिस्ट्री नहीं है। यह कार्य तो वस्तुत स्त्रीम्हीन को दिया गया था जिसने विस्तृत रूप से फतहनामा के नाम से इतिहास ग्रन्थ तैयार किया था जिसका उल्लेख ऊपर पद्मनी वाले लेख में किया जा चुका है।

डा० दशरथ शर्मा ने प्रथम वार इस आक्रमण की ऐतिहासिकता पर प्रकाश[20] डाला था। उन्होंने भट्टिक सवत पर एक विस्तृत लेख भी प्रकाशित कराया है। इसमे भट्टिक सवत के शिलालेखो पर विस्तार से भी प्रकाश डाला गया है। प्रसगवश भट्टिक स० ६८५ (१३६५ वि.) के लेख मे गायो और स्त्रियो की रक्षा करते हुए कई वीरो की मृत्यु[21] का उल्लेख है। अतएव आपकी मान्यता है कि यह घटना निसदेह अलाउद्दीन के उक्त आक्रमण से ही सम्बन्धित है। डा० दशरथ शर्मा की इस मान्यता को प्राय सव ही विद्वान् ठीक मानते हैं। जैसलमेर के जैन मदिरों के शिलालेखों के प्रसगो पर भी आपन अपने लेखो मे ध्यान दिलाया है। पार्श्वनाथ मन्दिर के वि. स. १४७३ के लेख की पक्ति ४ मे स्पष्ट रूप से जैसलमेर पर मुसलमानो के आक्रमण का उल्लेख है।[22] इसी प्रकार सम्भवनाथ मन्दिर के वि. स १४९७ के लेखो मे भी प्रसगवश इसका उल्लेख है। वि स १४७३ वाले लेख मे रतनसिंह के पुत्र घटसिंह द्वारा जैसलमेर- दुर्ग को मुसलमानो द्वारा लेने का वर्णन है।[23] सभवनाथ वाले लेख के अनुसार

---

२०. इडियन हिस्टोरिकल क्वाटरली vol XI पृ. १४६। राजस्थान् थ्रूदी ऐजज vol I पृ. ६८२।

२१. इडियन हिस्टोरिकल क्वाटरली सितम्बर १९५९ ले. स. १८ मे ३११।

२२. यत्प्रावारवर वितोवय बलिनो म्लेच्छावनीपा अपि, प्रोद्यत्सैन्य सहस्र दुर्ग्रहमिद गेह हि गोस्वामिन । भग्नोपायबला वदत्त इति ते मुचति मान निज तत् श्री जैसलमेरु नाम नगर जीयाज्जननायक। पार्श्वनाथ मन्दिर का लेख पक्ति स. ४।

२३. श्री रतनसिंहस्य महीश्वरस्य बभूव पुत्रो घटसिंह नामा।

यह दूदा के बाद ही शासक हुआ था।[24] अतएव प्रतीत होता है कि जैसलमेर पर संभवतः २ आक्रमण हुये थे। पहला रतनसी के समय अलाउद्दीन का और दूसरा दूदा के समय हुआ। दूदा केल्हण का प्रपौत्र था। डा. दशरथ शर्मा की मान्यता है कि इस के समय आक्रमण तुगलक शासकों की ओर से हुआ था।[25] सम्भवतः फिरोजशाह तुगलक उस समय शासक रहा हो। दूदा ने रतनसी की मृत्यु के बाद दुर्ग पर मुसलमानो को हराकर अधिकार किया था। यह घटना वि. स. १३८३ के पूर्व अवश्य हो चुकी थी क्योंकि खरतरगच्छ पट्टावली मे यहाँ स्थानीय शासकों का उल्लेख है।[26] ख्यातो मे लिखा मिलता है कि राठोड़ो ने भी कुछ समय के लिये दुर्ग अपने अधिकार मे रखा था। दूदा के बाद जब दुर्ग मुसलमानो के हाथो चला गया तो उसके वंशजों के अधिकार में यह नगर फिर नही आ सका। यही कारण है कि प्रशस्तियो और कई ख्यातो मे उसका नाम नही है। रतनसी के पुत्र घटसिंह ने नगर का उद्धार किया और फिर से अपना अधिकार यहा स्थापित किया।[27] इसके सम्बन्ध मे नैणसी ने एक लम्बी कहानी दी है जिसके अनुसार घटसिंह ने एक लम्बे समय तक बादशाह की सेवा मे रह कर राज्य प्राप्त किया था।[28] इसकी मृत्यु भट्टिक सवत ७३८ मिगसर बुदि ११ बुधवार को हुई थी। इसके साथ इसकी

यः सिंहवन् म्लेच्छगजान् विदार्य बलादलाद्भप्रदरीम रिम्य. ॥७॥
उक्त लेख पक्ति ५।

२४. "तस्मिन् यादववंशे। राउल श्रीजइतसिंह मूलराज, रतनसिंह राउल श्री दूदा राउल श्री घटसिंह...... ...."
सम्भवनाथ मन्दिर का लेख पक्ति स० ७।

२५. इण्डियन हिस्टोरिकल क्वाटरली vol XI पृ. १४९। राजस्थान थ्रू दी ऐजेज vol I पृ. ६८३-४

२६. श्री जैसलमेरमहादुर्गमध्य निवासी सामान्यनराजध्यय महाज्ञान दैत्योत्पाटनाम श्री राजलोक-नगरलोक महामेलापकेन...."

२७. उपरोक्त फुटनोट २३

२८. नैणसी की ख्यात भाग २ अध्याय २४

कई रानियां सती हुई थी। इन रानियों मे सोढी लखुला दे, देवडी श्री रतना दे, जोहियानी, तारादे आदि के नाम[29] हैं। बहुत कुछ सभव है कि उसके ये विवाह जैसलमेर पर अधिकार कर लेने के बाद ही हुये हो।

घटसिंह के उत्तराधिकारी

घटसिंह के बाद मूलराज का पौत्र और देवराज का पुत्र केहर शासक हुआ था। शिलालेखो मे देवराज का गायो की रक्षा करते हुए मृत्यु होना लिखा मिलता है।[30] यद्यपि सम्भवनाथ मदिर के लेख की ७ वी पक्ति मे घटसिंह के बाद देवराज का उल्लेख करते हुये उसके लिये लिखा है कि "मूलराज पुत्र देवराज नाम्नो राजानोऽभूवन्" लिखा है किन्तु यह देवराज वस्तुत शासक नही हो सका था। घटसिंह के स० स० ७३८ के सती के लेख मिले हैं। अगले वर्ष केसरी को शासक के रूप म उल्लेखित किया है। भ०स० ७६६ (विस १४१६) का लेख तेमदराय की पहाडी के पास स्थित तालाब पर लगा हुआ है) जिसमे केसरीसिंह को शासक के रूप मे उल्लेखित किया हुआ है[31]। अतएव घटसिंह की मृत्यु के बाद केहरी ही उत्तराधिकारी हुआ था। यह बडा प्रतापी शासक था। भ० स० ७३६ के लेख मे उसके कई विरुद दिये। इसने लम्बे समय तक राज्य किया था एव अपने पुत्र केल्हण को राज्याधिकार से वचित कर दिया था[32]। जिसके पुत्र चाचा का एक

---

(२६) इण्डियन हिस्टोरिकल क्वाटरली सितम्बर १६४६ पृ २३० लेख स० २४ मे ३०

(३०) सुनदनत्वाद्विबुधैर्नु तत्वाद् गोरक्षाणाच् श्रीदसमाश्रित तत्गात्
श्रीमूलराजक्षितिपाल सूनुर्यथार्थ नामजनि देवराजः॥८॥
पार्श्वनाथ का मदिर का लेख प० ६ और ७

(३१) इण्डियन हिस्टोरिकल क्वाटरली सितम्बर १६५६ ले स।

(३२) ऐसी मान्यता है कि इसने अपना शादि आपके पिता की इच्छा के विरुद्ध करली थी। अतएव इस राज्याधिकार से वचित कर दिया था।

लेख विसं० १४५५ का बीकानेर के संग्रहालय में सुरक्षित है। इसे डा० दशरथ शर्मा ने राजस्थानी पत्रिका में प्रकाशित कराया है। केहरी का उत्तराधिकारी लक्ष्मणसी हुआ था। इसका 'राज्यारोहण ख्यातों में विसं १४५१ बतलाया जाता है जो निसंदेह गलत है। केहर की मृत्यु विसं० १४५३ में हुई थी। इसकी मृत्यु पर रानी कपूरदे सती हुई थी। चिन्तामणि पार्श्वनाथ का मन्दिर इसी लक्ष्मण के समय बना था। इस मन्दिर में २ शिलालेख लग रहे हैं। इन प्रशस्तियों से ज्ञात होता है कि निर्माण के समय इस मंदिर का नाम "लक्ष्मण विहार" रखा गया था।[33] इसका निर्माण कार्य विसं. १४५६ में शुरू किया गया था जो लगभग १४ वर्ष तक चला और वि सं० १४७३ में पूर्ण हुआ। साधु कीर्तिराज ने इसकी प्रशस्ति की रचना की और वाचक जयसागर गणि ने इसे संशोधित किया और कारीगर धन्ना ने इसे खोदा। ओसवाल वंशीय राका गोत्र के सेठ जयसिंह ने इसे बनाया। दूसरे लेख में रांका परिवार वालों का सविस्तार से उल्लेख है। इस परिवार वालों ने वि०सं० १४२५ में तीर्थयात्रा, वि० १४२७ में प्रतिष्ठादि महोत्सव और वि०सं० १४३६ और वि०सं० १४४६ में शत्रुञ्जय और उज्जयंत तीर्थों की यात्रायें की थी।[34]

मंदिर का निर्माण सागरचन्द्र सूरि ने जिनराज सूरि की सम्मति से जो खरतरगच्छ के थे, शुरू करवाया था। इस सम्बन्ध में ऐसा वर्णन मिलता है कि क्षेत्रपाल की मूर्ति को हटा देने से उसने अपने प्रभाव से जिनवर्द्धन सूरि का चतुर्थ व्रत (ब्रह्मचर्य) को भंग करा दिया। समस्त खरतरगच्छ संघ ने एकत्रित हो करके नवीन व्यवस्था की थी।[35] जैसलमेर चैत्य परिपाटियों में इस मंदिर की कई प्रतिमाओं का वर्णन मिलता है।

(३३) श्रीलक्ष्मणविहारोयमिति विख्यातो जिनालयः। श्रीनदीवर्द्धमानश्च वास्तुविद्यानुसारतः ॥२५॥ श्रीपार्श्वनाथमंदिर का लेख ॥

(३४) जैन लेख संग्रह भाग ३– लें० सं० २११३ पंक्ति सं० ८, ९, १३, और २२.

(३५) उपरोक्त भूमिका पृ १५.

मारवाड़ की ख्यातों में इसका रावरणमल के साथ संघर्ष होना वर्णित है। वस्तुस्थिति जो मारवाड की ख्यातो मे वर्णित है एक पक्षीय है। फलोदी में वि स १४८६ का शिलालेख लग रहा है इसमे प्रकट होता है कि यह क्षेत्र जो कुछ समय पूर्व राठौडो के पास था भाटियो ने हस्तगत कर लिया था [36]। इस प्रकार लक्ष्मण ने राज्य विस्तार कर कई परगने हस्तगत किये थे।

लक्ष्मणजी का उत्तराधिकारी वैरसी हुआ। व्यासजी ने इसका राज्यरोहण सवत १४६६ दिया है किन्तु यह गलत है। वि० स० १४६३ के इसके शासनकाल के शिलालेख मिल चुके है [37]। अतएव इसके राज्यरोहण की तिथि वि स० १४८६ से १४६३ के मध्य होना चाहिए। सम्भवनाथ का जैन मन्दिर और लक्ष्मीनारायण वैष्णव मदिर इसके शासन काल म पूर्ण हुए थे। इसकी मृत्यु वि स० १५०५ वैशाख सुदि १३ सोमवार को हुई थी। [38] एक अन्य लेख म यह तिथि चैत्र सुदि १३ दी है। इसके उत्तराधिकारी चाचिगदेव का वि स० १५०५ का शिलालेख सभवनाथ मन्दिर की प्रसिद्ध तपपट्टिका पर लग रहा है। [39] इस प्रकार वैरसी का शासनकाल २० वर्ष लगभग तक रहा प्रतीत होता है। सभवनाथ मदिर मे २ शिलालेख वि० स० १४६७ के लगे रहे हैं। [40] इन लेखो मे जैसलमेर के राजाओ की वशावली के बाद खरतर विधिपक्ष की पटटावली दी हुई है। इसके बाद चोपडा-वशी श्रेष्ठियो की वशावली दी हुई है। इस परिवार के हेमराज आदि ने वि. स० १४६४ मे मदिर की रचना प्रारम्भ की थी और वि स० १४६७ म उसकी प्रतिष्ठा हुई थी [41]। इस प्रतिष्ठा के समय ३०० प्रति-

---

(३६) जरनल बगॉल ब्राच रायल एशियाटिक सोसाइटी वर्ष १६१५ पृ.६३

(३७) जैन लेख सग्रह भाग ३ ले० स० २११४

(३८) इण्डियन हिस्टोरिकल क्वाटरली सितम्बर १६५६ ले सं पृ० ६३ ३७ और ३८

(३६) जैनलेख सग्रह भाग ३ ले० स० २१४४।

(४०) उपरोक्त लेख स० २१३६।

(४१) "तत सवत् १४६७ वर्ष कुंकुमपत्रिकाभि, सर्वदेशवास्तव्य परा सहस्त्र श्रावकानामग्य प्रतिष्ठा महोत्सव, सा० शिवाद्यं

जिनचन्द्र जिनेश्वर जिनधर्म और जिनचन्द्र नामक साधुओं का उल्लेख है। इसे देवभद्र नामक एक साधु ने पूर्ण किया था।

(२) त्रिशष्टि शलाका पुरुषचरित्र महाकाव्य (दशमपर्व)। इसमे ११३ पत्र है और इसकी प्रतिलिपि भी वि म. १५३६ मे उक्त देवभद्र ने पूर्ण की थी।

(३) कपूर मजरी नाटिका। वि० स० १५३८ माघ शुक्ला १५ को उक्त देवभद्र ने इसकी प्रतिलिपि की थी। इसकी एक अन्य और प्रति है जिस की भी उक्त आचार्य द्वारा जो विस १५३८ श्रावण सुदि ७ को प्रतिलिपि की गई।

वि. स. १५३६ मे हुआ निर्माण कार्य उल्लेखनीय है।[47] उक्त सवत मे ऋषभदेव का मदिर शान्तिनाथ का मदिर और अष्टापद देव मदिर बने थे। असख्य मूर्तियो की प्रतिष्ठा हुई थी। मूर्तिलेख अधिकाशत गणधर चोपडा परिवार के हैं। देवकर्ण के पुत्र जैत्रकर्ण जैत्रसिह या जयतसिह की सबसे पहली ज्ञाततिथि भगवती सूत्र ग्र थ की विस १५५८ की प्रशस्ति[48] है। अतएव इसके पिता देवकर्ण की मृत्यु उक्त सवत के पूर्व अवश्य हो गई थी। इस जैत्रकर्ण के शासनकाल के शिलालेख भट्टिक सवत ८८२ (१५६२ वि.) के मिले[49] है एक लेख मे राणी अनार-देवी की मृत्यु का उल्लेख है जो देवकर्ण की महारानी और राणा भीमसिंह की पुत्री थी। दूसरा लेख घडसीसर तालाब जैसलमेर मे लग रहा है।

बीकानेर के इतिहास राठौड मे राव लूणकर्ण का जैसलमेरपर आक्रमण करना उल्लेखित[50] है। बीकानेर वाले इसमे अपनी विजय और भट्टिवश प्रशस्ति मे जैसलमेर वालो की विजय होना बीकानेर के किवाड लाना

(४७) जैन लेख संग्रह भाग ३ ले० स २१२०–२१, २१५३–५४, २३५८ २३६६, २३६६, २४०२–४

(४८) जैसलमेर ताडपत्रीय भडार सूची पृ १३

(४६) इंडियन हिस्टोरिकल क्वाटरली १६५६ पृ. २३२ ले. स. ४१ और ४२।

(५०) ओझा बीकानेर राज्य का इतिहास पृ ११५–११६

वर्णन किया गया है।[51] इसकी मृत्यु वि॰ १५८५ मे हुई थी।

जैत्रसिंह के पश्चात् लूणकर्ण शासक हुआ था। व्यासजी ने जैसलमेर के इतिहास मे इसके पूर्व इसके ज्येष्ठ भ्राता कर्मसी के शासक होने का उल्लेख किया है किन्तु यह गलत प्रतीत होता है। लूणकर्ण का युवराज के रूप मे वि॰ १५८१,१५८३ और १५८५ के लेखो मे स्पष्टत, उल्लेख किया हुआ है।[52]यह एक महत्वपूर्ण शासक था। इसने जोधपुर और बीकानेर के संघर्ष का लाभ उठाकर फलोदी परगना का भाग छीन लिया था जिसे मालदेव ने वापस हस्तगत कर लिया। इस समय भारत मे बडे परिवर्तन हो रहे थे। खानवा युद्ध के बाद मेवाड की शक्ति कमजोर होती जारही थी। गुजरात के सुल्तान के आक्रमण से वहा की स्थिति और विषम होगई। हुमायू शेरशाह से हार भागकर मालदेव की सहायता का प्रयास कर रहा था। वह फलोदी होकर जैसलमेर राज्य की सीमा के पास स्थित देरावर गाव मे पहुँचा था और वहा से जोगीतीर्थ तक गया था किन्तु कोई निश्चित निर्णय नही लिया जासका और उसे वहा से वापस अमरकोट लौट जाना पडा। जैसलमेर के शासक ने स्पष्ट रूप से कोई सहयोग नही दिया।

इस समय राठोड मालदेव शक्ति एकत्रित कर रहा था। इसका एक विवाह जैसलमेर की राजकुमारी उमादे के साथ भी हुआ था। यह राजकुमारी जीवन भर तक मालदेव से रूठी रही। शेरशाह के आक्रमण के समय परस्पर कुछ बात चली थी, किन्तु ईसरदास कवि द्वारा उसे प्रोत्साहित करने पर बात रुकी ही रही[53]

---

(५१) श्रीबीकानगराधिपतिबलवान् श्री लूणकर्ण, प्रभु
सेहे यस्य पराक्रम न महतो विद्राविते सगरात ।।
उद्वास्यास्य पुर कपाटयुगल चानीय तत पत्तनात ।
सस्थाप्याशु निजेपुरेयदुपति प्रीतोभवद् विश्रमी ।।४४।। भट्टिवंश महाकाव्य

(५२) जैन लेख सग्रह भाग ३ के स. २१५४, ५५

(५३) ईसरदास ने निम्नाकित दोहा कहा था अतएव उमादे गर्वित होकर कोसाना मुकाम पर ही ठहर गई—

तीसरी शाखा

वि.स. १६०७ मे कधार का अमीर ग्रलीवा राजच्युत होकर जैसलमेर पहुँचा। रावल ने उसे राज्याश्रय दिया। इसके मनम धोखा था। इसने एक दिन महारावल से कहलाया कि उसकी बेगमे महारानियो से मिलना चाहती हैं। उसने डोलियो मे स्त्रियो के स्थान पर स्त्रीभेष धारी सशस्त्र सैनिक भेजे। अन्त पुर के प्रथम द्वार पर ही भेद खुल-गया और घमाशान युद्ध मे ४०० सैनिक और कई भाई बेटे काम आये यह घटना वैशाख सुदि १४ स. १६०७ को सम्पन्न हुई।

लूणकर्ण का उत्तराधिकारी मालदेव था। जोधपुर के राठौड मालदेव से इसका सघर्ष चलता रहा था। एक बार पोकरण के मामले मे सघर्ष हुआ था। दूसरी बार बाडमेर के रावत भीम के मामले मे राठौड मालदेव ने जैसलमेर पर आक्रमण किया था और रावल से पेशकसी लेकर वापस लोटा। मालदेव की मृत्यु वि०म० १६१६ मे हुई थी। उसके शासन काल म साहित्यिक रचनाय हुई थी।

जैसलमेर मध्यकाल मे सास्कृतिक दृष्टि से बडा महत्वपूर्ण रहा है यहा के ताडपत्रीय ग्र थ भडार जगद्विख्यात है। यहा ग्र थ भडार को स्थापना जिनभद्र सूरि ने कराई थी। समय सुन्दरकृत अष्ट-लक्षी प्रशस्ति के अनुसार जिनभद्र द्वारा जैसलमेर जालोर देवगिरी नागौर पाटण आदि स्थानो मे विशाल भाडागार स्थापित[५८] किये थे। यहा गुजरात से बडी मात्रा मे ग्र थ लाकरके सुरक्षित किये गये थे। कई ग्र थो की प्रशस्तियो मे "श्रीखरतरगच्छे श्री जिनदत्तसूरि सताने श्री जिनराजसूरिशिष्यश्रीजिनभद्रसूरिवरापदेशाशाति नलिखितेय पुस्तिका

मान रखे तो पीव तज पीव रखे तज मान।
दोय गयदन बध ही एकण खभे ठाण ॥

(५८) श्रीमज्जैसलमेरुदुर्गनगरे जावालपुर्या तथा,
श्रीमद् देवगिरौ तथा अहिपुरे श्रीपत्तने पत्तने।
भाण्डागारम बीभरद् वरतरैर्नानाविधैं पुस्तकं
सः श्री मज्जिन भद्रसूरि सु गुरु र्भाग्याद् भुतोऽभूद भुवि ॥
जैसलमेरप्रकाश वर्ष १६ अक १ पृ १८

मिलता है। इससे भी इसकी पुष्टि होती है। यहा मुख्य भडार किले पर स्थित वडा भडार है। इसमे ताडपत्रीय ग्र थ बहुत वडी सख्या मे है। दूसरा भडार तपागच्छ उपाश्रय मे है। कुछ ग्र थ थीरुशाह भडार और यतिजीके सग्रह मे भी है। इनके अतिरिक्त शहर मे आचार्यगच्छीय भडार वृहत् खरतरगच्छीय भडार, लू कागच्छीय भडार आदि भी है। इन ग्र थो के विस्तृत विवरण प्रस्तुत करने के लिये श्री बूलर और हर्मन जेकोबी यहा सन् १८७४ मे गये थे। इनके बाद भडारकर ने कुछ वर्णन प्रस्तुत किया था। ग्र थो का विस्तृत वर्णन प्रथम बार श्री दलाल ने प्रस्तुत किया था। किन्तु ग्र थ के प्रकाशन के पूर्व उनकी मृत्यु होगई। इस कार्य को लालचद भगवानदास गाधी ने पूरा किया था। इनका कहना है कि दलाल ने लम्बी २ प्रशस्तियो को छोड दिया था। अब जयन्तविजयजी ने एक विस्तृत सूची तैयार करली है जो लगभग छपकर तैयार भी हो गई है।

दुर्ग और शहर मे असख्य शिलालेख और कई उल्लेखनीय मदिर हैं। दुर्ग मे मुख्य रूप से ८ जैन मदिर और लक्ष्मीनारायण और महादेव के प्रसिद्ध मदिर है। जैन मदिरा म पार्श्वनाथ का मदिर मुख्य है। कला की दृष्टि से ये मदिर वडे उल्लेखनीय हैं। शहर मे कई हवेलिया स्थापत्य कला की दृष्टि म वडी महत्वपूर्ण है।

पूर्वी राजस्थान के के गुहिलवंशी शासक | १८

पूर्वी राजस्थान मे नगर चाटसू आदि के आसपास दीर्घ काल तक (७वी मे ११ वी शताब्दी तक) गुहिल वशी शासको का अधिकार रहा था। ये शासक भर्तृपट्ट वशी गुहिल थे। इनके विस्तृत इतिहास जानने के लिये वि० स० ७४१ का नगर[1] का शिलालेख, १० वी शताब्दी का चाटसू के गुहिल वशी शासक बालादित्य[2] का शिलालेख धौड़ का वि स० ८८७ का शिलालेख आदि साधन[2A] प्रमुख हैं।

नगर गाव उणियारा के पास स्थित है। इसका प्राचीन नाम कर्कोट नगर था। इस नगर का विस्तृत सर्वेक्षण कार्लायल महोदय ने किया था और यहा बडी सख्या मे मालवगण के सिक्के एकत्रित किये थे। इस से पता चलता है कि यह नगर उस समय भी श्रीसम्पन्न रहा होगा। यद्यपि इन सिक्को के काल निर्धारण के सम्बध मे मत भेद है किन्तु यह निश्चित है कि यह नगर दीर्घ काल तक मालवो से सम्बन्धित रहा था। मालवो के दीर्घ काल के इस क्षेत्र पर अधिकार करने के कारण इस नगर को यहा से प्राप्त वि स. १०४३ के एक शिलालेख[3] मे मालव नगर ही कहा गया है। मालवो ने यहा से बढ कर वर्तमान मालवा प्रदेश पर अधिकार किया[4] था। गुप्त शासकों से इनका सघर्ष हुआ था। समुद्रगुप्त के इलाहाबाद के लेख मे इसका

(१) भारत कौमुदी पृ १७३-७६
(२) एपि ग्राफि आ इ डिका volXX पृ १०-१५
(२A) उपरोक्त vol XX पृ १२२-१२५
(३) भारत कौमुदी पृ २७१-७२
(४) वरदा वर्ष १० अ क २ मे प्रकाशित मेरा लेख "मालवगण

स्पष्टतः सकेत है।[5] गुहिलवंशी शासक इस क्षेत्र मे छठी शताब्दी मे आये प्रतीत होते हैं।

प्रारम्भिक गुहिलवंशी शासक

गुहिलवंश के संस्थापक गुहदत्त[6] की तिथि श्रोभा जी ने सामोली के वि सं० ७०३ के शिलालेख के आधार पर वि० सं० ६२३ (५६६ ई०) मानी है। यह तिथि प्राप्त सामग्री के आधार पर ठीक[7] नही है। श्रोभा जी को उक्त इतिहास लिखते समय नगर गाव का शिलालेख मिला नही था। हाल ही मे कई लेख बागड क्षेत्र से ७ वीं शताब्दी से ८ वी शताब्दी तक के प्राप्त हुये हैं। गुहदत्त की तिथि पर मैंने अन्यत्र विस्तार से लिखा है। गुहिलवंश की ३ शाखाओ के राज्य ७ वी शताब्दी मे मिलते है (१) मेवाड के गुहिल (२) बागड के गुहिल और (३) नगर चाटसू आदि के गुहिल। ऐसा प्रतीत होता है कि उस समय इन तीनों शाखाओ को अलग हुये कई पीढिया व्यतीत अवश्य हो चुकी थी, क्योकि तीनो की वंशावलियाँ भिन्न २ हैं। नगर और मेवाड शाखाओं के तथा कथित मूल पुरुषो का काल निर्धारण ६ ठी शताब्दी और बागड शाखा का ७ वी शताब्दी माना जाता है अतएव प्रतीत होता है कि ये शाखाये ६ ठी शताब्दी के पूर्व या प्रारम्भ मे ही अलग हो चुकी होगी।

नगर गांव के शिलालेख में वर्णित शासक

नगर गाव का लेख गुलेरी[8] ने सम्पादित किया था। मूल लेख एक कुऐ से मिला था। इस मे कुल २४ पंक्तियां हैं और भर्तृपट्ट वंशी गुहिल शासको का उल्लेख है।

---

(५) फ्लीट गुप्ता इन्स्क्रिप्शन्स पृ ८५

(६) "जयति श्रीगुहदत्तप्रभवः श्रीगुहिलवंशस्य" आटपुर का लेख

(७) "वरदा" के वासुदेव शरण अग्रवाल स्मृतिग्रंथ मे प्रकाशित मेरा लेख "बागड मे गुहिल राज्य की स्थापना"

(८) भारत कौमुदी पृ २७०–७६

उक्त भर्तृपट्ट को ओझा जी ने मेवाड़ का शासक[9] भर्तृपट्ट माना है। लेकिन यह उनकी मान्यता वि० ७४१ के शिलालेख के मिल जाने से स्वत खडित हो गई है। नगर और चाटसू के शासक इसी शाखा के थे। इगोदा (मध्य प्रदेश) से विस० ११६० के शिलालेख मे और बागड़ के कुछ लेखो म "भर्तृपट्टाभिधान गुहिलवंशी" शासको का उल्लेख मिलता[10] है। अतएव पता चलता है कि ये शासक दीर्घकाल तक इसी नाम से पुकारे जाते थे।

भर्तृपट्ट का काल निर्धारण वि० ६४० या ५८३ ई० किया जा सकता है। औसतन प्रत्येक शासक का काल २५ वर्ष मानकर विस० ७४१ म से ४ शासको के १०० वर्ष कम करने पर यह तिथि आ जाती है। यद्यपि नगर गांव के उक्त लेख मे वशावली ईशान भट्ट से ही दी है और भर्तृपट्ट का नाम नही दिया है किन्तु चाटसू के लेख में इसका स्पष्टत उल्लेख किया गया है कि ईशान भट्ट भर्तृपट्ट का पुत्र था। सी वी वैद्य ने भर्तृपट्ट की[11] तिथि ६८० ई० मानी है। इनकी मान्यता है कि चाटसू के लेख मे हर्षराज को प्रतिहार राजा भोज का समकालीन बतलाया है जो ८४ ई० के आस पास हुआ था। इसलिये हर्षराज के ८ व पूवज भर्तृपट्ट के लिये १६० वर्ष कम करके यह तिथि मानी है। स्पष्ट है कि उस समय नगर गाव का शिलालेख मिला नही था। इसलिये अब यह तिथि मान्य नही हो सकती है। प्राप्त सामग्री के आधार पर यह तिथि ६४० वि० या ५८३ ई० ही होना चाहिये।

ईशान भट्ट उपेन्द्र भट्ट और गुहिल का विस्तृत वर्णन नही मिलता है। नगर गाव के लेख म केवल "श्रीमानीशानभट्ट क्षिति-

(६) उदयपुर राज्य का इतिहास vol I पृ ११७/श्री सी वी वैद्य ने इसका खडन किया है [हिस्ट्री आफ मिडिवल हिन्दू इ डिया vol II पृ ३४५]

(१०) इ डियन ए टीक्वेरी vol IV पृ ५५-५६। इ डियन हिस्टोरिकल क्वाटरली vol XXXV स० १ पृ ६–१२

(११) हिस्ट्री आफ मिडिवल हिन्दू इ डिया vol II पृ ३४५

पालतिलको बभूव भूपाल" शब्द ही अ कत[12] है। उपेन्द्र भट्ट का भी परम्परागत वर्णन मात्र मिलता है। इसका उत्तराधिकारी गुहिल हुआ था। इसके कई विशेषण प्रयुक्त[13] हुये है यथा "महताम ग्रेसरो मृत्प्रभु' " "सर्वोकीर्त्ति राजमण्डलगुरु"। इसका उत्तराधिकारी धिनिक हुआ जिसने विस० ७४१मे नगर गाव मे एक वापी बनाई।

धौड़ का शिलालेख

कर्नल टॉड को धौड से एक शिलालेख मिला था। इसमे गुहिल वशी धिनिक का उल्लेख है। यह शिलालेख अब उदयपुर सग्रहालय मे है। डी. आर भडारकर ने इसे गुप्त सवत् ४०७ पढा है। यह उनकी मान्यता है कि धौड के लेख म वर्णित धनिक चाटसू वाले लेख का धनिक ही है। सके विपरीत ओझाजी की मान्यता है[16] कि यह सवत २०७ का है जो हर्ष सव० है एव धौड के लेख मे प्रयुक्त धवलप्प नामक शासक समवत मौर्य वशी शासक है जिसका उल्लेख कोटा के शिलालेख[17] मे हो रहा है। श्री० डी० सी० सरकार ने इसे विस० ७०१ पढा है। उनकी मान्यता है कि धवलप्प कोटा के कन्सवा के लेख मे वर्णित धवल मौर्य का पूर्वज रहा होगा। अब प्रश्न यह है कि नगर गाव के लेख मे वर्णित धनिक और धौड के लेख मे वर्णित धनिक दोनों एक ही व्यक्ति हैं अथवा भिन्न भिन्न। डी०सी० सरकार ओझा हल्दार दशरथ शर्मा [18] आदि ने

(१२) लेख की पक्ति २–३

(१३) लेख की पक्ति स. ४

(१४) – 'परम भट्टारक महाराजाधिराजपरमेश्वरश्रीधवलप्पदेवप्रवर्द्ध-मान राज्ये। गुहिल पुत्राना श्रीधनिकस्योपभुजमानाया धवर्गताया—"

(१५) एपिग्राफिआ इडिका vol XII पृ ११

(१६) उदयपुर राज्य का इतिहास vol I पृ ११७ का फुटनोट

(१७) गुहिलोतस आफ किष्किन्धा पृ ५३–५४

(१८) राजस्थान थ्रू दी ऐजेज भाग १ पृ ३१२। उदयपुर राज्य का इतिहास vol I पृ ११७

विभिन्न २ मता स इन्हे अलग अलग माना है । इनका वर्णन ऊपर किया जा चुका है । नगर गाव के धनिक का लेख विस० ७४१ का मिला है । अगर घोड वाला धनिक और यह एक ही व्यक्ति हो तो इसका शासनकाल बहुत लम्बा रहा होगा । भण्डारकर के पाठानुसार तो विस० ७८३ तक यह जीवित रहा होगा और डी०सी० सरकार के सवत के पाठ के अनुसार यह विस० ७०१ से ७४१ तक जीवित रहा होगा । इस सम्बन्ध से निश्चित रूपसे कुछ भी कहा नही जा सकता[१९] है । इस सम्बन्ध म मुझे यह अधिक ठीक लगता है कि उक्त ये दोनो ही भिन्न २ शासक रहे होंगे । इनकी शाखायें भी भिन्न २ होगी ।

श्री रोशनलाल सामर ने अपने लेख[२०] 'गुहिलोत्स आफ चाटसू" म एक विचित्र मान्यता दी है कि धोड जहाज-पुर के पास है । जहाजपुर की स्थापना इनके अनुसार हूणो ने की थी अतएवधनिक भी हूण था किन्तु इस मान्यता का कोई आधार प्रतीत नही होता है ।

नासूण के लेख वाला धनिक

अजमेर के पास स्थित नासूण[१२] गाव से वि०स० ८८७ का एक शिलालेख मिला है । इसम धनिक और उसके पुत्र ईशान भट्ट का उल्लेख है । ओझा जी ने इसे[२२] और धौड वाले लेख में वर्णित धनिक

---

(१९) धनिक का चतुर्थ वशज हर्षराज प्रतिहार राजाभोज I का समकालीन था जिसके शिलालेख विस० ६०० से ६३८ तक मिले हैं । इसी प्रकार शकरगण नागभट्ट II (वि०स०८७२) का सामन्त था । अगर ओझाजी की तिथि के अनुसार इसे हर्ष सवत २०७ लेते है तो यह सवत ८७० के आसपास जाता है जो निसदेह गलत है ।

(२०) जनरल आफ दी राजस्थान इन्स्टिट्यूट आफ हिस्टोरिकल रिसर्च vol III स० ३ पृ ३२

(२१) इण्डियन एण्टिक्वेरी vol LIX पृ २१

(२२) उदयपुर राज्य का इतिहास पृ० ११७

को एक ही व्यक्ति माना है।[२३] लेख मे इसके वश का वर्णन नही किया गया है केवल इतना ही वर्णित है "मण्डलाधिपश्रीमदीशान भटेन श्रीधनिक सुनुना"। इसके अतिरिक्त दोनो के शासन काल मे भी अन्तर है। अतएव यह भिन्न व्यक्ति रहा होगा। केवल नामो की समानता से उन्हें एक ही वश का नही मान सकते हैं।

चाटसू का शिलालेख

चाटसू का शिलालेख कालीयल[२४] ने ढूडा था। उनका कहना था कि कई वर्षो पूर्व यहा के तालाब से इसे निकाला गयाथा जिसे यहा के रघुनाथ जी के मदिर मे लगवा दिया था।

यह काले पत्थर पर खुदा हुआ है। प्रारम्भ मे सरस्वती और भगवान मुरारी की वन्दना की गई है। ६ ठे श्लोक मे गुहिल वश की प्रशसा की गई है एव इसम उत्पन्न भर्तृपट्ट नामक शासक का उल्लेख है जिसे राम के समान ब्रह्मक्षत्री[२५] बतलाया है। इसके बाद ईशान भट्ट उपेन्द्र भट्ट गुहिल और धनिक का उल्लेख है जिनका विस्तृत वर्णन उपरोक्त नगर के लेख मे हैं। धवल का पुत्र आऊक हुआ और आऊक का कृष्णराज। कृष्णराज के बाद शकरगण शासक हुआ जिसके लिये लिखा मिलता है कि इसने अपने स्वामी के लिये गौड देश के शासक को हराकर उसे उसके समक्ष प्रस्तुत किया। गौड देश का शासक निसदेह धर्मपाल था। इसे नाग भट्ट II ने हराया [२६] था। मडोर के प्रतिहारवशी शासक बाहुक के विस० ८६४ के शिलालेख मे कक्क के लिये भी मुगेर मे गौडो को हराने का उल्लेख [२७] है। अवनिवर्मा के ऊना के विस० ६५६ के लेख मे उसके पूर्वज

(२३) फुटनोट २१ उपरोक्त

(२४) आर्कियोलोजिकल सर्वे रिपोर्ट आफ इण्डिया vol VI पृ ११६

(२५) "ब्रह्मक्षत्र" के सम्बन्ध मे डी. सी. सरकार की मान्यता "गुहिलोत्स आफ किष्किन्धा पृ ६–८ एव हिस्ट्री आफ मेवाड राय चौधरी कृत दृष्टव्य है।

(२६) एपिग्राफिआ इण्डिया vol XIII पृ ८७ फुटनोट

(२७) बाउक के शिलालेख श्लोक २४

बाहुक भवन धर्मपाल और कर्नाटक सेनाओं को हराने वाला वर्णित किया गया[28] है। अतएव प्रतीत होता है कि नाग-भट्ट के साथ उक्त युद्ध में शङ्करगण के अतिरिक्त अन्य कई शासक और भी थे। सभवत: उसने बडी वीरता दिखाई थी जिसके फलस्वरूप उसका विवाह नाग भट्ट की पुत्री यज्जा से हुआ था। चाटसू के लेख में इस यज्जा को शिव की भक्त और "महामहीभृत" की पुत्री वर्णित[29] की गई है जो नाग भट्ट ही रहा होगा। इसके हर्षराज नामक पुत्र उत्पन्न हुआ जो प्रतिहार राजा भोज का समकालीन था। प्रस्तुत लेख में वर्णित किया है कि उसने उत्तरी भारत के कई शासकों से युद्ध किया था एवं उक्त भोज को श्री वशी घोडे लाकर के दिये थे जो सिंधु के रेगिस्तान को कुशलता पूर्वक पार कर-सकते थे। डा॰ दशरथ शर्मा की मान्यता है कि यह सदर्भ भोज के सिन्धु प्रदेश के आक्रमण या योजना[30] है। समवत' चाटसू का यह शासक उक्त आक्रमण म प्रतिहार शासक के साथ युद्ध मे सम्मलित था। इसकी महारानी का नाम सिल्लो था। इसका पुत्र गुहिल II हुआ। चाटसू के लेख मे इसे बहुत बलशाली वर्णित किया[31] है। इसको गौड देश को जीतने वाला लिखा है। इसने सभवत नारायण पाल नामक शासक को या तो भोज I के समय या उसके उत्तराधिकारी महेन्द्रपाल की सेनाओं के साथ रहकर हराया होगा। इसका विवाह परमार राजा वल्लभराज की पुत्री रज्जा से हुआथा। इसका पुत्र भट्ट हुआ। यह भी प्रतिहारो के आधीन था और दक्षिण के कई राजा से युद्ध किये थे। ऐसा प्रतीत होता है कि महिपाल प्रतिहार के समय इसने उसकी सेनाओं के साथ दक्षिण के राष्ट्रकूट शासक इन्द्र या उसके उत्तराधिकारी अमोघवर्ष II या गोविन्द चतुर्थ को हराया

---

(२८) एपिग्राफिआ इण्डिआ vol IX पृ १

(२९) चाटसू का लेख श्लोक स० १७

(३0) राजस्थान थ्रू दी एजेज भाग १ एव इण्डियन हिस्टोरिकल क्वाटरली vol XXXIV पृ १४६

(३१) चाटसू का लेख श्लोक २०

होगी[32] इसकी राणी का नाम पुरुषा था जो निरुक्त नामक शासक की पुत्री थी। इसके बालादित्य नामक एक पुत्र उत्पन्न हुआ। इसकी उक्त शिलालेख के श्लो० २९ से ३२ में बड़ी प्रशंसा की गई है। इसका विवाह शिवराज चौहान की पुत्री रट्टबा से हुआ था। इसकी पत्नि की मधुर स्मृति में इसने चाटसू में भगवान मुरारि का एक सुन्दर मन्दिर बनवाया बालादित्य के ३ पुत्र वल्लभराज शिवराज और देवराज थे।

इस प्रशस्ति को भानु नामक एक कवि ने जो छीत्तू का पुत्र था और कारनिक जाति का था बनाया था और इसे सूत्रधार भाइला ने पत्थर पर खोदा था।

नगर के अन्य लेख

इस लेख के बाद गुहिल वंशियो का इस क्षेत्र से कोई उल्लेख नही मिलता है। नगर गाव से वि॰सं॰ १०४३ का शिलालेख यहा के मण्ड किला ताल से[33] मिला था। इसमे उक्त नगर की समृद्धि का सुन्दर वर्णन है। इसमे वर्णित है कि यहा कई मन्दिर हैं और कई धनी व्यक्ति रहते हैं। उस समय के शासक का नाम "लोकनृप" दिया है। यह उपाधि रही प्रतीत होती है। इस लेख मे धर्कट वंशी वैश्य द्वारा विष्णु के मन्दिर बनाने का उल्लेख है। जिसके पौत्र नारायण ने कई शिखरो वाला मन्दिर बनवाया। इसके वंशज सुनन्द ने भी एक मंदिर बनवाया जिसमे विष्णु शिव गरुड आदि की प्रतिमायें थी।

आगरे के आसपास गुहिल[34] नामक शासक के २००० से अधिक सिक्के मिले हैं। नदवई मे भी एक सिक्का "गुहिलपति"- का

---

(३२) जरनल आफ इण्डियन हिस्ट्री XXXVIII भाग पृ ६०६ पर डा० दशरथ शर्मा का लेख। अल्तेकर—राष्ट्रकूटाज एण्ड देयर टाईम्स पृ ६३—६५

(३३) भारत कौमुदी पृ २७,

(३४) कनिंघम आर्कियोलोजिकल सर्वे रिपोर्ट आफ इण्डिया भाग IV पृ ६५। ओझा उदयपुर राज्य का इतिहास भाग १ पृ ६६

मिला है। ये सिक्के पूर्वी राजस्थान के गुहिलवंशी शासकों के रहे होंगे।

इस प्रकार लगभग ४०० वर्षों तक इनका इस क्षेत्र पर अधिकार रहा। इनको प्रारम्भ में मौर्यों और बादमें बयाना और मत्स्य के यादवों से संघर्ष करना पड़ा था। इसके बाद प्रतिहारों की अधीनता में कई सफलता पूर्वक युद्ध करने से इस राजवंश की बड़ी ख्याति हो गई। इसका अन्त सम्भवतः चौहानों ने किया था।

यहां से ये लोग मालवा की तरफ चले गये थे। जहां विस ११६० का इंगोदा का शिलालेख मिल चुका है। वहां से ये बागड की तरफ गये थे जिसका विस्तृत वर्णन ऊपर "बागड में गुहिल राज्य" नामक लेख में किया जा चुका है।

[शोध पत्रिका में प्रकाशित]

....

थी। एकाविभि शुद्रकैजितम् (महाभाष्य ५।२।३२) । इस प्रकार पतजलि के पश्चात क्षुद्रक पूर्ण रूप से मालव सघ मे विलीन हो गये थे।

भारत के वृहद् इतिहास मे प० भगवद्दत्त ने मालवो एव क्षुद्रको को मेगस्थनीज के कथन को आधार मानते हुए असुरवशी बतलाया है किन्तु यह बात सही नही है। नांदसा के अभिलेख मे इन्हें "इक्ष्वाकु प्रथित राजवशे' [4] कहा है जो कभी भी दानववशी नही हो सकता है। इसके अतिरिक्त वैयाकरणो ने इसे और भी स्पष्ट कर दिया है। व्याकरण मे नियम है कि जो मालव सघ का सदस्य ब्राह्मण अथवा क्षात्रय नही था, वह मालव्य (एकवचन) कहलाता था, जबकि क्षत्रिय और ब्राह्मण को मालव कहा जाता था। दोनो का बहुवचन मालवा ही होता था (काशिका ५/३/११४)। इस प्रकार मालवो मे ब्राह्मणो और क्षत्रियो का सम्मान किया जाता था।

मालवगण का प्रस्थान और शत्रुओं के साथ संघर्ष

मौर्यकाल मे किन्ही कारणो से विवश होकर इन्हें अपना घर छोडना पडा था। जनरल कनिंघम का विश्वास है कि मालव जाति राजस्थान मे मरु या मारवाड के मार्ग से आई होगी और मेरू जय एव भगो जय वाले सिक्के इनके अरावली प्रदेश की विजय के सूचक होंगे [5]। नगरी के शिवि जनपद के सिक्को के साथ २ मालवो के सिक्के भी मिल है। जनरल कनिंघम ने इनका काल निर्धारण २५० से २०० ई० पू० किया है [6] इसके पश्चात् स्मिथ एव जायसवाल के अनुसार ई० पू० १५० स १०० के मध्य म ये लोग कर्कोट नगर (जयपुर) मे बस चुके[7] थे। प्रसिद्ध यवन आक्रमण कारी दिमित्त या

---

४ एपीग्राफि आ इण्डिका भाग २७ पृ०२५२।

५ कनिघम-आर्कियोलोजिकल सर्वे आफ इडिया भाग ६ पृ० १८१ श्री जायसवाल इन सिक्को को राजाओ के सक्षिप्त नाम वाले मानते है [हिन्दू राजतत्र पृ० ३६७]

६-कनिघम-आर्कियोलोजिकल सर्वे आफ इडिया, भाग ६ पृ० २०१

७-स्मिथ-कटलाग आफ इडियन कोइस इन इडियन म्यूजियम कलकत्ता पृ० १६१ एव जायसवाल हिन्दु राजतत्र पृ० २४६

आक्रमण भी इसी समय हुआ था। पतजलि ने माध्यमिका पर यवन आक्रमण का उल्लेख किया है। [अरुणद्यवनो माध्यमिकाम्]। दिमित के आक्रमण के फलस्वरूप ही ये माध्यमिका छोडकर कर्कोट की ओर बढ़े हो तो कोई आश्चर्य नही। किन्तु नान्दसा [तहसील गगापुर, जिला भीलवाडा] के वि० स० २८२ के लेख मे वहां मालव गण र ज्य का उल्लेख है। यह गाव नगरी से २५ मील उत्तर पश्चिम मे है, अतएव स्पष्ट है कि मालव लोगो ने ककोट नगर मे रहते हुए माध्यमिका क्षेत्र को पूर्ण रूप से छोडा नही था।

पश्चिमी भारत एव मथुरा मे उस समय शकक्षत्रप शासन कर रहे थे। महाक्षत्रप नहपान के दामाद उपावदत्त के नासिक के लेख मे उत्कीर्ण है कि उसने भट्टारक की आज्ञा प्राप्त कर वर्षाऋतु मे मालवो से घिरे हुए उत्तमभद्र क्षत्रियों को मुक्ति दिलाई। मालव लोग उसकी आवाज सुनते ही भाग [8] गये.........

"भट्टारिकाज्ञातिया च गतोस्मि वर्षारितु मालयेहिरुध उत्तमभद्रं मोचयितु ते च मालया प्रनादेनेव अपयाता उत्तमभद्रकाना च क्षत्रियाना सर्वे परिग्रहाकृता"--

उपावदत्त की विजय के बाद कुछ काल तक मालवो के राज्य पर शको का अधिकार हो गया था। स्वय नहपान का एक सिक्का कर्कोट से मिला था। उत्तम भद्र क्षत्रिय, जिनसे मालवों की लडाई हुई थी, कौन थे? इनके बारे मे कुछ भी ज्ञात नही हुआ है। किन्तु ये लोग

८--जरनल बम्बई ब्राच रायल एशियाटिक सोसाइटी भाग ५ पृ० ४६ पर स्टीवेन्सन द्वारा सम्पादित। इसका सशोधित पाठ श्री बर्गेस द्वारा केव टेम्पल्स आफ वेस्टर्न इ डिया पृ० ९९-१०० पर प्रकाशित कराया गया है। इन्होंने मालय को मलय पर्वत वासी बतलाया है। इसे श्री रूडोल्फ हार्नले ने इपि ग्राफिया इ डिया के ८ वें भाग से पृ० ७० पर पुन प्रकाशित कराके यह वर्णित किया है कि "मालाये" व 'हिरुध' दो अलग २ शब्द नही होकर एक ही है और दोनो के बीच कोई शब्द छुटा हुआ नहीं है। लेख

निगदेह राजस्थान में यहीं निवास कर रहे थे। डा० दशरथ शर्मा के अनुसार ये भट्टानीय थे। मालव लोग उस समय उज्जैन में पुष्कर के मध्य यहीं रह रहे थे क्योंकि उपरोक्त लेख के अनुसार उषावदत्त मालवो को विजय कर पुष्कर गया था और स्नानएवं दान दिया था।

गोतमीपुत्र शातकर्णी की माँ बालाश्री का गोतमीपुत्र के राज्य के १९ वे वर्ष का एक लेख नासिक में प्राप्त हुआ है। उसमें गोतमीपुत्र शातकर्णी को क्षहरात कुल का समूल नष्ट करने वाला कहा गया है।[9]

"खखरात वस निरवसेस करस सातवाहन कुलयस पतिठापन करस"

इस प्रकार क्षत्रप राज्य विनष्ट हो जाने पर मालवों को भी राज्य पुनः संस्थापन का अवसर प्राप्त हुआ था।

मालवों के नगरी, नान्दसा और बड़वा के शिलालेख प्राप्त हुए हैं। ये इनकी विजय के सूचक हैं। मेरे ग्राम गंगापुर से ३ मील दूर नान्दसा के तालाब के मध्य वि० सं० २८२ का जो स्तम्भ लेख है,[10] उसमें लिखा है कि मालव वंश में उत्पन्न मनु की तरह गुणों से युक्त जयसेन प्रभागवर्धन के पौत्र जयसोम के पुत्र सोगियों के नेता, पौरुष श्री सोम द्वारा अपने बाप-दादों की धुरी का समुद्धार करके षष्ठिरात्र यज्ञ

प्राकृत मिश्रित संस्कृत है। मालव के लिये मालय भी आ सकता है जैसे कि "चम्पानाम णयरीहो त्था" यहां नगरी के लिये णयरी आया है।

९ जरनल बम्बई ब्राच रायल एशियाटिक सोसाइटी, भाग ५. पृ० ४१-४२ म स्टीवेन्सन द्वारा सम्पादित और संशोधित एवं श्री बर्गेस द्वारा केव टेम्पल्स आफ वेस्टर्न इंडिया में पृ० १०८-१०९ में दिया है।

१० महता स्वदानिगुरूत्पोरयेणप्रथमचन्द्रदर्शनमिव मालवगणविषय-मवतारयित्वेक षष्ठिरात्रमसिश्रमपरिमितधम्ममाश समुद्धृत्य-पितृपैतामहिं (हीं) धुरमावृत्य सुविवृ द्यावा पृथिव्योर त्तर मनुत्तमेन यशसा स्वकर्मसम्पदया विपुला समुपगनातृद्धिमात्म सिद्धि वितत्य मायामिव सत्र भूमौ सर्वं कामीप धारा वसोर्द्धारामिव ब्राह्मणाग्नि वेश्वानरेषु-हुत्वा ब्राह्मेन्द्र प्रजापति महर्षि विष्णु स्थानेषु——[इपी० इंडिका का भाग २७ पृ० २६२]

किया। इस लेख से प्रकट होता है कि मालवों ने कोई बड़ी विजय प्राप्त की थी। सम्भवतः इन्होंने खोये हुये राज्य को पुनः प्राप्त कर लिया था। लेख में स्पष्ट रूप से प्रथमचन्द्र के समान मालव राज्य का उल्लेख किया है। इस विजय की स्मृतिस्वरूप एक विष्णु यज्ञ भी किया जिसे इस लेख में आलंकारिक भाषा में वर्णित किया है कि सोरप सोम ने जिसका यज्ञ द्यावा व पृथ्वी के अन्तराल में छा गया था और जिसने यज्ञ भूमि में अपने कर्म की सम्पदा के कारण प्राप्त ऋद्धियों को अपनी सिद्धियों के समान सब कामनाओं के समूह की धारा को माया की तरह विस्तार कर वसु [धन अथवा घी] की धारा से ब्राह्मणों अग्नि वैश्वानर आदि के लिये हवन किया और मालवगण के उक्त प्रदेश में षष्ठिरात्र यज्ञ किया। नान्दसा के महा तड़ाग में, वहां के वृक्ष यज्ञ यूप और चैत्य उस सोम द्वारा दी गई एक लाख गायों के सींगों रगड़ से सकुल हो जाने से जो पुष्कर को भी पीछे रखता था, एक यज्ञयूप खड़ा किया गया। यह लेख मालव जाति का प्राचीनतम लेख है। यज्ञों की परम्परा बराबर बनी रही थी। बरनाला का यज्ञ स्तूप और कोटा के यज्ञ स्तूप भी इसी समय के हैं। लेकिन कला की दृष्टि से नान्दसा के स्तूप अपना विशिष्ट स्थान रखते हैं। इन यज्ञ स्तूपों पर शु ग कालीन विशेष प्रकार का पॉलिश भी हो रहा है।

मालवों का अवन्ति प्रदेश में निवास कब हुआ था, यह बतलाना कठिन है। रुद्रदामा के गिरनार के लेख में इस भू भाग को "पूर्वापक-रावती" कहा[१४] है। कालिदास के काव्य में सर्वत्र अवन्ती और

१४. स्व वीर्यार्जितानामनुरक्तसर्वप्रकृतीना पूर्वापराकरावन्त्यनूपनी वृदानर्त सुराष्ट्रश्व भ्रमरु कच्छसिन्धुसौवीर कुकुरापरान्तनिषादा दीना समग्राणां..............

[रुद्रदामा का गिरनार का लेख]

दाशार्ण शब्द[15] दिये गये हैं। ये धीरे २ राजस्थान मे बढ़ते गये और पहले उत्तरी मालवा मे बसे, जहाँ से गंगाधार का वि० सं० ४८० और मन्दसार से ४६१ का लेख मिला है। समुद्रगुप्त के शासनकाल के समय यह जाति अपना स्वतन्त्र अस्तित्व बनाये हुई थी क्योंकि प्रयाग के उसके लेख मे इनसे कर लेने का[16] उल्लेख है। समुद्रगुप्त के पश्चात् इनको चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य से लोहा लेना पड़ा और इसके पश्चात् कलचुरियो से संघर्ष लेना पड़ा था। इस प्रकार साम्राज्यवादियो से संघर्ष की जो शक्ति उनमे पंजाब मे विद्यमान थी वह यहाँ आते २ क्षीण पड़ने लग गई और इन्हें अब अपनी स्वतन्त्रता बनाये रखना कठिन हो गया। बाण के ग्रंथो मे मालवा शब्द का प्रयोग है। अतएव ५ से ७ वी शताब्दी के मध्य ये लोग सम्पूर्ण मालवे मे फैल गये थे और इनके चिरकाल तक इस प्रदेश मे निवास करने के कारण ही इस प्रदेश का नाम मालवा पड़ गया प्रतीत होता है।

मालव गणराज्य के सिक्के २ प्रकार के मिले हैं [१] मालवाना जय विरद वाले, [२] इस प्रकार के सिक्के जिन पर कुछ अस्पष्ट[17] नाम है, उदाहरणार्थ मरज [महाराज] जम पय, मगज, जम मपोजय या मगोजय। [वरदा मे प्रकाशित]

१५, रघुवंश ६/३४ मेघदूत पूर्वमेघ श्लोक २३ मे दशार्ण का वर्णन है
सम्पत्स्यन्ते कतिपयदिनस्थायिहंसा दशार्णा ॥२३
श्लोक ३० मे अवन्ती प्रदेश का वर्णन है "प्राप्यावन्तीनुदयन कथाकोविदग्रामवृद्धान्" है। श्री रेजडेविड ने बौद्ध कालीन भारत के पृ० २८ पर लिखा है कि अवन्ती को मालवा ८ वी शताब्दी से कहा जाने लगा था।

१६. ……… … … … मालवार्जुनायनयौधेयमाद्रकाभीरप्रार्जुनसनकानिक काकखरपरिकारिभिश्च सर्वकरदानाज्ञाकरण ……… [फ्लीट-गुप्ता इन्स० लेख स० १ पंक्ति २२]

१७. काशीप्रसाद जायसवाल हिन्दू राजतन्त्र पृ० ३६७

विक्रमी संवत | २०

परम्परा से यह विश्वास किया जाता है कि इस सवत् का प्रचलन विक्रमादित्य नामक एक राजा ने किया था। इसने शको को हराकर उक्त विजय की स्मृति मे नये सवत् को चलाया। इस सम्बन्ध मे विद्वानो मे मतभेद है। विक्रमादित्य सम्बन्धी कथाओं को मुख्य रूप से ३ भागो मे विभक्त कर [1] सकते हैं (१) वैतालपचविंशति मे वर्णित विक्रम को कुछ लोग विक्रमी सवत् चलाने वाला मानते हैं, (२) कुछ विद्वान् हाल की गाथा सप्तशति मे वर्णित विक्रम राजा को इस सवत् का चलाने वाला मानते है और (३) कालकाचार्य कथा मे गिर्दभिल्ल का उल्लेख है। मेरुतुग ने इसके पुत्र विक्रमादित्य का उल्लेख किया है जिसने शको से उज्जैन को मुक्त कराया था और जिसे विक्रमी सवत् का चलाने वाला भी माना गया है। उपर्युक्त ३ कथाओं मे परम्परा मे यही विश्वास किया जाता रहा है कि विक्रमादित्य, जो उज्जैन का राजा था विक्रमी सवत को चलाने वाला है। लेकिन विक्रमी सवत के प्रारम्भ के सवतो में विक्रम शब्द के स्थान पर "कृत" शब्द ही लिखा हुआ है, अतएव उपर्युक्त धारणा सही नही हो सकती। इसके अतिरिक्त मालव लोग विक्रमी सवत के प्रचलन के समय निश्चित रूप से टोक, भीलवाड़ा और बूंदी जिले के उत्तरी भाग मे ही रहते थे और इनका उज्जैन से कोई सम्बन्ध नही था। अतएव इसे उज्जैन के राजा विक्रम द्वारा चलायें जाने की कल्पना निराधार है। मेरुतुगाचार्य का वर्णन अर्वाचीन है और परम्परा

१. दी एज आफ इम्पीरियल युनिटी पृ० १५५

२. सवाहणसुहरसतोसिएण देन्तेण तुह करे लक्ख।
चलणेण विक्कमाइच्चचरिअमणु सिक्खिअं तिस्सा॥
(गाथा ४६४ वेबर का सस्करण)

में चर्चा या रतू कथाओं को आधार मान कर ही इन्होंने ऐसा लिखा प्रतीत होता है विक्रम संवत् की सबसे पहली तिथि धौलपुर के चण्ड महासेन [3] के लेखकी ८९८ की है। इसके पहले के सब लेख या तो "कृत" संवत में है या मालव संवत् में।

"कृत"[4] शब्द को डा० फ्लीट ने गत से सम्बन्धित माना है। श्री गौरीशंकर हीराचंद ओझा ने इस मत का खंडन करते हुये लिखा है कि गंगधार के लेख में कृतेषु और यातेषु दोनो शब्द होने से उक्त अनुमान ठीक नहीं बैठता है। मन्दसौर के लेख में "कृत संज्ञिते" लिखा है। इससे कृत वर्ष के होने का उल्लेख मिलता है। उनका कहना है कि वैदिक-काल में ४ वर्ष का एक युगमान भी था। इस युगमान के वर्षों के नाम वैदिक-काल के जुए के पासों की तरह कृत, त्रेता द्वापर और कलि थे। उनकी रीति के विषय में यह अनुमान होता है कि जिस वर्ष में ४ का भाग देने से कुछ न बचे उस वर्ष के कृत, ३ बचे तो त्रेता, २ बचे तो द्वापर और १ बचे तो कलि [*] संज्ञा होती है। जैनों के भगवती सूत्र में भी इसी प्रकार के युगमान का उल्लेख है। इसमें कड जुम्म (कृत) ओज (त्रेता) दावर जुम्म (द्वापर) और कलि-युग का इसी प्रकार [5] उल्लेख है।

---

३. धिनिक गाव से दानपत्र वि स. ७९४ कार्तिक वदि अमावस्या का मिला है किन्तु उस दिन सूर्य ग्रहण आदित्यवार ज्येष्ठा नक्षत्र आदि न होने से इस श्री फ्लीट और कीलहार्न ने जाली ठहराया है (इंडियन एन्टिक्वेरी भाग १२ पृ० १५५)

४. भारतीय प्राचीन लिपि माला पृ० १६६ फुटनोट ८

५. कतिण भंते जुम्मा पण्णत्ता ? गोयम चत्तारि जुम्मा पण्णत्ता। त जहा। कयजुम्मे तयोजे दावरजुम्मे, कलिजुगे। से केणट्ठेण भंते ? एवं उच्चवि जाव कलिजुगे गोयम। जेण रासी चयुक्केण अवहारेण अवहरिमाणे चयुक्केण अवहारेण अवहरिमाणे निपज्जवसिए से त तयोजे। जेण रासी चयुक्केण अवहारेण अवहरिमाणे दुपज्जवसिये से त दावर जुम्मे। जेण रासी चयुक्केण अवहारेण अवहरिमाणे एकपज्जवसिये से त कलिजुगे। १३७१-७२- भगवतीसूत्र गवासयन पृ० ७२ भारतीय प्राचीन लिपिमाला पृ० १६७ के फुटनोट में उद्धृत।

दूसरा मत "कृत" के सम्बन्ध मे यह है कि यह किसी का नाम है। यह नेता था, जिसने मालवो को शको से मुक्ति दिलाई। श्री मजुमदार का कहना है कि कृत शब्द महाभारत, भागवत, हरिवंश पुराण और वायु पुराण मे भी व्यक्तिवाचक सज्ञा के रूप से प्रयुक्त हो रहा है। अतएव सभवत यह मालवो का कोई नेता हो सकता है।[6]

जहा तक ओझाजी के मत का प्रश्न है, कृत सवत् की तिथियो का इस सिद्धान्त से मेल नही होता है। नादसा का लेख वि. स. २८२ का है। इसमे स्पष्टत "कृत" सवत् प्रयुक्त है। इसमे ४ का भाग देने पर २ शेष रहते है। इसी प्रकार बरनाला यूप की तिथि ३३५ कोटा के बडवा के यूपो की तिथि २९५ भी आती है। अतएव ओझाजी का सिद्धान्त इस पर लागू नही किया जा सकता है। जहा तक "कृत" शब्द के किसी नेता के रूप मे प्रयुक्त करने का प्रश्न है, इस पर निश्चित रूप से विचार किया जा सकता है। सम सामयिक भारत मे कनिष्क, हुविष्क आदि के लेखो मे भी इसी प्रकार के सवत् मिले हैं। उदाहरणार्थ मथुरा से प्राप्त एक मूर्ति के लेख पर "महाराजस्य राजातिरास्य-देवपुत्र षाहि कणिकाय स० ७ हे० १ दि० १०-५" है। इसी प्रकार 'महाराजस्य देवपुत्रस्य हुविष्कस्य स० ३९ हे. ३ दि० ११" है। लेकिन कृत सवत् की तिथियो पर यह लागू नही हो सकता है क्योकि यह कही भी व्यक्तिवाचक सज्ञा के रूप मे प्रयुक्त नही हुआ है। इस सम्बन्ध मे इस सवत् की कुछ तिथियो को अध्ययनार्थ प्रस्तुत कर रहा हूँ।

(१) नान्दसा के वि० स० २८२ "कृतयोर्द्वयोर्वर्षशतयोर्द्व्यशीतयो. चैत्यपूर्णमास्याम्"

(२) बडवा की तिथि २९५-"कृते हि २००+९०+५ फाल्गुन शुक्ला पञ्चमी दी"[7]

---

६. दी एज आफ इम्पिरियल युनिटी पृ० १६४ फुटनोट १।

७. इपि ग्राफिया इन्डिका भाग २३ पृ० ४३ एव डा० मथुरालाल शर्मा कोटा राज्य का इतिहास भाग १ का परिशिष्ट।

(३) बरनाल के यूप की तिथि २८४ और ३३५
"कृतेहि—३०० + ३० + ५ जरा [ज्येष्ठ] शुद्धस्य पञ्चदशी"

(४) भरतपुर के विजयगढ ४२८—[8]
"कृतेषु चतुर्षु वर्षशतेष्वष्टाविंशेषु ४०० + २० + ८ फाल्गुण (न) बहुलस्य पञ्चदश्यामेतस्या पूर्व्वायां"

(५) मन्दसौर के वि० स० ४६१ के नरवर्मा के लेख मे "श्रीर्म्मालवगणाम्नाते प्रशस्ते कृतसंज्ञिते। एकषष्ट्यधिके प्राप्ते समाशत चतुष्टये॥ प्रावृक्का [ट्का] ले शुभे प्राप्ते[9]

(६) गगधार का वि० स० ४८० का लेख मे "यातेषु चतुर्षु क्रि (कृ) तेषु शतेषु सौम्यैष्टाशीतसोत्तरपदेष्विह वत्सरेषु। शुक्ले त्रयोदशदिने भुवि कार्तिकस्य मासस्य सर्व्वजनचित्तसुखावहस्य"[10]

(७) नगरी के वि० स० ४८१ के लेख मे "कृतेषु चतुर्षु वर्षशतेष्वे काशीत्युत्तरेष्वस्यां मालवपूर्व्वायां [४००] ८०१ कार्तिक शुक्लपञ्चम्याम्—"[11]

(८) कुमारगुप्त के मन्दसौर के लेख मे "मालवानां गणस्थित्या याते शतचतुष्टये। त्रिनवत्यधिकेऽब्दानाम्रि (मृ) तौ सेव्यघनस्तने सहस्यमासशुक्लस्य प्रशस्तेहि त्रयोदशे[12]

(९) यशोधर्मा के मन्दसौर के लेख की तिथि मे "पञ्चसु शतेषु शरदां यातेष्वेकान्नवति सहितेषु। मालवगणस्थितिवशात्कालज्ञानाय *लिखितेषु*"[13]

(१०) कोटा के कन्सवा के शिव मदिर के ७९५ के लेख मे "सवत्सर शतैर्याते सपचनवत्यगलै। सप्तभिर्म्मालवेशानां"[14]

---

८. फ्लीट गुप्ता इन्स० पृ० २५३।

९. इपिग्राफिआ इन्डिका जिल्द १२ पृ० ३२०।

१०. फ्लीट गुप्ता इन्स० पृ० ७४।

११. गौरीशकर हीराचद ओझा—भारतीय प्राचीन लिपिमाला पृ० १६६। वरदा वर्ष ५ अक १

१२. फ्लीट—गुप्ता इन्स० पृ० ८३।

१३. फ्लीट...... do....... पृ० १५४।

१४. इंडियन एन्टिक्वेरी जि० १९ पृ० ५९।

सम्पन्न तो हो गया लेकिन दोनो पूर्ण रूप से एक नही हो गये थे क्योंकि उन्होंने एक स्थन पर "एकाकिभि क्षुद्रकैर्जितम्" भी लिखा है। यह सघ ५८ B C को सम्पन्न हुआ था और उसी दिन इस सघ की स्थिति को चिरस्थायी बनाने के लिये एक नये सवत को प्रचलित किया गया। "मालवगणाम्नाते प्रशस्ते कृत सज्ञिते" से इसकी पुष्टि होती है।

इन स्पष्ट बातों को भुला कर हम किस प्रकार राजा विक्रम की कल्पना करते है। विक्रमादित्य के सम्बन्ध मे कई प्रकार के वृत्तान्त मिलते हैं। एक कथा मे जैनाचार्य सिद्धसेन और विक्रमादित्य मे सवाद प्रस्तुत किया जाता है। इसमे सिद्धसेन से विक्रमादित्य पूछता है कि मेरे समान दूसरा राजा कब होगा ? तब वह उत्तर देता है"

पुन्ने वास सहस्से सयम्मि वरिसाणि नव नवई अहि ए।
होही कुमार नरिन्दो तुह विक्कमराय सरिच्छो।
अर्थात् विक्रम सवत ११९९ मे कुमार पाल होगा।

एक अन्य कथा मे उसको हूण वशी वर्णित किया है। पुरातन प्रबन्ध के विक्रम प्रबन्ध म वह वर्णन इस प्रकार है—

हूण वशे समुत्पन्नो विक्रमादित्य भूपति। गन्धर्वसेनतनया पृथिवीमनुगा व्यधात्।

खडिकादिभ्यश्च ।।४।२।२५
"अञ् सिद्धिरनुदात्ता दे कोऽर्थ क्षुद्रक मानवात्'
"अनुदात्तादेरित्ये वाञ् सिद्ध किमर्थं क्षुद्रकमानव शब्द खडिकादिषु पठ्यते गोत्राश्रयो वुञ् प्राप्ता स्तद्बाधनार्थम् (अनुदात्तादेरञ्)
गोत्राद्वाञ् न च तद्गोत्र ।४।२।३९ गोत्रा हुञ् भवतीत्युच्यते न क्षुद्रकमालव शब्दो गोत्रम्। न गोत्र समुदायो गोत्र ग्रहणेन गृह्यते।
तद्यथा—जनपद समुदायो जनपद ग्रहणेन न गृह्यते। काशी कोसलीय इति वुञ् न भवति। तदन्त विधिना प्राप्नोति।
"सेनाया नियमार्थं वा"
अथवा नियामार्थोऽयमारम्भ। क्षुद्रकमालवशब्दात्सेनायामेव। यत्रमा भून क्षौद्रकमालवकमन्यदिति"

कथासरित्सागर मे विक्रम भूपति का सविस्तार वर्णन है एव इसी आधार पर डा० राज बली पाडे ने अपने ग्रथ 'विक्रमादित्य' मे वर्णन प्रस्तुत किया है।

उनके वर्णन मे दो कल्पनाय हैं (१) गिर्दभिलो का मालव गोत्री मानना और दूसरा मालवो की ५८ B. C. मे *अवन्तिविजय*। जैन कथाओ म राजा विक्रम के पूर्व एव गिर्द भिल्ल के पश्चात् शक का राज्य होना वर्णित है "तेरस गद्द भिलस्स चतारि सगस्स तओ विक्क-राइच्चो' (विविधतीर्थ कल्प पृ० ३९) इसके अतिरिक्त दिगम्बर परम्परा मे नहपान चष्टन आदि का वर्णन है इनमे गिर्दभिलो का उल्लेख नही है। यति वृषभ द्वारा प्रणीत तिलोयपण्णति म (९७ एव ९८) भी वर्णित है। किन्तु इसमे विक्रमादित्य का उल्लेख नही हैं।

इस प्रकार इन कथाओ मे सामञ्जस्य बिठाना कठिन है। मालवो की ५८ B C मे उज्जैन विजय भी ठीक नही बैठती है। यह घटना कई शताब्दियो के पश्चात सम्पन्न हुई है।

इस सवत का प्रचलन निश्चित रूप से अवन्ति विजय का सूचक नही है। मालवो का यह गणराज्य राजस्थान म ही बना था। इस बात को श्री मजूमदार ने भी माना है। अगर मालवा का गणराज्य राजस्थान म ही बना था तब दीर्घकाल से प्रचलित यह वार्ता कि विक्रमी सवत को प्रचलित करने वाला कोई राजा विक्रम था स्वत गलत साबित हो जाती है। *यह सवत किसी विजय की स्मृति म न* होकर केवल सघ के सस्थापन का सूचक मात्र है क्योकि विजय की स्मृति मे होता तो कही न कही इसका उल्लेख अवश्य होता, जैसाकि *नान्दसा के लेख मे 'महता स्वशक्ति गुरूस्तणा पोम्पेण प्रथम चद्र दर्शन-*भिव मालवगणविषयमवतारयित्वा" है। इसमे मालवगण के साथ विषय शब्द भी है जो उनके राज्य का सूचक है। अतएव निश्चित रूप मे यह कहा जा सकता है कि क्षुद्रक और मालव दो अलग २ गणो ने इकट्ठे होकर एक गणराज्य सगठित किया जिसका नाम 'मालव" रखा गया और जिस दिन यह गणराज्य बना उस दिन से काल की गणना के लिए एक सवत् भी चलाया गया जो आज विक्रमी सवत के नाम से प्रसिद्ध है।

[विरटा मे प्रकाशित]

परमार राजा नरवर्मा का चित्तौड़ पर अधिकार | २१

परमार राजा नरवर्मा का चित्तौड पर अधिकार रहने का उल्लेख चित्तौड की शक स० १०२८ (११६३ वि) की एक अप्रकाशित प्रशस्ति मे है जो जिनवल्लभसूरि से सम्बन्धित है। यह लेख मूल रूप से चित्तौड मे उत्कीर्ण किया हुआ था, किन्तु अब वहा उपलब्ध नही है। इसकी एक प्रतिलिपि भारतीय संस्कृति मदिर, अहमदाबाद मे उपलब्ध है। श्री नाहटाजी ने इसकी प्रतिलिपि मुझे भेजी है। इसमे ७८ श्लोक हैं इसलिए इस प्रशस्ति का नाम अष्ट सप्ततिका" भी रखा गया है। शुरू के ५ श्लोको मे ऋषभ, वीर, पार्श्व और सरस्वती की वन्दना की गई है। श्लोक ६ से १४ मे भोज का वर्णन है। उदयादित्य का वर्णन श्लोक स० १५ से २० मे दिया हुआ है। इसके लिये "आदि वराह" शब्द प्रयुक्त हुआ है। श्लोक स० २१ से २८ तक नरवर्मा का वर्णन है। इसके पश्चात् खरतरगच्छ के आचार्यों का वर्णन आदि है। जिन-वल्लभ का चित्तौड रहना और विधि चैत्यो के निर्माण का वर्णन मिलता है। मदिर के लिये नरवर्मा ने २ पारुत्थ मुद्रा दान मे देने की व्यवस्था की थी।

परमार राजा भोज के चित्तौड पर अधिकार रहने की पुष्टि मे कई सदर्भ उपलब्ध है[1] मुज के समय मे ही मेवाड का कुछ भाग परमारो

१. ओझा—उदयपुर राज्य का इतिहास, पृ० १३२। विविध तीर्थ कल्प मे अर्बुद कल्प, और विमल वसति के एक लेख मे वर्णित है कि आबू के राजा धधुक भाग कर चित्तौड मे भोज के पास गया था जहा से विमलशाह समझाकर वापस लाया था। चीरवा के लेख मे "भोजराजरचितत्रिभुवननारायणाख्यदेवगृहे" शब्द उल्लेखित

के अधिकारी में चला गया था। किन्तु भोज के उत्तराधिकारियों के पास चित्तौड रहा था अथवा नहीं, इसके लिये कोई प्रमाण उपलब्ध नहीं था। इसके लिये 'खरतरगच्छपट्टावली' और चित्तौड के इस अप्रकाशित लेख में महत्वपूर्ण सूचना उपलब्ध है कि जिन वल्लभ सूरि अपने समय के बडे प्रसिद्ध विद्वान थे। इनकी ख्याति दूर-दूर तक फैली हुई थी। 'खरतर-गच्छ पट्टावली' में वर्णित है कि एक बार नरवर्मा की सभा में किसी दक्षिणी पंडित ने समस्या "कण्ठे कुठार कमठे ठकार" भेजी। इसकी पूर्ति उसके दरबार के किसी पंडित द्वारा जब नहीं हुई तब इसे चित्तौड में जिनवल्लभसूरि के पास भेजी। जिनवल्लभसूरि ने तत्काल पूर्ति करके भिजवा दी थी। जब वे घूमते-घूमते एक बार धारा नगरी गये तो

है जो समिद्धेश्वर के चित्तौड के मंदिर के लिये प्रयुक्त हुआ है। इसी प्रकार इसी मन्दिर के वि० स० १३५८ के एक अन्य लेख में "भोजस्वामीदेवजगती" प्रयुक्त है। इस सब सामग्री को देखकर ओझाजी ने यह मान्यता दी थी कि यह मंदिर परमार भोज द्वारा निर्मित था (ओझा निबंध-संग्रह, भाग २, पृ० १८७ से १९२ एवं उनका निबंध 'परमार राजा भोज उपनाम त्रिभुवन नारायण' इस सम्बन्ध में दृष्टव्य है।)

१. (i) "श्री जिनवल्लभगणिरपि कतिचिद्दिनैर्विहृतो धारायाम्। केनाप्युक्त राज पुरो-'देव ! सोऽपि श्वेतपटो समस्यापूरक आगतोऽस्ति।"-राज्ञातु तेनोक्तम्-"भो जिनवल्लभगणे। पारुत्थ लक्षत्रय ग्रामत्रय वा गृहाण।" भणित गणिभि "भो महाराज ! अत प्रतिनोऽर्थादि संग्रह न कुर्म चित्रकूटे देवगृह द्वय श्रावकैं कारितमस्ति तत्र पूजार्थं स्वमण्डपिकादानात् पारुत्थ द्वय प्रतिदिन दापय"। ततो राजा तुष्ट -'अहो निर्लोभता एतस्य महात्मन श्री जिनवल्लभगणेरिति चिन्तितवान। चित्रकूटमण्डपिकातस्तत् शाश्वतदान भविष्यतीति कृतम्"

(युग प्रधान गुर्वावली, पृ० १३)

(ii) अपभ्रंश काव्यत्रयी की भूमिका, पृ० २६।

(iii) वीर भूमि चित्तौड, पृ २६।

राजा ने बड़ा सम्मान किया और ३ लाख रुपये और ३ ग्राम दान में देने को कहा, तब सूरिजी ने लेने में इन्कार करके केवल इतना ही कहा कि चित्तौड़ में नव-निर्मित विधि चैत्य के लिये कुछ "शाश्वत दान" की व्यवस्था कर दी जावे। तब राजा ने चित्तौड़ की मण्डपिका में उक्त दान की घोषणा[2] की। इस वर्णन की पुष्टि अब तक अन्य वर्णनों से नहीं होती थी। नरवर्मा द्वारा चित्तौड़ के जैन मन्दिरों के लिये कोई राशि "शाश्वत दान" के रूप में दी थी उसका उसकी प्रशस्तियों में कहीं उल्लेख नहीं है, किन्तु चित्तौड़ की इस प्रशस्ति से इसकी पुष्टि होती है। श्लोक सं० ७१ में वर्णित है[2] कि राजा नरवर्मा ने सूर्य संक्रांति के अवसर पर जिनाचार्य के लिये २ पारुत्थ मुद्रा दान में दी। उसके पूर्व श्लोकों में विधि चैत्य की प्रतिष्ठा का वर्णन है। अतएव खरतरगच्छ पट्टावली के वर्णन से पुष्टि हो जाती है। इस प्रकार जब नरवर्मा चित्तौड़ की मण्डपिका से दान की घोषणा करता है तो निश्चित रूप से यह भूभाग उसके अधिकार में था। संभवतः परमारों के अधिकार में चित्तौड़ वि० सं० ११६० तक रहा और इसमें ही चालुक्य सिद्धराज ने यह भूभाग अधिकृत किया प्रतीत होता है।

---

२ प्रतिरवि संक्राति दत्तौ पारुत्थ द्वितयमिह जिनाचार्यै ।
श्री चित्रकूट पिठा मार्गा (?) दाता न्रवर्म नृप ॥७२॥

इस प्रशस्ति के सम्बन्ध में जिनदत्तसूरि ने चर्चरी में भी उल्लेख किया है जो समसामयिक कृति होने से महत्त्वपूर्ण है।

(शोध पत्रिका में प्रकाशित)

देवड़ाओं की उत्पति | २२

देवडाओं की उत्पत्ति के सम्बन्ध मे अब तक कोई प्रामाणिक सामग्री उपलब्ध नही हो सकी है। सिरोही राज्य की ख्यातो के अनुसार नाडोल शाखा के चौहान राजा मानसिह के एक पुत्र देवराज हुआ जिससे यह शाखा चली और इसीलिये ये देवडा कहलाये।[1] वश भास्कर मे चौहानो की निर्वाण शाखा से इनकी उत्पत्ति मानी गई है।[2] नैणसी ने एक अलग मत प्रस्तुत किया है। इनका कहना है कि नाडोल के राजा आसराज का किसी देवी से प्रेम हो गया था और उसकी सतान देवडा कहलाई।[3] आधुनिक विद्वानो म भी मतैक्यता नही है। ओझा जी ने सिरोही राज्य की ख्यातो के वर्णन की सत्यता म सदेह प्रकट किया है। लाला सीताराम ने भी सिरोही राज्य के इतिहास मे नैणसी के वर्णन से सगति बिठाते हुए उक्त ख्यातो के वर्णन को ठीक नही माना है। चौहान कुल कल्पद्रुम म देवडा शाखा को नाडोल की शाखा मानी है और लिखा है[4] कि यह शाखा कई बार निकली है। सिरोही वालो के पूर्वज उक्त मानसिह के वशज ही है।

---

१. लाला सीताराम–हिस्ट्री आफ सिरोही राज पृ १५६–६० सिरोही स्टेट गजेटियर–पृ २६८

२. इण कुल ही देवट अभिमानी। मही भुवण हुओ रणमानी॥
कुल जिणरो देवडा कहावै। दान समर अनुपम दरसावै॥
(हिस्ट्री आफ सिरोही राज्य के पृ १५६ के फुटनोट से उद्धृत)

३. नैणसी की ख्यात हिन्दी अनुवाद भाग १ पृ १२०–१२३

४. चौहान कुल कल्प द्रुम पृ १६२

स्मरण रहे कि यह मानसिंह समरसिंह सोनगरा का द्वितीय पुत्र था। इसके वंशज राव लुम्भा ने आबू अधिकृत किया था।

क्या राव लुम्भा देवड़ा जाति का था ?

प्रश्न यह है कि क्या राव लुम्भा देवडा जाति का था ? उसके और उसके उत्तराधिकारियो के कई शिलालेख मिले हैं। इन सब लेखो म उसे चौहान ही लिखा गया है। इस सम्बन्ध म सबसे महत्वपूर्ण लेख वशिष्ठाश्रम का लेख है। ठीक इसी लेख के नीचे महाराणा कुम्भा का वि० स० १५०६ का शिलालेख उत्कीर्ण है।[5] उक्त राव लुम्भा के उत्तराधिकारियो के लेख का मूल पाठ इस प्रकार है —

"स्वस्ति श्री नृप विक्रम कालातीत सवत् १३६४ वर्षे वैशाख शुदि १० गुरावद्येह श्री चन्द्रावत्या **चाहुमान वशोद्धरण धोरय** राज श्री तेजसिंह सुत राज कान्हडदेव राष्ट्ट प्रशासति सति पाढि श्री महादेवेन इद श्री वशिष्ठस्य धर्म्मायतन कारापितमित्यर्थं । तथा च **चाहुमान ज्ञातीय राज** श्री तेजसिहेन स्वहस्तेन ग्राम त्रय दत्त भावटु १ द्वितीय ज्यानुलि ग्राम २ तृतीय तेजलपुरमिति ३ तथा च **देवडा श्री** निहुणाकेन स्व हस्तेन मीहतुण ग्राम दत्तौ तथा राज श्री कान्हडदेवेन स्वहस्तेन वीरवाडा ग्राम दत्त तथा राज **श्री चाहुमाण ज्ञातीय** राज श्री सामतसिहेन लाञ्छलि छापुली किरणथलु ग्राम त्रय दत्त। शुभ भवतु ॥'

इस लेख मे ३ राजाओ के अलग २ दान देने के लेख हैं। इस लेख से बहुत ही स्पष्ट है कि राव लुम्भा के वंशज अपने आपको चौहान ही लिखते थे। उस समय देवडा शाखा भी अलग से विद्यमान थी। उपरोक्त लेख म वर्णित निहुणा इसी शाखा का था। यह निःसदेह विमल वसति के वि०स० १३७८ के लेख म वर्णित राव लुम्भा के द्वितीय पुत्र तिहुणाक से भिन्न था।[6] केवल नामो की कुछ समानता से एक ही जाति का नही मान सकते हैं। आबू स प्राप्त लेखो म ऐसे नाम कई लेखो मे

---

५ वीर विनोद पृ १२१३

६ श्रीमल्लुम्भकनामा समन्वितस्तेजसिंहतिहुणाभ्याम्।
अर्बुदगिरीशराज्य न्यायनिधि पालयामास ॥

मिलते है जो भिन्न २ जाति के थे। देवडा मिहुणा जिसने उक्त दान दिया था कोई उच्चाधिकारी या जागीरदार था।

लुम्भा के शिलालेखो मे उसके पूर्वजो का विस्तार से उल्लेख है। अचलेश्वर मन्दिर के वि०स० १३७७ और विमलवासति के वि० स० १३७८ के शिलालेखो मे जो वशावली दी गई है उसका विवरण इस प्रकार है —
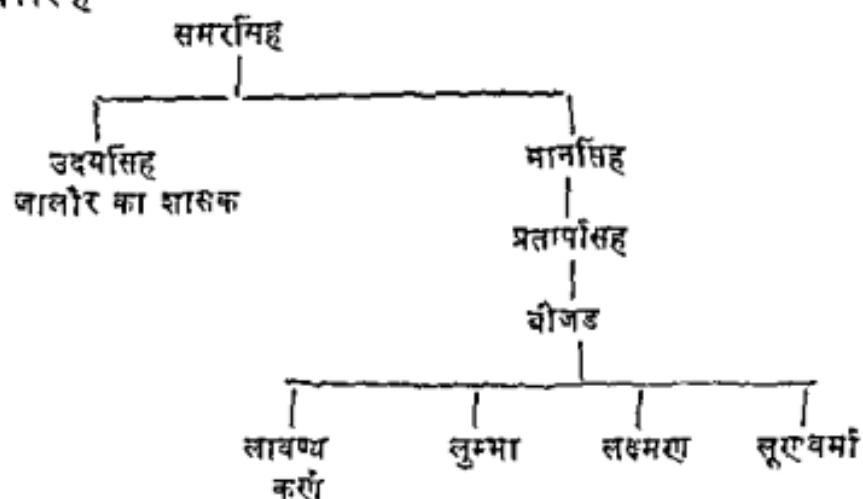
ख्यातो मे लिखा है कि मानसिह के पुत्र प्रतापसिह का एक नाम देवराज भी था। ख्यातकारो का अगर यह वर्णन सही हो तो जिस पुरुष मे वश चला उसका नाम तो कम से कम शिलालेखो मे आना ही चाहिए। प्रतापसिह के लिए जो शिलालेखो मे वृतान्त दिया गया है वह परम्परागत वर्णन मात्र है। अचलेश्वर के लेखो मे "ततो भवद्व श विवर्द्धनो नु प्रतापनामो नयनाभिराम । सदा स्वकीर्त्या किल चाहुमान पूज्य प्रतापानल तापि वारि ॥ विमल वसति के वि०स० १३७८ के लेख मे "प्रतापमल्लस्तदनु प्रतापी बभूव भूपाल सदस्सु मान्य" लिखा हैं। अतएव इससे देवडाओ की उत्पत्ति मानना आधारहीन है।

इसके अतिरिक्त प्रताप सिंह को देवराज मानकर इससे उत्पत्ति मानने मे देवडाओ की उत्पत्ति वि स. १३०० के बाद आती है जो सही नही है। अचलेश्वर मन्दिर के बाहर वि स, १२२५ और १२२६ के शिलालख लगे हुए हैं। इनमे देवडा जाति के वीरो का उल्लेख है।[7] इसी

७. हिस्ट्री आफ सिरोही राज्य पृ. १५९–६०

प्रकार सिरोही जिले के सांवेरा ग्राम के जैन मन्दिर मे वि. स. १२८६ का एक शिलालेख है। इसमें देवडा विजयसिंह आदि का उल्लेख है और भी लेख इस क्षेत्र से मिलते हैं।[8] एक लेख दतागी ग्राम मे वि स १३४५ वैसाख सुदी ८ का लेख जैन मन्दिर मे लगा हुआ है इसमे "प्रमारज (रा) न्विय राज दे राज–देवाडा ठ० सात रा प्रताप श्री हेमदेव" वर्णित है यहां "राजदेवाडा" शब्द देवडो के लिए प्रयुक्त प्रतीत न होकर परमार जाति के किसी पुरुष का नाम है। कान्हडदे प्रबन्ध के अनुसार देवडा जाति के काधल अजीत आदि वि. स १३७८ के अल्लाउद्दीन के साथ हुए जालोर के युद्ध म सम्मिलित थे। इनका उक्त वश वृक्ष म कोई नाम नही है इससे यह प्रतीत होता है कि यह जाति काफी प्राचीन है।

अतएव बहुत ही स्पष्ट है कि सिरोही राज्य के ख्यातो के अनुसार देवडाओ की उत्पत्ति मानसिंह के पुत्र प्रतापसिंह से नही हुई थी। मानसिंह के बहुत पहले ही देवडा जाति विद्यमान थी। ऐसा प्रतीत होता है कि ख्यातकारो के सामने देवडाओ का पुराना इतिहास उपलब्ध नही था तो उन्होने आबू के परमारो से राज्य हस्तगत करने वाले राव लुम्भा को ही देवडा जाति का मान लिया। उसके उत्तराधिकारी तेजसिंह कन्हडदेव सामन्तसिंह आदि का नाम ख्यातो मे नही है।

प्राप्त शिलालेखो के आधार पर म इस निश्चय पर पहुचा हू कि रावलुम्भा देवडा जाति का नही था। यह चौहान जाति का था। देवडा शाखा चौहानो स अवश्य निकली है किन्तु उसकी किस शाखा स ? यह ज्ञात नही हो सका है।

देवड़ा शब्द की व्युत्पत्ति

देवडा शब्द देवराज के स्थान पर "देवड' शब्द से बना प्रतीत हुआ है। आबू और इसके समीपवर्ती स्थानो से प्राप्त शिलालेखो म यह नाम बहुत ही मिलता है।[9] उदाहरणार्थ मु गथला के जैन मन्दिर मे

८. जैन सत्य प्रकाश वर्ष १४ अक ३–४ पृ ६६

६. अर्बुदाचल प्रदक्षिणा जैन लेख सदोह ले० स.४७

वि. स. १२१६ के एक लेख मे वोसल और ददडा नामक दो व्यक्तियो ...उल्लेख है, (वीसलदेवडाभ्या) इसी प्रकार का उल्लेख कथा कोप प्रकरण मे है। यह ग्रथ वि. स. ११०८ मे जालोर मे लिखागया था। इसमे भी देवडा नामक एक श्रेष्ठि से सम्बन्धित कथानक दिया हुआ है जो रोहिडा का रहने वाला था,[10] (रोहिडय नाम नमर, तत्थ देवडो नाम कुल पुत्तगो परिवसइ) इससे पता चलता है कि यह नाम बहुत ही अधिक प्रचलित था। आश्चर्य नही है कि देवडा जाति की व्युत्पत्ति देवड नामक पुरुष से ही हुई हो। वश भास्कर मे देवट नामक पुरुष से इनकी उत्पत्ति मानी गई है जो अधिक उपयुक्त प्रतीत होती है।

देवड़ाओं का सिरोही प्रदेश पर अधिकार

सामन्तसिंह के बाद रावलुम्भा के उत्तराधिकारियो का क्या हुआ? इस सम्बन्ध मे अभी शोध की आवश्यकता है। इतना अवश्य सत्य है कि वि. स. १४४२ तक ये लोग इस क्षेत्र मे अवश्य शासक के रूप मे विद्यमान थे। सामन्तसिंह के बाद मे कान्हडदेव का पुत्र वीसलदेव उत्तराधिकारी रहा प्रतीक होता हैं। मूगथला ग्राम मे निर्मित एक जैन मन्दिर मे वि. स १४४२ के एक शिलालेख मे इसका शासक के रूप म उल्लेख किया गया है। इस शिलालेख की ओर विद्वानो का ध्यान अभी गया नही है। इसके मिलने से सामन्तसिंह के उत्तराधिकारी के रूप म रणमल आदि को मानने की धारणा स्वत गलत साबित सिद्ध हो जाती है। लेख का मूल पाठ इस प्रकार है –

१. स. १४४२ वर्षे जेठ सुदि
२. ९ सोमे श्री महावीर ....
३ राज श्री कान्हड देव सु
४. तु राज श्री बीसल देव [विन स]
५ वाडी आघाट दात्तव्या (दत्ता)
६. ग्राम प्रष्टि (प्रष्टि) प्रदेशे ते वा (ना)

---

१०. कथाकोप प्रकारण पृ

७. पदे शासनं प्रद
८. त्तः (त्तम्) ॥ बहुभिर्वसुधा
९. भुक्ता राजभिः सग
१०. रादिभिः.........

सिरोही राज्य की स्थापना राव शिव भाण ने की थी । इसके पूर्वजो के नाम सल्हा, रणमल आदि मिलते है। सल्हा के पुत्र सागर का एक अप्रकाशित शिलालेख वि. स १८७७ पोसीनाजी के मंदिर मे लग रहा है। इनके वंश का विस्तृत उल्लेख उक्त शिलालेख म नही है। सल्ह के लिए लिखा मिलता है कि यह बहुत ही प्रतिभा सम्पन्न शासक था।[11] सिरोही राज्य के ख्यातो मे वर्णित सल्हा और पोसनाजी के लेखवाला सल्हा अगर एक ही व्यक्ति हो तो इसके पुत्र रणमल और था जिसका पुत्र शिवभाग हुआ जिसने सिरोही क्षेत्र अधिकृत किया। पिपल की मे वि स १८५१ का शिलालेख राव शोभा का मिला है। यह कौन था ? इस सम्बन्ध मे शोध किये जाने की आवश्यकता है।

आबू के देवड़ा

आबू के देवड़ा सिरोही के देवडो से भिन्न रहे प्रतीत होते है। इनका उक्त सल्हा शिवभाण आदि से क्या सम्बन्ध था ? कुछ नहीं कहा जा सकता है। पितलहर मन्दिर आबू के वि. स. १५२५ के शिलालेख मे कई शासको के नाम हैं, यथा बीसा, कुंभा, और चूण्डा और डूंगरसिंह। चूंडा के वि. स. १४९७ के शिलालेख मिले हैं।[12] महाराणा कुम्भा ने इनसे ही आबू लिया था। सरदारगढ़ की एक अप्रकाशित ख्यात मे वि. स. १५०२ मे सेना वर्णित किया है। कुंभा की मृत्यु के बाद उनके उत्तराधिकारी उदयसिंह से देवड़ा डूंगरसिंह

---

११. अस्ति स्वस्तिपदं सदाप्यरिभयातीत प्रतीत सदा।
पोसीनाख्यपुरं पुरागमनुगणश्रेणी विलासाश्रयः।
तत्रामात्यनयश्रिया प्रकटित श्रीरामराज्यस्थितिः।
श्रीमान् साल्ह महिपतिः पदम् भूदौदार्यधैर्यश्रियः ॥२॥

१२. महाराणा कुंभा पृ. ८०

ने आबू वापस ले लिया। इसके उत्तराधिकारी का क्या हुआ ? कुछ जानकारी नही है अचलगढ के जैन मन्दिर की वि स १५६६ के लेख मे वहा के शासक का नाम सिरोही के शासक का दिया हुआ है। अतएव पता चलता है कि इसके पूर्व ही सिरोही के देवडो ने इसे हस्तगत कर लिया था।

इस प्रकार इन सब तथ्यो मे पता चलता है कि देवडाओ की उत्पत्ति देवराज नामक सोनगरा शासक जिसका मूल नाम प्रताप-सिह था नही हुई थी। सिरोही क्षेत्र म अधिकार जमाने के समय इनकी कई शाखायें उस समय विद्यमान थी। वि० स० १३४४ के पाट नारायण के लेख में देवडा शोभित के पुत्र मेला का उल्लेख है।

[अन्वेषणा म प्रकाशित]

मारवाड़ के राठौड़ों की उत्पत्ति | २३

मारवाड के राठौडो की उत्पत्ति के विषय मे विद्वानो के कई मत है। यह निर्विवाद है कि यह राजवश राव सीहा नामक एक साहसी योद्धा द्वारा स्थापित हुआ था। इस परिवार के मारवाड म आने के पूर्व भी कई उल्लेखनीय राठौड परिवार मारवाड मे विद्यमान थे। हठू डी बीजापुर मे राठौड घवल का वि० स० १०५३ का शिलालेख मिला है।[1] ये हथू डिया राठोड कहलाते थे। इनका एक अप्रकाशित शिलालेख वि० स० १२७४ माघ सुदी १५ का पीडवाडा के पास कोटल ग्राम के शिवालय मे लग रहा है। मडोर से भी वि० स० १२१२ का एक शिलालेख मिला है जिसमें भी राठौड का[2] उल्लेख है। इसी प्रकार मेनाल मे वि० स० १२१२ का शिलालेख मिला है।

राव सीहा के पूर्वजो के सम्बन्ध म बडा विवाद है। जोधपुर और बीकानेर राज्य की ख्यातो के अनुसार राव सीहा कन्नोज से आया था जो जयचन्द्र का[3] वशज था। इस प्रकार जो कन्नोज मे गहडवाल कहलाते थे वे राजस्थान म आने के बाद राष्ट्रकूट कहलाने लगे।

---

१ एपिग्राफिआ इडिका Vol X पृ० १७-२४

२ आर्कियोलोजिकल सर्वे रिपोर्ट आफ इण्डिया वर्ष १९०९ मे प्रकाशित मण्डोर पर निबन्ध।

३. टाड-एनल्स एण्ड एन्टिक्वीटीज Vol I पृ पृ० ८२४।

बीकानेर के रायसिंह की प्रशस्ति (जरनल बगाल ब्राच रायल एस० सोसाइटी vol XVI (नई सिरीज) पृ० २६२। रेउ-मारवाड का

दूसरे मत के विद्वान राठौड ग्रौर गहडवालो की साम्यता पर सदेह[4] करते हैं। स्वर्गीय श्री एम० एन० माथुर ने एक नया दृष्टिकोण प्रस्तुत किया था कि १०५० से १२०० ई० के मध्य कन्नौज मे कुछ समय के लिए राष्ट्रकूट राज्य भी रहा था। इनका आधार सूरत से त्रिलोचनपाल का वि० सं० ११५१ का ताम्रपत्र है, जिसमे लिखा है कि कन्नौज के राष्ट्रकूट राजा की कन्या के साथ पाणिग्रहण किया। बदायूं से १२वी शताब्दी का शिलालेख मिला है। इसमे वहा के राष्ट्रकूट वश के संस्थापक का नाम चन्द्र नामक राजा को बतलाया है, जो कन्नोज से आया था। अतएव इनकी धारणा है कि कन्नौज से ही एक शाखा मारवाड ग्रौर एक शाखा यू.पी. मे गई थी ग्रौर परवात्कालीन ख्यात-लेखको ने 'चंद्र का' का जयचन्द्र बना दिया है।[5]

इस सम्बन्ध मे बहुत अधिक सामग्री उपलब्ध है। मारवाड के राजकीय शिलालेखों को जिनमे इन्हे कनोजिया राठौड लिखा है, अगर छोड दिया जावे तो भी जैन सामग्री मे पर्याप्त सूचना दी गई हैं। पुरातन प्रबन्ध सग्रह में जो वि० स० १५२८ के पूर्व की रचना है, जयचन्द्र को राष्ट्रकूट लिखा है।[6] इस पुरातन प्रबन्ध की सूचना को मैं महत्वपूर्ण मानता हूँ क्योंकि अधिकांशत जयचन्द्र को राष्ट्रकूट वंशीय वहा लिखा जाता है, जहां मारवाड के राठोडो का वर्णन आवे। स्वतन्त्र रूप मे कन्नौज के गहडवाल शासको को राठौड नही लिखा गया है। यह पहला वृतात है, अतएव महत्वपूर्ण है। इसके अतिरिक्त कई अन्य जैन प्रशस्तियो मे भी इस प्रकार की सूचना है। शान्तिनाथ ज्ञान भण्डार खम्बात मे कल्पसूत्र की एक प्रति सगृहीत है। यह ताड पत्रो पर लिखी गई है। इसी प्रकार की एक प्रति मोहनलाल ज्ञानभण्डार सूरपुर मे सग्रहीत है

इतिहास भाग १। आर्कियोलोजिकल सर्वे रिपोर्ट आफ इण्डिया Vol XI पृ० १२३।

४. ओझा-जोधपुर राज्य का इतिहास भाग पहला पृ.

५. इंडियन हिस्टोरिकल क्वार्टरली, जून १९४४ पृ० १५३ से १६६।

६. "कान्यकुब्जदेशे वाराणसीपुरी नवयोजन विस्तीर्णा द्वादश योजना-

जिसमे वि० स० १५४६ की प्रशस्ति लगी है, जिसमे जयचन्द्र को मारवाड के राठोडो का आदि पुरुष वर्णित किया है और इसके वंशज आसथान द्वारा राज्य स्थिर करने का उल्लेख है।[7] राजस्थान भारती मे प्रकाशित फलोधी के मन्दिर से सम्बन्धित वि० स० १५५५ की एक प्रशस्ति मे भी जयचन्द्र को राष्ट्रकूट वंश का सस्थापक माना है।[8]

श्री अगरचन्द जी नाहटा के सग्रह में एक वंशावली से सम्बन्धित पत्र सगृहीत हैं। डा० दशरथ शर्मा ने इसे इंडियन हिस्टोरिकल क्वार्टरली के भाग १२ अङ्क १ (मार्च १९३६) मे प्रकाशित किया हैं। यह वंशावली प्रारम्भ मे राव सातल के समय लिपिबद्ध की गई थी। इसके बाद मालदेव तक दूसरे प्रतिलिपिकार ने इसे पूरी की थी। तत्पश्चात् बीकानेर के महाराजा रायसिंह के समय तक इसे अन्य प्रतिलिपिकारी ने पूरी की। इसमे भी वंशावली को जयचन्द्र से प्रारम्भ बतलाई गई है। इसमे जयचन्द्र के लिये 'पागल' विशेषण दिया गया है। रम्भामन्जरी नाटिका और प्रबन्ध चिंतामणी आदि मे भी जयचन्द्र के लिए यह विशेषण प्रयुक्त हुआ है।[9]

याम। तत्र श्री विजयचन्द्रागजो राष्ट्रकूटीय जैत्रचन्द्रो राज्य करोति (पुरातन प्रबन्ध सग्रह पृ० ८८)

७ ओकेशवशप्रवरो विभाति सर्वेषु वशेषु रमाप्रधान।
तस्मिन सुगोत्र प्रवर प्रशस्यने नाम्ना महत्य जाहडाभिधान।
क्षत्रियवश पूर्व्वं विदित श्री राष्ट्रकूट इति नाम्ना
श्री जयचन्द्रो राजा जातश्चतुरगबलयुक्त ।
तस्यान्वये प्रसिद्ध' त्यागोभोगोमहानिशास्त्रनित ।
आस्थामाश्चरथुन सगतो राजा कुलयुधुय ॥
(प्रशस्ति सग्रह शाह द्वारा सम्पादित पृ० ४६ एव पृ० ५५)

८ राजस्थान भारती, वर्ष ६, अङ्क ४ म श्री विनयसागर का लेख—
अथ राष्ट्रकूटान्वय जैत्रचन्द्रा भूपुरन्दर ।
तत्सन्तानक्रमेणाथ कमध्वजमहीपति ॥१६॥

९. 'अथ काशीनगर्यां जयचन्द्र इति नृप प्राज्य साम्राज्यलक्ष्मी पालयन प्रतिरिति विरुद बभार। यतो यमुनागगाप्रभृति पृथ्वीकलभ्रनमतरंग

इस प्रकार समस्त सामग्री को, जो मारवाड के राजवश से सम्बन्धित है, देखकर मैं इस निश्चय पर पहुँचा हूँ कि मारवाड के राजवश का सस्थापक जयचन्द्र का वशज ही था और राठोड और गहडवाल के वशो मे भी साम्यता रही है और कन्नौज के गहडवालो को ही राठौड भी लिखते थे, जैसा कि पुरातन प्रवन्ध सग्रह मे उल्लेखित है। इसी कारण सूरत के दानपात्र मे इन्हे राठौड लिखा है और वदायूं के लेख मे कन्नौज के शासको को राठौड लिखा है।

इस प्रकार राठौड और गहडवालों के पारस्परिक सम्बन्धो पर पुनर्विचार की आवश्यकता है। [विश्वम्भरा में प्रकाशित]

चमू सन्दूह व्याकुलिततया क्वापि गन्तु न प्रभवति" (प्रवन्ध चिन्तामणी केवलराम शास्त्री द्वारा सम्पादित पृ० १८६)

फलोदी पार्श्वनाथ मन्दिर पर मोहम्मद गोरी का आक्रमण | २४

मेड़ता रोड पर पार्श्वनाथ का प्रसिद्ध मंदिर है जो फलोदी पार्श्व-नाथ के नाम से प्रसिद्ध है जिन प्रभ सूरि ने विविध तीर्थ कल्प में एक बहुत ही महत्वपूर्ण सूचना दी है कि शहाबुद्दीन गोरी ने इस मंदिर[1] में विराजमान मूलनायक प्रतिमा को भंग की। मंदिर को भग्न नहीं किया एवं अधिष्ठायक देव की इच्छा नहीं होने से दूसरी मूर्ति स्थापित नहीं की जा सकी। उनका कहना है कि खंडित प्रतिमा भी बहुत ही प्रभावशाली और चमत्कार पूर्ण थी।

सुल्तान मोहम्मद गोरी का यह आक्रमण कब हुआ था ? इसमें कोई संवत दिया हुआ नहीं है किन्तु समसामयिक घटनाओं से पता चलता है कि घटना वि० सं० १२३५ में घटित हुई थी। मंदिर में वि० सं० १२२१ मिगसर सुदि ६ का एक शिलालेख लगा हुआ है जिसमें चित्र-कूटीय शिला पट्ट लगाने का उल्लेख है।[2] इससे पता चलता है कि उस वर्ष के पूर्व संभवतः सुल्तान का आक्रमण नहीं हुआ था और निर्माण कार्य चल रहा था। तबकात–ए–नासीरी से पता चलता है कि वि० सं० १२३० के आस-पास मोहम्मद गोरी गजनी का अधिकारी बना था

---

१. कालन्तरेण कलिकालमाहप्पेण केत्तिप्पिया वत्ता हवन्ति, अथिर-चित्ता य तित्थमाय पर स्वंगसु अहिट्ठायगसु सुरत्ताणसाहबदीणेण भग्ग मूल बिंबं :—
सुरत्ताणेण दिन्न फुरमाण, जहा—ए अम्ह देवभवणस्स केणावि भग्गो न कायव्वो त्ति—" (विविध तीर्थ कल्प पृ० १०६)

२. प्राचीन जैन लेख संग्रह भाग २ पृ०

और भारत मे पहला आक्रमण वि० स० १२३० मे करके मुल्तान और उच्छा पर अधिकार[3] कर लिया था। इसके बाद वि० स० १२३५ मे उसने गुजरात पर आक्रमण किया। गुजरात जाते समय सभवत वह मेडता रोड किराडू नाडोल होकर आबू गया। किराडू के सोमेश्वर मदिर की प्रतिमा भी वि० स० १२३५ के शिलालेख के अनुसार तुरुष्कों द्वारा खण्डित की गई थी।[4] वहा से नाडोल[5] गया। पृथ्वीराज विजय मे वर्णित है कि सुल्तान ने नाडोल पहुँच कर पृथ्वीराज को कर देने को कहा। नाडोल से वह आबू गया और वहा कासदरा गाव मे युद्ध[6] हुआ था। जहा सुल्तान की हार हुई थी। इस प्रकार प्रतीत होता है कि गजरात आक्रमण के समय उसने मेडता रोड पर भी आक्रमण किया था। फारसी तवारीखो मे रेगिस्तान के मार्ग से गुजरात जाने का वर्णन मिलता है।[7]

मेडता रोड का यह मदिर प्राचीन प्रतीत होता है। श्री अगरचन्द नाहटा ने कुछ वर्षों पूर्व यहा के शिलालेख भी प्रकाशित कराये थे। इनमे प्राचीनतम ९ वी शताब्दी का है। वि० स० ११८१ मे धर्म घोप सूरि ने इसके शिखर की प्रतिष्ठा[8] की थी। मंदिर इससे भी प्राचीन

३ अरली चौहान डाइनेस्टिज पृ० ८०-८१ चालुक्याज आफ गुजरात पृ० १३५

४ किराडू के वि० स० १२३५ के लेख की पक्ति ९ और १० मे इस वर्णन है।

मूर्तिरासीत् स्म तुरुष्कं [र्व्कै] भंग्ना—

५ अरली चौहान डाइनेस्टीज पृ० ८० फुटनोट ४४ एव पृ० १३८

६ सू ढा का लेख श्लोक ३४ से ३६। इसमे नाडोल के चौहानो ने भी गुजरात की सेना के साथ युद्ध मे भाग लिया था।

७ ब्रिज तारीख-ए-फरिश्ता भाग १ पृ० १७० है-तबकात ए नासरी भाग १ पृ ३६।

८ एगारस सएसु इक्कासोइ समहिएसु विक्कमाइदरिऐसु अ इक्करने सु रायगच्छ मडणसिरि सीलभद्द सूरि पट्ट पइट्ठिएहि महावाइदि अ बर गुणचद्द विजयपत्त पइपट्ठेहि सिरि धर्मघोस

रहा था । खरतर गच्छ परम्परा के अनुसार श्री जिन पति सूरि ने इसका जीर्णोद्धार १२३४ वि० स० में कराया[9] और श्री लक्ष्मट श्रावक ने १२ वीं शताब्दी में उत्तान पट्ट यहां स्थापित कराया था ।[10] तपागच्छ परम्परा के अनुसार भी यहां १२०४ में प्रतिष्ठा समारोह हुआ था ।

इससे पता चलता है कि मंदिर प्राचीन था और उसकी मान्यता बहुत थी । इसलिए सुल्तान का ध्यान भी गुजरात के मार्ग में जाते समय इसकी ओर आकृष्ट हुआ और मूलनायक प्रतिमा को खण्डित करदी । यह घटना वि० स० १२३५ में हुई । यद्यपि इतिहासकारों का ध्यान इस मंदिर के आक्रमण की ओर नहीं गया है किन्तु तीर्थ कल्प में वर्णन होने से प्रामाणिक घटना मानी जा सकती है ।

[वरदा में प्रकाशित]

सूरिहि पासनाह चेईअ सिहरे चउ विहसंघ समाग पइट्ठाविया (विविधतीर्थ कल्प पृ १०६)

९. "सं० १२३४ फलवधिकायां विधि चैत्ये पार्श्वनाथ, स्थापिता," जैन सत्य प्रकाश वर्ष ४ में नाहटाजी का लेख

१०. जैन लेख संग्रह भाग १ लेख सं० २२२